छात्र-जीवन

भक्त वैष्णव वंश में मेरा जन्म हुआ था । मेरे रिश्तेदार श्री यदुनाथ बसु जी के पास रहकर मैं दिनाजपुर गवर्नमेन्ट स्कूल में अंग्रेजी पढ़ता था। स्कूल के शिक्षक व छात्रगणों में कोई-कोई ब्राह्म-धर्म अवलम्बी थे। मेरे घर के पास ब्राह्म शिक्षक व छात्रगणों का मुख्य केन्द्र था। हमारे घर में श्री श्री कन्हैयालालजी के विग्रह की सेवा होती थी। मैं प्रतिदिन संध्या के समय भक्ति-भाव से आरती दर्शन करता था, मेरे कुछ सहपाठी ब्राह्म बालक आरती दर्शन के समय वहां आकर श्री राधा-कृष्ण की कटु शब्दों में आलोचना करते थे, जिससे मेरे अन्तःकरण में आघात पहुँचता था। हिन्दू समाज में अनेक प्रकार के देवी-देवताओं की उपासना प्रचलित है। कोई कोई राधा कृष्ण की उपासना करते थे तो कोई काली-दुर्गा की अथवा शिव की आराधना करते थे। यह सब देखकर मैं आश्चर्यचकित हो जाता था। ये सब भिन्न-भिन्न देवी-देवता कौन हैं एवं मनुष्य को किसकी उपासना करनी चाहिये ? - ये सब प्रश्न मेरे अन्तःकरण में सर्वदा उदय होते थे ।

ब्राह्म-धर्मी लोगों में सदाचार एवं आहार सम्बन्धी शुद्धाचार नहीं था। स्कूल जाते समय उनके रसोईघरों के पीछे प्याज-लहसुन आदि के छिलके एवं आमिष खाद्यों के अवशेष देख कर मुझे ब्राह्म लोगों के ऊपर अश्रद्धा होती थी, वहाँ के हिन्दू लोग ब्राह्म लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते थे।

उस समय श्री विजयकृष्ण गोस्वामी ब्राह्म-धर्म प्रचार के लिए दिनाजपुर में उपस्थित हुए। हमारे पड़ौसी एक जमींदार के घर उनका प्रवचन होगा, यह सुनकर मैं अपने चाचाजी से अनुमति लेकर शाम को उनका प्रवचन सुनने गया। वहाँ बहुत से श्रोता उपस्थित थे। प्रवचन का विषय था- 'भक्ति और विश्वास' । गोस्वामीजी ने बड़े ही उत्साह से ओजस्वी भाषा में प्रवचन आरम्भ किया। सब लोग स्तब्ध होकर उनका प्रवचन सुन रहे थे । प्रवचन सुनकर मेरा मन एकदम उदास हो गया। हाथ-पाँव में बल नहीं रहा। किसी तरह घर तक पहुंचा। मन में विचार किया, हमारे गुरुवंशीय गोस्वामीजी ने जब ब्राह्मधर्म को ग्रहण कर लिया है

तो शायद यही वास्तविक धर्म होगा क्योंकि प्रवचन के विरूद्ध किसी प्रकार की आलोचना करना कठिन था।

घर पहुँचने पर चाचाजी ने प्रवचन के सम्बन्ध में पूछा। मैंने उन्हें विस्तारपूर्वक बतलाया। चाचाजी एवं उनके मित्रगण सुनकर निरूत्तर रह गये।

दिनाजपुर की पढ़ाई समाप्त करने के बाद मैं हुगली कॉलेज में भर्ती हो गया। मेरे सहपाठी सद्‌चरित्र, स्वधर्म-निष्ठ, ब्राह्मण युवक श्री केदारनाथ मुखर्जी (जो बाद में महात्मा तैलंग स्वामी के शिष्य हुए थे) के साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता हो गयी । उनकी संगति से मेरा नैतिक जीवन उन्नत हुआ एवं अन्तःनिहित भगवत् प्रेम का श्रोत फूट पड़ा।

हिन्दू धर्म में अनास्था

हुगली कॉलेज में वकालत की पढ़ाई समाप्त होने के बाद मैंने जिला वीरभूम के अन्तर्गत बोलपुर में आकर वहां की अदालत में वकालत का कार्य आरम्भ कर दिया। उस समय बोलपुर का नैतिक वातावरण अत्यन्त घृणित था। मद्यपान आदि दुराचारों का श्रोत प्रबल वेग से प्रवाहित था। इन सब दुष्कार्यों को दोष नहीं माना जाता था।

उस समय श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय ने बोलपुर में आकर औषध विक्रय का व्यापार आरम्भ किया। वे अति उत्साही ब्राह्म समाजी युवक थे। उनके निर्मल चारित्रिक गुणों से प्रभावित होकर मैं उनके प्रति आकृष्ट होने लगा। धीरे-धीरे उनके साथ ब्राह्म-धर्म के सम्बन्ध में चर्चा करने पर मुझे यह प्रतीत हुआ कि उपनिषद्, वेदान्त-सूत्र, ज्ञानशास्त्र आदि का पाठ करना एवं ब्राह्म उपासना ही वास्तविक धर्म है। प्रचलित मूर्तिपूजक हिन्दू धर्म के प्रति मेरी अनास्था उत्पन्न हो गई। मैं ब्राह्म समाजियों के साथ खूब मेल-जोल करने लगा। कभी नवविधान ब्राह्म समाज में तो कभी साधारण ब्राह्म-समाज की उपासना में योगदान करने लगा।

मेरे एक निकट के सम्बन्धी श्री यदुनाथराय अति निष्ठावान, धर्म-परायण ब्राह्म समाजी थे। उनके प्रयास से रामपुर-हाट में एक सुन्दर ब्राह्म मन्दिर स्थापित हुआ। वे इस समाज के आजीवन सचिव थे।

उनके प्रभाव से रामपुर हाट ब्राह्म लोगों का एक प्रमुख केन्द्र हो गया था। यदुनाथ जी मुझे अत्यन्त स्नेह करते थे। इसलिए प्रतिवर्ष उत्सव के समय मैं रामपुर हाट जाया करता था।

गया के आकाशगंगा पहाड़ में दीक्षा के पश्चात् श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी, रामपुरहाट के ब्राह्म समाज के उत्सव में एवं यदुनाथ बाबू के गृह-प्रवेश के उपलक्ष में उपस्थित हुए। तब गोस्वामी जी मुण्डित मस्तक, हाथ में दण्ड-कमंडल एवं गेरूवा वस्त्र धारण किये हुए थे। उस समय श्री शिवनाथ शास्त्री एवं त्रैलोक्यनाथ सान्याल इत्यादि अनेक प्रमुख ब्राह्म समाजी भी कोलकाता से आये हुए थे। तब ब्राह्म मन्दिर के वेदी-उपासना के कार्य के लिए श्रद्धेय श्री नगेन्द्रनाथ चटर्जी को नियुक्त किया गया था किन्तु वे अस्वस्थता के कारण वहां न आ सके। शिवनाथ बाबू एवं त्रैलोक्यनाथ बाबू भी वेदी-उपासना के कार्य करने में अनिच्छुक थे, इस कारण यदुबाबू खूब चिन्तित हो गये । तब गोस्वामीजी ने कहा कि चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। नगेन्द्र बाबू आज ही आ रहे हैं। यदुबाबू ने कहा - नगेन्द्र बाबू ने पत्र लिखा है कि वे अस्वस्थ होने के कारण नहीं आ सकेंगे। गोस्वामीजी ने कहा - वे आज अवश्य ही आएंगे। तब यदुबाबू ने पुनः पूछा कि आपने किस प्रकार जाना कि वे आज ही यहां आ रहे हैं ? तब गोस्वामीजी ने कहा - ''मैंने नगेन्द्र बाबू को घोड़ा गाड़ी में चढ़कर हावड़ा स्टेशन पहुंचकर टिकिट खरीदकर ट्रेन में चढ़ते हुए देखा है।'' यथा समय नगेन्द्र बाबू रामपुरहाट पहुंच गये, उन्हें देखकर सब लोग आश्चर्य चकित हो गये ।

इस बार ब्राह्म-समाज का उत्सव जितना अच्छा हुआ, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। गोस्वामीजी के भावावेश एवं नृत्य से ब्राह्ममन्दिर जैसे कम्पित होने लगा। उपासकगण भी भावावेश में आ गये।

एक दिन गोस्वामीजी ने वेदी-उपासना के बाद प्रवचन में कहा- ''हे देव ! तुम मुझे शिरोमणि बना दो''-''मुझको परशुराम बना दो'' उपासना समाप्त होने के बाद मैंने गोस्वामी जी से प्रश्न किया - आपने अपने प्रवचन में मुझे परशुराम बना दो, मुझे शिरोमणि बना दो, ऐसा क्यों कहा ? परशुराम ने तो मातृहत्या की थी । गोस्वामीजी ने कहा - ये परशुराम दूसरे हैं । पूर्वी बंगाल के धामराई ग्राम में परशुराम नाम के

एक जन्म से दृष्टिहीन व्यक्ति थे । उनके परिवार के लोगों ने उन्हें त्याग दिया था। वे श्रीमाधवजी के मन्दिर में रहते थे एवं रातदिन माधव-माधव पुकारकर रोते थे। उन्होंने अपने असीम भक्ति-बल के द्वारा वृद्धावस्था में नेत्रों में दृष्टि प्राप्त की थी । शिरोमणि का पूरा नाम गौर शिरोमणी था। वे वृन्दावन के एक परम भक्त थे। मैंने उनके समान वैष्णव भक्त पहले कभी नहीं देखा।'' यह कहकर गोस्वामीजी, गौर-शिरोमणी जी का गुणगान करने लगे।

उस समय देवेन्द्र बाबू ने कहा - एक दिन परशुराम बाबाजी को मैं देखने गया। वे माधव-माधव कहकर रो रहे थे। मैंने उनसे कहा कि माधव का विग्रह तो आपके सामने ही है, फिर आप क्यों रो रहे हो ? तब बाबाजी ने कहा कि इस माधव के अन्दर एक और माधव है, उनको पाने के लिए मैं रो रहा हूँ ।

उपासना के पश्चात् ब्राह्ममन्दिर से निकलकर जब गोस्वामीजी बाहर आये तब सामने के वृक्ष से एक पक्षी के चहकने की आवाज सुनकर भावावेश में कम्पित होते हुए वे ज्ञानशून्य हो गये ।

वे पुनः फाल्गुन पूर्णिमा में एकटक पूर्ण चन्द्रमा को देखते हुए भावावेश में ज्ञानशून्य हो गये। एकदिन डा. केदारनाथ-मित्र के जामाता ने बगीचे से एक बड़ा गुलाब का फूल लाकर गोस्वामीजी को दिया। उस फूल को देखकर गोस्वामीजी तुरन्त समाधिस्थ हो गये ।

ब्राह्मसमाज के इस उत्सव में प्रायः सभी लोग विमोहित हो गये थे। जिन्होंने वहाँ जो कुछ देखा, उसे वे भूल नहीं पा रहे थे।

गोस्वामी जी ने यदुबाबू के गृह-प्रवेश का कार्य भी किया। गोस्वामीजी के साथ उनकी धर्मपत्नी, सास एवं अन्य ब्राह्म महिलाएँ उत्सव में आयी थी। उपासना के बाद मेरी बड़ी बहन ने कुछ रूपये एवं कोसे की एक धोती गोस्वामीजी को भेंट दी। तब गोस्वामी जी ने यदुबाबू से कहा - ''यह क्या ! ब्राह्म समाज में पुरोहिती कब से प्रारम्भ हो गयी ?'' मेरी बड़ी बहन ने कहा कि आप मेरे गुरुवंशीय हैं, आपके सम्मान के लिए मैं यह दे रही हूँ। गोस्वामीजी ने वस्त्र एवं रूपये स्वयं न लेकर साधारण ब्राह्मसमाज में भेज दिये।

मैं जितना ब्राह्म लोगों के संसर्ग में आने लगा, उतना ही मैं उनके प्रति आकृष्ट होने लगा। उन लोगों की सत्यनिष्ठा, धर्मानुराग, सरलता, सद्व्यवहार आदि गुणों को देखकर मुझे बहुत ही शान्ति मिलने लगी। ब्राह्म समाज के संग के बिना अन्य संग कुसंग सा प्रतीत होने लगा। उनकी बातें न सुनने से तृप्ति नहीं मिलती थी। अतः मैं ब्राह्म लोगों के संसर्ग में दिन बिताने लगा।

ब्राह्मधर्म में अनुराग

जितना मैं शास्त्रों की चर्चा करने लगा, मुझे यह दृढ़ विश्वास होने लगा कि ब्राह्मधर्म ही वास्तविक धर्म है। धीरे-धीरे मैं एक कट्टर ब्राह्म हो गया था। उस समय ब्राह्म धर्म के विरूद्ध में हिन्दू समाज में घोर आंदोलन प्रारंभ हुआ । जगह-जगह हरिसभा की स्थापना होने लगी। अनेक प्रचारक विभिन्न स्थानों में हिन्दूधर्म का प्रचार करने लगे। मैंने हिन्दू प्रचारकों एवं वैदिक पंडितों के साथ शास्त्रीय विचार करके, ''ब्राह्म धर्म ही वास्तविक धर्म है'', इस मत को प्रतिष्ठित किया। हिन्दूओं ने अन्ततः इसको स्वीकार किया कि निकृष्ट अधिकारी के लिए ही मूर्तिपूजा की व्यवस्था की गई है। उस समय श्री अघोरनाथ चटर्जी की प्रेरणा से महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने ''शांति निकेतन आश्रम'' को ब्राह्म उपासना के लिए प्रदान किया। अघोरनाथजी को उस आश्रम का संचालक नियुक्त किया गया।

शांति निकेतन, बोलपुर से डेढ़मील (2 कि.मी.) दूर उत्तर दिशा में एकांत स्थान में स्थित था, वहाँ देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने भव्य भवन, विविध फल एवं फूलों के बगीचे बनवाये थे। यह उत्कृष्ट तपस्या स्थली थी। वहाँ दीर्घकाल तक उन्होंने तपस्या की थी। बाद में वृद्धावस्था में वे कलकत्ता के पार्कस्ट्रीट में वास करने लगे थे।

मैं जितना ही ब्राह्म धर्म के सिद्धान्तों की चर्चा करता, मुझे हिन्दूधर्म उतना ही असार, मिथ्या व कपटता से परिपूर्ण प्रतीत होने लगता। मैं क्रमशः हिन्दू धर्म का घोर विरोधी हो गया था और यह मानने लगा था कि हिन्दूगण स्वाधीन चिंतन के अभाव में ईंट, पत्थर, लकड़ी के विग्रह की वृथा पूजा कर रहे हैं, केवल बाह्य धर्मानुष्ठान दिखाकर कपट आचरण कर रहे हैं ।

उनके घरों में दुर्गा पूजन हो रही है। पंडितजी चावल, केला, मिठाई, धन आदि का संग्रह कर रहे हैं। यजमान मांस-मदिरा का सेवन करके उन्मत्त हैं। अन्य लोग निमंत्रण (भोज) खाकर मस्त हैं।

यथार्थ धर्म का कोई नामो निशान नहीं है। गुरु एवं पुरोहितगण केवल शिष्य व यजमान को ठगकर अपने स्वार्थ की सिद्धि कर रहे हैं। सन्यासीगण जटाधारण व भस्म लेप कर आडम्बर कर रहे हैं। वैष्णवगण कौपीन पहनकर माला तिलक धारण कर लोगों की आँखों में धूल झोंक रहे हैं। अल्पबुद्धि लोगों को ठगकर वे अपनी आजीविका चला रहे है। शास्त्र केवल वाक्पटुता का साधन मात्र है ।

धीरे-धीरे मैं हिन्दू धर्मावलम्बियों के प्रति, विशेषत: गुरु-पुरोहित, साधु-सन्यासी, शास्त्र, ब्राह्मण और देवी-देवताओं का प्रखर विरोधी हो गया। हिन्दूओं का कोई भी आचरण मुझे अच्छा नहीं लगता था। केवल हम कुछ **ब्राह्मसमाजी ही वास्तविक धार्मिक व्यक्ति हैं, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास हो गया।** मैं अपने कर्म में क्षति स्वीकार करके भी प्राणपण से ब्रह्म उपासना में लग गया।

शास्त्र चर्चा के समय तंत्रशास्त्र में अपने मत के अनुकूल एक मंत्र पाकर मैं आनंदित हुआ एवं उसका जप (साधन-भजन) करने लगा। कुछ दिन बाद यह ज्ञात हुआ कि **श्री विजयकृष्ण गोस्वामी ने ब्राह्मसमाज का त्याग कर दिया है।** यह सुनकर अत्यन्त दु:ख हुआ। अग्निहोत्री जी एक अच्छे व्यक्ति थे। उन्होंने भी ब्राह्मसमाज का त्याग कर दिया। अब गोस्वामीजी भी हिन्दू बन गये, यह सुनकर मेरी उनके प्रति जो श्रद्धा-भक्ति थी, वह भी नष्ट हो गई। मैं पुन: प्राणपण से ब्रह्मोपासना करने लगा।

नास्तिकता की तीव्र यातना

मैंने बहुत दिनों तक ब्रह्मोपासना की। परन्तु मुझे अपने जीवन में कोई उन्नति के लक्षण दिखाई नहीं दिये, इससे मुझे संदेह होने लगा। मेरे मन का उत्साह एवं उद्यम कम होने लगा। मेरे मन में आस्तिकता और नास्तिकता के बीच अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा। मैंने काफी सोच विचार कर

यह निष्कर्ष निकाला कि नास्तिक मत ही श्रेष्ठ है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, आत्मा आदि कुछ भी नहीं हैं। ईश्वर का काल्पनिक चित्रण करके लोगों को भयभीत करने का प्रयास किया जा रहा है। वेदांत आदि शास्त्र केवल पंडितों के बुद्धिविलास का साधन मात्र हैं।

विभिन्न दर्शनों में परस्पर मतभेद है। जिसने जैसा समझा, उसने वैसा अपना मत प्रचारित किया। अन्त:करण में नास्तिकता प्रवेश करने पर मेरे द्वारा नीति का बंधन भी शिथिल होने लगा। मुझे विदेशी धार्मिक सिद्धान्त उचित लगने लगे। खाओ, पीओ और मौज करो, अपनी मनमानी करो, परलोक या नरक का कोई भय न करो, ऐसे विचार मेरे मन में आने लगे। मेरा मन दिनोंदिन शुष्क होने लगा, किन्तु अंत में मैंने देखा कि इस मत का अवलम्बन करके भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। मन को पार्थिव (जागतिक) वस्तुओं से भुलावा देने पर भी मुझे शांति नहीं मिली। न मुझे आहार में सुख मिला और न ही किसी से बातचीत (मेलजोल) से, मन हर समय अशान्त रहने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं अथाह सागर में गिर पड़ा हूँ और वहाँ से निकलने का कोई उपाय नहीं है। मैं सारे विश्व में अकेला हूँ। कोई मेरा सहयोगी नहीं है। अब शायद मरने से ही मुझे शांति मिलेगी।

मेरे अन्त:करण की यातना दिनोंदिन बढ़ने लगी। क्रमश: वह असह्य हो उठा, तब मैंने सोचा कि आत्महत्या करने से ही मुझे शांति मिल सकती है। एक दिन मैं सांईथियाँ स्टेशन से बोलपुर आने के लिए ट्रेन की टिकट खरीदकर प्लेटफॉर्म में बैठा था। उस समय ट्रेन आकर चली भी गई किन्तु मुझे कोई होश ही न रहा। मैं सदा अनमनस्क रहने लगा। कभी-कभी ऐसा भी मन में होने लगा कि क्या मैं पागल हो गया हूँ?

परलोकवासी आत्मा का आविर्भाव

उस समय डिप्टी मजिस्ट्रेट रायपुर निवासी श्री प्रतापनारायण सिंह के पुत्र श्री हेमेन्द्रनाथ सिंह विदेश जाने की तैयारी कर रहे थे । वे एक शाकाहारी ब्राह्म उपासक थे । विदेश जाने से उन्हें वहाँ मांसाहर करना पड़ेगा, इसलिए मांसाहार का अभ्यास कर रहे थे । एक दिन उन्होंने मांस खाने के उद्देश्य से एक बकरा खरीदने के लिए अपनी पत्नी से

कुछ रूपये मांगे । उनकी पत्नी यह सुनकर उन्हें तिरस्कृत करते हुए कहने लगी, ''अरे ! तुम कितने निष्ठुर हो ? एक निरीह प्राणी की हत्या करके भक्षण करोगे ?''

तब हेमेन्द्रनाथ ने कहा , ''मुझे विदेश जाना है। इसलिए मेरे लिए मांसाहार का अभ्यास करना जरूरी है।'' पत्नी ने कटाक्ष करते हुए कहा- ''शायद तुम विदेश जाकर पुनर्विवाह करोगे। तुम्हारा मन विदेशी महिला को देखकर भ्रमित हो जायेगा।'' तब हेमेन्द्रनाथ ने कहा- मेरे मन को कोई भी भ्रमित नहीं कर सकता। तुम मेरे मन की दृढ़ता एवं शक्ति नहीं जानती हो । मैं इच्छा करने से यहीं बैठकर अपने मन की शक्ति से दूर बैठे व्यक्ति को भी मार सकता हूँ।''

तब पत्नी से हँस कर कहा - ''ये सब पागलपन की बातें हैं। मुझे मार के तो दिखाओ। मुझे कुछ भी नहीं होगा।''

तब हेमेन्द्रनाथ ने ''देखोगी-देखोगी क्या ?'' कहते हुए अचानक अपनी युवा पत्नी के ऊपर तीव्र दृष्टिपात किया। उस दृष्टिपात के प्रभाव से तत्क्षण उनकी पत्नी सुशीला मूर्छित होकर गिर पड़ी। परिवार के सभी लोग भयभीत हो गये। हेमेन्द्रनाथ घबड़ा कर ईश्वर के निकट अपनी पत्नी की प्राणरक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे। काफी समय पश्चात् सुशीला की चेतना वापस आ गई। किन्तु वह ठीक-ठीक प्रकृतिस्थ न हो सकी। उसके नेत्रों की दृष्टि एवं कंठस्वर में परिवर्तन आ गया तथा वह ग्रीक भाषा में बातचीत करने लगी।

इस अवस्था में तीन दिन व्यतीत हो गये। उस समय अघोरनाथ चटर्जी को यह सूचना दी गई। वे उन्हें लेकर शांति निकेतन में चले गये। साथ में मुझे भी ले गये। हम लोग वहाँ पर, सुशीला को साथ लेकर ब्रह्मोपासना करने लगे। उपासना के पश्चात् सुशीला पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गई। परन्तु उस दिन से हर रात को पुनः-पुनः विभिन्न परलोकवासी आत्माओं का आविर्भाव उसके ऊपर होने लगा ।

दुर्गापूजा की छुट्टी में कचहरी बंद रहने के कारण मैं प्रायः रोज शांति निकेतन जाता था । जब सुशीला के भीतर पापी आत्मा का आविर्भाव होता था, तब उसका स्वभाव कठोर व उच्छृंखल हो जाता था। पुण्यात्मा का आविर्भाव होने पर उसका स्वभाव विनम्र हो जाता था।

विभिन्न प्रकार की आत्माएँ अपने पूर्वजन्म का इतिहास सुनाती थी। मैंने कई घटनाओं की जांच करके उन्हें सत्य पाया। मैं परलोकवासी आत्मा में विश्वास नहीं करता था, अतः उन घटनाओं को मैं ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहा था। मुझे ऐसा लगता था कि उसे कोई मानसिक रोग हो गया है।

एक दिन रात को 9 बजे जब सुशीला खाट में बैठी हुई थी, मैं, हेमेन्द्रनाथ और अघोर नाथ भी पास में बैठे थे, अचानक सुशीला के भीतर एक परलोकवासी आत्मा का आविर्भाव हुआ। वह अंग्रेजों के समान हम सबसे हाथ मिलाकर मधुर वार्तालाप करने लगी। हमने पूछा कि आप कौन हैं ?

उस आत्मा ने कहा कि यह आप लोगों को जानने की आवश्यकता नहीं है। मैंने पूछा - ''आपकी मृत्यु कब हुई थी और आप क्या काम करते थे? ''आत्मा ने कहा - इन सब प्रश्नों को पूछने की कोई जरूरत नहीं है। हमने पुनः पूछा - आप यहाँ क्यों आये हैं ?

तब आत्मा ने कहा - मैं आप लोगों के उपकार के लिए ही आया हूँ । तत्पश्चात् काफी समय तक वार्तालाप करके वह चला गया। इस प्रकार लगातार तीन-चार दिनों तक वह रोज आकर धर्म सम्बन्धी बातचीत करने लगा। किन्तु वह कौन है ? यह हम लोग ठीक-ठीक नहीं समझ सके।

एक दिन प्रातः काल मैं बगीचे में घूम रहा था। सुशीला व हेमेन्द्र बाबू वहाँ कुर्सी में बैठे थे। अघोर बाबू भी साथ में थे। सामने एक टेबल रखा हुआ था। उसी समय सुशीला के भीतर उसी साधू की आत्मा का आविर्भाव हुआ। अघोरबाबू ने मुझे इशारा करते हुए उससे पूछा कि वह व्यक्ति जो बगीचे में अकेला घूम रहा है, वह ईश्वर को नहीं मानता। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक में विश्वास नहीं करता है तथा पूर्ण नास्तिक है।

यह सुनकर आत्मा ने कहा कि उसे बुलाकर लाओ। अघोरबाबू ने मुझे उस आत्मा के समक्ष प्रस्तुत किया। आत्मा ने मुझसे पूछा - ''आप क्या परमेश्वर को नहीं मानते हैं ?''

मैंने कहा - ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता है। आज तक इस विषय में कोई एक मत नहीं है।'' आत्मा ने पुनः पूछा

''आप क्या पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक कुछ भी नहीं मानते हैं ?''

मैंने कहा - ''स्वर्ग-नरक मनुष्य की कल्पना मात्र हैं। पाप-पुण्य के विषय में भी कुछ कहा नहीं जा सकता।''आत्मा ने मुझे अनेक प्रकार से समझाना प्रारंभ किया ।

मैंने भी विज्ञान एवं दर्शनशास्त्र के कठिन प्रश्नों की झड़ी लगा दी। किन्तु आत्मा ने मेरे सभी प्रश्नों का समाधान अच्छी तरह से कर दिया, जिससे मैं आश्चर्यचकित हो गया।

सुशीला बहुत ही कम पढी लिखी थी। उसके मुंह से इस प्रकार की बातें सुनकर मेरे मन में अंतर्द्वन्द्व प्रारम्भ हो गया और मैं किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सका। आत्मा को पुन: कहा गया - ''आप अपना पूरा परिचय दीजिए।''

अचानक मेरे मुंह से निकल गया कि क्या आप लोग इन्हें नहीं पहचान रहे हैं ? ये तो अघोरनाथ नामक एक सिद्ध योगी हैं। मेरे मुँह से यह शब्द कैसे निकल गया ? यह मैं स्वयं भी न समझ सका। मेरी बात सुनकर आत्मा ने मंद हास्य के साथ मेरी बात का समर्थन किया, सभी लोग आनंदित्त हुये।

कुंवार (आश्विन) का महीना था। हल्की हल्की ठंड पड़ने लगी थी। मैं शांति निकेतन में एक कमरे में सोया हुआ था। रात तीन बजे अचानक हेमेन्द्र बाबू ने मुझे जगाकर कहा - मेरी पत्नी सुशीला आपको बुला रही है । आप उसके पास जाइये। मैंने बिस्तर से उठकर कहा - आप भी मेरे साथ चलिए। तब हेमेन्द्रनाथ ने कहा - मैं नहीं जा सकता। सुशीला ने अपने पास आने से मुझे निषेध किया है। आप अकेले ही जाइए । मैं यह सुनकर सुशीला के शयनकक्ष में गया।

मैंने देखा कि वह वहाँ चुपचाप खड़ी है। जब मैंने कमरे में प्रवेश किया तब उसने विदेशियों की तरह मुझसे हाथ मिलाकर थोड़ा हंसकर मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने पलंग पर बैठा दिया। मुझे थोड़ा संकोच सा होने लगा । कुछ समय तक कोई बातचीत नहीं हुई। फिर हमारे मध्य वार्तालाप प्रारंभ हुआ :-

मैं - इतनी रात में, आपने मुझे क्यों बुलाया है ?

सुशीला - एक बात आपसे कहनी है ।

मैं - क्या बात है ?

सुशीला - पहले प्रतिज्ञा करो कि तुम मेरी बात मानोगे। तभी यह बात कही जायेगी।

मैं - यदि आपकी बात पालन करने योग्य होगी तो मैं अवश्य उसका पालन करूंगा।

सुशीला - आप योगाभ्यास करिए, इससे आपका मंगल होगा।

मैं - मैं गृहस्थ हूँ। मेरी संतान हैं। मैं कैसे योगाभ्यास कर सकता हूँ ?

सुशीला - कौन कहता है कि विवाहित व्यक्ति योगाभ्यास नहीं कर सकता है । कई ऋषिगण भी तो गृहस्थ थे, किन्तु वे महायोगी थे।

इस प्रकार अनेक कथोपकथन उनके साथ हुए। वे बार-बार योगाभ्यास के लिए मुझे प्रेरित करने लगे।

इधर धीरे-धीरे सूर्योदय का समय हो गया।

आत्मा ने कहा - सुबह हो रही है, अब मैं जा रहा हूँ।

तब मैंने कहा - आप तो जा रहे हैं किन्तु सुशीला की चेतना किस प्रकार लौटेगी ?

तब उन्होंने गुलाब का एक फूल मेरे हाथ में देकर कहा - कि इसे सिर में स्पर्श करने से ही (सुशीला की) चेतना लौट आयेगी।

मैंने उनके हाथ से वह फूल ले लिया। आत्मा ने जैसे ही मुझसे हाथ मिलाकर विदाई ली, वैसे ही सुशीला अचेत होकर बिस्तर में गिर गई।

मेरी क्षुद्र बुद्धि में यह रहस्य समझ में नहीं आ रहा था कि वास्तव में यह परलोकवासी आत्मा का कार्य है या सुशीला को कोई मानसिक रोग है। मैंने सुशीला के चैतन्य संपादन के लिए गुलाब के फूल को उसके ललाट में स्पर्श कराया। तत्क्षण सुशीला ने चैतन्य लाभ किया। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। मैं भी जल्दी से कमरे से निकल गया।

इस घटना का सुशीला को कुछ भी पता नहीं चला।

इस प्रकार का घटनाक्रम, रोज रात 3 बजे से सुबह तक चलता था। सुशीला के माध्यम से रोज मुझे योगाभ्यास के लिए प्रेरित किया जाने लगा।

अंततः मैंने उनकी बात को स्वीकार कर कहा :-

आप भी तो एक महान योगी हैं, आप ही मुझे योग की शिक्षा प्रदान करें।

परलोकवासी आत्मा - मैं तो अभी देह में वर्तमान नहीं हूँ। मैं कैसे तुम्हें योग की शिक्षा दे सकता हूँ?

मैं - मुझे किस प्रकार से योग की शिक्षा प्राप्त होगी ?

सुशीला - आप ओंकारेश्वर में - (मेरे एक परिचित) संत के निकट जाइये।

मैंने सम्मति प्रदान की ।

परलोकवासी आत्मा हाथ मिलाकर चली गयी । मैंने भी पूर्वानुसार (सुशीला का चैतन्य संपादन करके) प्रस्थान किया । हर रात ऐसी ही घटना होने लगी ।

परलोकवासी आत्मा-आप ओंकारेश्वर कब जा रहे हैं ?

मैं - मैं वहाँ नहीं जाऊंगा ।

परलोकवासी आत्मा - क्यों ?

मैं - उस व्यक्ति के प्रति मेरी श्रद्धा नहीं है, वह मांसाहारी है ।

सुशीला (धीरे-धीरे) - हिंसक ? (थोड़ी देर बाद) अच्छा मैं आपको अपने मित्र के पास भेजता हूँ ।

मैं - आपके मित्र कौन हैं ?

परलोकवासी आत्मा - श्री विजयकृष्ण गोस्वामी ।

मैं - वे अभी कहाँ रहते हैं ?

परलोकवासी आत्मा - कलकत्ते में।

मैं - क्या उनके पास जाने से वे मुझे योगशिक्षा देंगे ?

परलोकवासी आत्मा - हाँ, निश्चय ही उनके पास जाने से तुम्हारा मंगल होगा।

मैं - क्या आप मेरे लिए उनसे अनुरोध करेंगे ?

परलोकवासी आत्मा - हाँ, यदि तुम्हें कभी भी कोई असुविधा हो, तो मैं तुम्हारी सहायता करूंगा । मन में कोई प्रश्न हो तो तकिये के नीचे कागज में लिखकर रख देना, मैं स्वप्न में उसका उत्तर तुम्हें दे दूंगा ।

इस प्रकार उस परलोकवासी आत्मा ने मुझे उत्साहित किया ।

मैं पुनः असमंजस में पड़ गया । उनकी बात को मैं पूर्ण रूप से विश्वास नहीं कर पा रहा था । अंत में मैंने उस आत्मा से पूछा - यदि सामने के पेड़ की डाली अचानक टूट कर गिर जाये, तब मैं आपकी बात पर विश्वास कर सकता हूँ ।

परलोकवासी आत्मा - आज आप बोल रहे हो, पेड़ की डाली तोड़ो। कल बोलोगे, पंखा हिलाओ। परसों बोलोगे, दीवार गिर जाये । यदि मेरी बात में तुम्हें विश्वास नहीं है तो मैं तुम्हारे निकट आकर अब कोई वार्तालाप नहीं करना चाहता ।

मैंने उस परलोकवासी आत्मा का स्वाभिमान देखकर उनसे क्षमा याचना की । वे भी अनेक बातों से मेरा संदेह दूर करके मुझे परितृप्त करने का प्रयास करने लगे ।

इतनी घटनाएँ हो गई । मैं रोज रात 3.00 बजे से सुशीला के साथ निर्जन में रहता था। किन्तु हेमेन्द्रबाबू ने इस संबंध में मुझसे कोई जिज्ञासा नहीं की । सुशीला युवती थी। किन्तु रात को उसके निकट जाने से मुझे कोई संकोच भी नहीं होता था बल्कि ऐसा लगता था जैसे दो मित्र एक साथ सत्संग कर रहे हैं ।

वह एक युवती है; यह बोध भी मुझे नहीं रहता था ।

दीक्षा ग्रहण

कॉलेज खुल जाने के कारण हेमेन्द्र बाबू सुशीला को लेकर कलकत्ता चले गये । मैं कुछ दिन बाद वहाँ गया । मेरे घर में प्रवेश

करने के साथ ही हेमेन्द्र बाबू ने कहा कि सुशीला आपको बुला रही है। फिर वे अपने मित्र रामानंद चटर्जी के साथ अन्य कमरे में वार्तालाप करते चले गये । सुशीला मुझे देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई । वह अनेक प्रकार से मुझे उसी दिन शाम को श्री विजयकृष्ण गोस्वामी से मिलने के लिए आग्रह करने लगी ।

उल्लेखनीय है कि ब्रह्मसमाज त्याग करने के कारण श्री विजयकृष्ण गोस्वामी के प्रति मेरी कोई श्रद्धा नहीं थी तथा उनके पास जाने की मेरी कोई इच्छा भी नहीं थी। केवल संदेह के निवारण हेतु मैं उनके पास गया । उस समय गोस्वामीजी सुकिया स्ट्रीट में वास कर रहे थे । शाम के समय मैं जब वहाँ पहुंचकर सीढ़ी से ऊपर चढ़ रहा था, तब मैंने देखा कि एक युवक (शायद वृंदावन बाबू) सीढ़ी से नीचे उतर रहे हैं। उन्होंने मुझसे मेरा परिचय पूछा । मैंने कहा, मैं बोलपुर में रहता हूँ। तब उन्होंने मुझसे पूछा क्या आप गोस्वामीजी के पास से दीक्षा लेंगे ? आंतरिक इच्छा न होने पर भी मैंने अपनी स्वीकृति दे दी । उस युवक ने पुनः मुझसे प्रश्न किया कि आपको गोस्वामीजी का परिचय कहाँ से प्राप्त हुआ? मैंने कहा कि मैं सब जानता हूँ । (वास्तविकता तो यह है कि श्री विजयकृष्ण गोस्वामी शिक्षा व दीक्षा देते हैं, यह मुझे कुछ भी नहीं मालूम था किन्तु मैं केवल कौतूहल-वश सुशीला की बातों की सत्यता के परीक्षण हेतु वहाँ गया था ।) युवक ने पुनः कहा - आजकल गोस्वामीजी सब को दीक्षा नहीं देते, आप उनसे दीक्षा प्राप्ति की जिद न छोड़ें । एक बार दीक्षा ग्रहण करने पर आप देखेंगे कि आपके जीवन का आमूल परिवर्तन हो जायेगा । युवक चले गये । मैंने देखा कि गोस्वामीजी एक मृगचर्म में लेटे हुए हैं। विशाल देह है; अल्पाधिक जटाभार है, मानों साक्षात् कैलाशपति महादेव विराजमान हों । उनकी कन्या प्रेमसखी धूप जलाकर उनके कक्ष में रख रही थी । मैं कक्ष के बाहर ही खड़ा रहा । दो-तीन मिनट बाद गोस्वामीजी उठकर बैठे । मैंने उन्हें प्रणाम किया ।

गोस्वामी जी - आप यहाँ किस कारण से आये हैं ?

(सुशीला ने मुझे योग-साधना के लिए भेजा है, यह तो मैं नहीं कह सकता था, इसलिए मैंने अपनी वकालती बुद्धि लगाकर कहा)

मैं - मैं आपकी कृपा प्राप्त करने आया हूँ ।

गोस्वामीजी - क्या आप साधन (दीक्षा) लेंगे ?

मैं - जी हाँ ।

गोस्वामीजी - मैं तो स्वयं साधन (दीक्षा) नहीं देता ।

मैं - बहुत आशा लेकर आया हूँ ।

(वास्तविकता तो यह है कि केवल कौतूहल-वश आया था)

गोस्वामीजी - मेरे गुरुजी साधन (दीक्षा) देते हैं ।

मैं - वे कहाँ मिलेंगे ?

गोस्वामीजी - मानस सरोवर में ।

मैं - छुटपन में भूगोल में पढ़ा था कि तिब्बत में मानस् सरोवर नामक एक स्थान है। क्या वही मानस सरोवर ?

गोस्वामीजी - हाँ, उसके पास ही है ।

मैंने और कुछ न पूछा ।

यह वार्तालाप समाप्त हुआ ।

कुछ देर बाद गोस्वामीजी ने कहा - मैं दीक्षा के आदेश के लिए गुरुजी का स्मरण नहीं करता किन्तु आपके लिए ऐसा कर रहा हूँ ।

आप थोड़ी देर के लिए कमरे से बाहर जाकर इंतजार करें ।

मैं बाहर बरामदे में चला गया ।

गोस्वामीजी अपने गुरुजी का स्मरण करने लगे । ''जयगुरु, जयगुरु, जयगुरु''-

ये कुछ शब्द ही केवल मुझे सुनाई पड़े ।

दो-तीन मिनट बाद गोस्वामीजी ने मुझे बुलाकर कहा-गुरुजी ने कहा है कि आपको दीक्षा प्राप्त होगी, आप रात आठ बजे आइए ।

मैंने उन्हें प्रणाम किया और घर लौट आया ।

साधन (दीक्षा) के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता था और भीतर से कोई विशेष इच्छा भी नहीं थी। इसलिए मैंने सोचा कि रात को कौन

सुकिया स्ट्रीट जाये । अतः अगले दिन सुबह मैं गोस्वामीजी के पास गया। वे मुझे देखकर असंतुष्ट हुए एवं दीक्षा देने में असहमति प्रदान की। मैं उनके पास से वारासत के पास मंगलकाँथी नामक गाँव में मेरे मित्र केदारबाबू के पास चला गया । वहाँ कुछ दिन रहकर बोलपुर वापस लौटने के लिए कलकत्ते मे हेमेन्द्र बाबू के घर में गया । वहाँ जाते ही हेमेन्द्र बाबू ने मुझसे कहा कि सुशीला आपको बुला रही है । मैं सुशीला के पास गया-वह बोली-

सुशीला - आपकी दीक्षा नहीं हुई - आप हताश मत होईये, आप फिर गोस्वामीजी के पास जाइये ।

मैं - उन्होंने मेरा अपमान किया है, मैं फिर उनके पास दुबारा नहीं जाऊंगा।

सुशीला - कोई चिन्ता मत कीजिए एवं दुःखित मत होइए, आप पुनः उनके पास जाइये, आपका कल्याण होगा ।

मैं - पुनः यदि उन्होंने मेरा अपमान किया तब क्या होगा?

सुशीला - आप मुझे वहाँ स्मरण करना, मैं स्वयं वहाँ उपस्थित रहकर दीक्षा दिलवांऊगा ।

इस प्रकार अनेक प्रकार का वार्तालाप करके सुशीला मुझे समझाने लगी। सुशीला की एकान्त इच्छा जानकर मैं निर्लज्ज की भाँति सुकीया स्ट्रीट में गोस्वामीजी से मिलने गया। गोस्वामीजी मुझे आते देखकर फिर असंतुष्ट हुए ।

गोस्वामीजी-आप फिर मेरे पास क्यों आये हो उस दिन तो मैंने कह दिया था कि आपकी साधन-दीक्षा मेरे पास नहीं होगी ?

मैं - मुझे भी आपके पास आने की कोई ईच्छा नहीं थी परन्तु क्या करूँ ? साधु अघोरनाथ की जिद के कारण ही, उनकी बात मानकर आपके पास आया हूँ ।

साधु अघोरनाथजी का नाम सुनते ही गोस्वामीजी जरा आश्चर्यचकित हो गए, एवं कुछ देर तक मौन धारण करने के बाद मुझे बहुत ही मीठे वचनों में कहा कि - असमय में कुछ नहीं होता, अभी कुँवार का महीना चल रहा है, सामने जो आम का वृक्ष दीख रहा है

उसकी जड़ शाखा, पीड़, पत्ते सब छान-बीन कर देखो, कहीं भी आम का फल दिखाई नहीं देगा, किन्तु जब समय होगा, वैशाख का महीना आने के बाद यही वृक्ष आम से पूर्ण दिखाई देगा, अतः अभी आप बोलपुर लौट जाईये, समय होने से मैं आपको संवाद दूंगा । मैं उनकी बातें सुनकर उनको प्रणाम कर लौट आया । सुशीला मुझे देखकर खूब आनंदित हुई एवं गोस्वामीजी से संवाद मिलते ही उनसे मिलने को बार-बार बोली । मैं फिर वहाँ से बोलपुर लौट गया ।

कुछ समय उपरान्त, गोस्वामीजी के पुत्र योगजीवन का लिखित पत्र मुझे प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था कि आगामी कृष्णा त्रयोदशी के दिन यहाँ आने से साधन-दीक्षा प्राप्त होगी। पत्र पाने के बाद उपरोक्त तिथि के एक दिन पहले ही मैं हेमेन्द्र् बाबू के घर पहुंच गया । सुशीला ने आनंदित होकर मुझे शाम को गोस्वामीजी के पास भेज दिया । गोस्वामीजी ने मुझे कहा - ''कल सबेरे आठ बजे आप आईयेगा'' । मैं उन्हें प्रणाम करके घर लौटा । सुबह सुशीला ने मुझे खूब उत्साहित करके गोस्वामीजी के पास भेज दिया। मैं रास्ते में चलते चलते सोचने लगा कि यह साधन दीक्षा क्या वस्तु है ? मुझे तो कुछ भी अंदाज नहीं हो रहा है ।

सुकिया स्ट्रीट पहुंच कर देखा कि दो कुशासन बिछे हुए हैं। गोसाँईजी की छोटी पुत्री प्रेमसखी वहाँ एक पात्र में धूप जलाकर चली गई । गोस्वामीजी ने मुझे एक आसन में और दूसरे आसन में प्यारीदास नामक एक दूसरे ब्राह्म समाज के व्यक्ति को बैठने के लिए कहा। हम लोग पूर्वमुखी होकर बैठ गए। गोस्वामीजी सामने खड़े होकर उपदेश देने लगे। वह सुनकर मैं चमक उठा। सोचा, यह कैसी बात है ? गोस्वामीजी मुझे शिष्य बनायेंगे क्या ? मैं गुरुवाद या मध्यवर्त्ती वाद पर एकदम विश्वास नहीं करता। मैंने अपने कुलगुरु एवं उनके दिए हुए मंत्र का त्याग कर दिया है। फिर यहाँ पुनः गुरुकरण नहीं करूंगा''। मैं मन ही मन अत्यन्त क्रोधित होकर आसन से उछलकर बाजू में खड़ा हो गया एवं उनको बोला - ''मैं मनुष्य गुरु पर विश्वास नहीं करता। आप निवृत्त हों'' । तब गोस्वामीजी ने कहा - मनुष्य, मनुष्य ही होता है, मनुष्य कभी गुरु नहीं होता। एक मात्र भगवान ही गुरु होते हैं। उनके अलावा कोई दूसरा गुरु नहीं होता'' ।

गोस्वामीजी के मुख से ''भगवान ही गुरु होते हैं'' यह बात सुनकर मुझे श्रीमद्‌भागवत के एक श्लोक'' आचार्यम् माम् विजानीयात्'' याद आया। मैं पुनः शान्त होकर आसन पर बैठ गया । मैं पहले तंत्र से ब्राह्म समाज के मतानुयायी एक मंत्र का निर्वाचन करके उसका जप बहुत दिन से करता था। गोस्वामीजी ने कृपा पूर्वक वही मंत्र मुझे प्रदान किया। मुझे संतुष्टि हुई एवं सोचा कि गोस्वामीजी कई वर्षों तक ब्राह्मसमाज में थे इसलिए अब भी उसी प्रणाली के अनुसार दीक्षा देते हैं। खैर, मैं अपने मत एवं भाव के अनुसार मंत्र पाकर बहुत ही आनंदित हुआ - यदि कोई देव-देवी का मंत्र देते तो मैं अवश्य ही उसी समय उसका परित्याग कर देता।

मेरे द्वारा कहीं दीक्षा ग्रहण करना, असंभव कार्य था परन्तु गोस्वामीजी ने एक अद्‌भुत प्रकार से जाल बिछाया-जिससे मुझ जैसा पाषंड़ी, दुर्विनीत, गुरुत्यागी, नास्तिक गुरुवाद का विरोधी उनके जाल में फंस गया - मैं समझ करके भी वहाँ से निकल न सका - अंततः बंगला 1296, (ई. 1889) 3 कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी में मेरा दीक्षाकार्य संपूर्ण हुआ ।

दीक्षा ग्रहण करने के समय गुरुशक्ति (कुंडलिनी शक्ति) का कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। केवल यही प्रतीत हुआ कि मैं एक व्यक्ति की मुट्‌ठी के अंदर आ गया हूँ। कोई (शक्ति) मेरा पीछा करने लगी है। दीक्षा के बाद उन्हें प्रणाम करके मैंने पूछा -

मैं - गुरु सेवा शिष्य का विशेष कर्त्तव्य है। प्राचीन काल में शिष्यगण भिक्षा करके गुरु की सेवा करते थे । मैं तो दूर रहता हूँ। आपकी सब समय सेवा करना मेरे लिए संभव नहीं है। यदि मेरे द्वारा उपार्जित अर्थ (धन) द्वारा आपकी कोई सेवा में सहायता हो सके तो मैं थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता कर सकता हूँ या नहीं ?

गोसांईजी- (कान में हाथ रखकर) - छिः ! छिः ! सेवा सुश्रुषा या अर्थ के द्वारा सहायता करने को गुरुसेवा नहीं कहते। **गुरु की आज्ञा का प्रतिपालन एवं श्वाँस-प्रश्वाँस में नाम जप करना ही प्रकृत वास्तविक गुरु सेवा है। गुरु ही शिष्य को दान करते हैं। 'गुरु-संबंध' दान का संबंध है - ग्रहण का नहीं । जो गुरु शिष्य के द्वारा अर्थ की आशा**

करता है एवं जो शिष्य यह सोचता है कि मैं अर्थ द्वारा गुरु की सहायता कर रहा हूँ - वे दोनों नरकस्थ होते हैं ।

मेरे पूर्वज लोग भागवत आदि पाठ करके जिससे अर्थ की प्राप्ति अनायास होती थी, उसमें से यथायोग्य अपनी आजीविका में लगाकर बाकी रूपये गरीब शिष्यगणों को दान कर देते थे । गुरु शिष्य के संबंध के अतिरिक्त, यदि कोई यह समझे कि कहीं अर्थ या अन्नादि का अभाव है, तब वह स्व-इच्छानुसार दान कर सकता है ।

इस सब वार्तालाप के बाद मैं हेमेन्द्रबाबू के घर चला गया । सुशीला अत्यन्त आनंदित होकर मुझसे अनेक वार्तालाप करने लगी एवं उपदेशादि देने लगी । उसने कहा कि कभी भी यह दीक्षा परित्याग मत करना। **साधन-पथ में कभी-कभी शुष्कता आती है, वह साधक के लिए अत्यन्त ही कष्टप्रद समय है। उस समय धैर्य के साथ 'नाम' करना चाहिए। अनेक प्रकार की परीक्षाएँ आती हैं ।** कभी कोई असुविधा प्रतीत हो तो मुझे स्मरण करना - मैं आपकी सब आपदाओं से रक्षा करूंगा । इस सब बार्तालाप के बाद सुशीला ने मुझे अति हर्ष के साथ विदा किया।

इस घटना के बाद सुशीला के अंदर Spirit का जो आविर्भाव होता था, वह समाप्त हो गया। मेरे साथ उसका कोई संबंध भी न रहा। इतनी अलौकिक घटनाएँ हो गई किन्तु सुशीला या हेमेन्द्रनाथ बाबू को कुछ भी पता न चला । मेरी दीक्षा भी हो गई। यह बात भी वे जान न सके। इसके बाद जब भी मैं ''शान्ति-निकेतन'' जाता था - मुझे हल्का सा ज्वर (बुखार) होने लगता ।

ब्रह्मोपासना का पुनरारंभ

मैं पुनः नास्तिकवाद को छोड़कर, गोस्वामीजी के द्वारा प्रदत्त ब्रह्मोपासना बड़ी ही निष्ठा के साथ करने लगा । उस समय की अनेक प्रकार की विचित्र घटनाओं का उल्लेख कर रहा हूँ -

मेरे घर के बाजू में वकील श्री यशोदानंदन सिंह जी का बंगला था। वे वयोवृद्ध वैष्णव थे । शाम के समय जब मैं उपासना करने बैठता था तब वे अपने घर में हाथ में झाँझ मंजीरा लेकर गौरांग महाप्रभु की

आरती-कीर्तन वगैरह करते थे जिसकी आवाज से मुझे साधना में असुविधा होती थी। मैंने गुस्से के मारे अपने आसन से ज्योंही उठने की कोशिश की - मुझे ऐसा स्पष्ट प्रतीत हुआ कि कोई मुझे मेरा हाथ पकड़कर कह रहा है कि ''उपासना त्याग करने की चीज है ? बैठकर नाम जप करो''। मैं पुन: धैर्य के साथ जप करने लगा ।

एक और दिन, मैं दु.मंजिले में उपासना कर रहा था, नीचे हो-हल्ला होने लगा - उस कारण मैं मन स्थिर करके भजन-साधन कर नहीं पा रहा था । मैं क्रोधित होकर साधना परित्याग करके वहाँ गया एवं अपनी पत्नी वगैरह को खूब डाँटा, वे भी रोने लगी । मैं गुस्से से काँपता हुआ बाहर रास्ते में चला गया -फिर घूमता हुआ वकील रसिक कृष्ण के घर चला गया । रसिक बाबू ने कहा - हरिदास बाबू, इतनी रात गये यहाँ कैसे आये हैं ?

मैं वहाँ बैठ गया । वहाँ बातचीत चल रही थी कि ''श्रीसनातन गोस्वामी वृन्दावन में अतिदीनता पूर्वक सर्वदा भजन करते थे । जब भी कभी कोई साधन में विक्षेप (बाधा) आता था, तब वे अपने मन में ये सोचते थे कि मैंने भगवान के पास जरूर कोई अपराध किया है, जिस कारण मेरे भजन-साधन में विघ्न उपस्थित हो रहा है। तब वे स्वयं को अपराधी समझ कर भगवान के समक्ष अपने को धिक्कार देते हुए कृपा हेतु प्रार्थना करते थे एवं फिर धैर्य पूर्वक अपना भजन-साधन प्रारंभ करते थे।'' इन बातों को सुनकर मैं अपने घर जाने के लिए उठा । मुझे उठते देखकर रसिक बाबू ने कहा -

यह कैसी बात है ? अभी आप आये और इसी वक्त आप जाने लगे, थोड़ी देर बैठे भी नहीं ।

मैं - मैं जिस प्रयोजन से आया था, वह पूरा हो गया ।

रसिक बाबू - (आश्चर्यचकित होकर) ऐसी क्या बात है ?

मैं - आज संध्या के समय उपासना के समय घर में हो-हल्ला होने से मैं अपनी धर्मपत्नी से झगड़कर, भगवान की कृपा से आपके घर में आ पहुँचा, भगवान ने आप लोगों के द्वारा मुझे समुचित उपदेश प्रदान कर दिया है, मैं कृतार्थ हो गया हूँ ।

इस प्रकार की अनेक छुटपुट घटनायें होने लगी । उपासना के समय गोस्वामीजी की दरिद्रता का स्मरण होने से मुझे बड़ा कष्ट होने लगा। मैं सोचता था - जिन्होंने ब्राह्मसमाज के प्रचार के लिए अपना जी-क्जान लगा दिया। अनाहार, अनिद्रा में रहकर, अपने जीवन की अन्य सभी आशाऐं त्यागकर पूरे भारत में ब्राह्म धर्म की विजय-पताका फहराई। एक दिन के लिए भी अपने सांसारिक जीवन की चिन्ता न की, ब्राह्म समाज के उत्थान के लिए भी अपने हृदय रोग की यंत्रणा सहन की। उस अकृतज्ञ, निष्ठुर ब्राह्मसमाज ने अंतिम जीवन में उनके मासिक मानदेय को भी जो कि काफी अल्प था, बंद कर दिया ।

गुरुदेव गोसाँईजी की दरिद्रता का स्मरण करके मैं दिनों-दिन चिन्तित रहने लगा । उन्होंने रूपया भेजने के लिए निषेध कर दिया था। अत: रूपये भेजने में संकोच होने लगा । मुझे प्रतीत होने लगा कि मैं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से गुरु कृपा की प्रार्थना तो कर रहा हूँ परन्तु सांसारिक दृष्टि से उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर रहा हूँ । इस प्रकार शुष्क-भक्ति वृथा है । अंत में मन विषाद से भर गया एवं रह न सका - गोस्वामीजी के पास एक मनीआर्डर भेज दिया । उस समय गोसांईजी श्री वृन्दावन धाम में दाऊजी के मंदिर, गोपीनाथ बाग में रहते थे । बाद में सुना था, गोस्वामीजी मनिआर्डर प्राप्त कर आनंदित हुए थे और वे रूपये दाऊजी मंदिर की सेवा के लिए दे दिये थे ।

रसीद प्राप्त करने के बाद मैं आनंदित हुआ एवं कुछ दिन बाद फिर कुछ रूपये भेजे-इस बार भी गोस्वामीजी ने रूपये ग्रहण किए एवं साथ ही पत्र भी मिला, जिसमें लिखा हुआ था कि गोस्वामीजी मनीआर्डर ग्रहण एवं चिट्ठी-पत्री भी नहीं लिखते हैं। यदि कुछ भेजने की एकांत इच्छा हो तो माता योगमाया देवी जी के नाम भेजना । तद्नुसार मैं माताठकुरानी के नाम बीच-बीच में रूपये भेजता था-माताजी भी आशीर्वाद के साथ पत्रोत्तर देती थी ।

कुछ दिन बाद माताजी के देहान्त का संवाद मिला। उससे मैं दु:खित हुआ - उसके बाद मैं उनके पुत्र योगजीवन गोस्वामीजी के नाम पत्र या मनीआर्डर भेजता था ।

मैं पहले ही कह चुका हूँ; दीक्षा लेने के बाद मैं जब भी शान्ति-निकेतन जाता था, मुझे हल्का ज्वर (बुखार) होता था। मैं अपने मित्र अघोर बाबू को बोलता था कि ''मित्र, मुझे शान्ति-निकेतन की जलवायु अब सहन नहीं होती। जब भी यहाँ आता हूँ, मुझे बुखार हो जाता है। इतना सुंदर निर्जन स्थान, स्वच्छ वायु, निर्मल जल, स्वच्छ भवनों से पूर्ण जगह में शरीर ठीक नहीं रहता परन्तु बोलपुर की घनी बस्ती, गंदे नाले से पूर्ण जगह में मेरा शरीर स्वस्थ रहता है। इसका कारण मैं समझ नहीं पा रहा हूँ ।

शान्ति निकेतन में जाने से यद्यपि मेरा शरीर अस्वस्थ हो जाता था फिर भी पूर्व अभ्यासानुसार वहाँ जाकर ब्रह्मोपासना करने में मुझे आनंद आता था । ब्राह्म मित्रों के साथ सत्संग एवं वार्तालाप करने में मुझे अच्छा लगता था। एक आकर्षण की अनुभूति होती थी। इसलिए मैं प्राय: वहाँ जाता था ।

दीक्षा देने के बाद गोस्वामीजी ने मुझे उच्छिष्ट (झूठा) खाने से निषेध कर दिया था। इस कारण मैं कट्टरता के कारण विग्रह का प्रसाद भी ग्रहण नहीं करता था। इस कारण स्थानीय भक्तगणों के मन में कष्ट होता था । मैंने पत्र लिखकर गोसाँईजी से स्पष्टीकरण मांगा । उन्होंने उत्तर दिया कि श्रीविग्रह का उच्छिष्ट, झूठा नहीं कहलाता, वह प्रसाद है। उसे खाने में कोई दोष नहीं है । मैं पत्र पाकर सोचने लगा - गोस्वामीजी ने ऐसा क्यों लिखा ? बाद में अपने मन में समाधान किया कि श्री विग्रह तो ईंट, पत्थर के तुल्य है, अत: उससे भोजन उच्छिष्ट कैसे हो सकता है? उनकी भोजन ग्रहण की कोई क्षमता ही नहीं है तो खाद्य झूठा कैसे हो सकता है ?''

प्रथम बार - ढाका गमन

इस तरह कुछ दिन बीत गये। ई. 1891 में दुर्गापूजा की छुट्टी में, वर्द्धवान में ब्राह्म सम्मेलन में जाने के लिए निमंत्रण मिला, मैं वर्द्धमान गया । वहाँ पर श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के संबंध में विभिन्न प्रकार की समालोचनाएँ हुई, जिन्हें सुनकर मन उदास हो गया, फिर भी उनसे

मिलने के लिए व्याकुल हो उठा । बोलपुर आकर रूपये लाने में देरी होगी, यह सोचकर चूचैड़ा के पास धरमपुर में मेरे एक मित्र नवीन चन्द्र मित्र के पास से बिस्तर, कुछ सामान एवं रूपये लेकर मैं ढाका जाने के लिए रवाना हुआ ।

ढाका में गोस्वामीजी कहाँ रहते है ? उनका पता क्या है ? किस ट्रेन से ढाका जाते हैं ? यह सब मुझे कुछ भी मालूम न था। उस समय मेरे मन में केवल एक बात थी कि गोस्वामीजी काफी दरिद्र हैं। अत: उनके आश्रम में बैठकर भोजन करना या रहना मेरे लिए ठीक नहीं है। अत: मैंने नवीन बाबू के परिचित कुछ व्यक्तियों के नाम लिखकर रख लिये ।

मैं जल्दबाजी के कारण नैहाटी स्टेशन आकर ढाका जाने की टिकट लेकर सामने जो ट्रेन खड़ी थी, उसमें चढ़ बैठा। वह कहाँ जा रही है ? मुझे उसका पता न था । ट्रेन चलने पर लोगों ने कहा कि मुझे पहले ''गोयालन्द'' जाना पड़ेगा । मैं पथ के परिश्रम के कारण थक गया था। ट्रेन में मुझे निद्रा आ गई । अचानक एक स्टेशन में कुली लोग ''पोड़ादह-पोड़ादह'' कहते हुए चिल्लाने लगे। मेरी निद्रा टूट गई। देखा कि मेरे कमरे में कोई भी व्यक्ति नहीं है। मैंने प्लेटफार्म पर उतरकर एक व्यक्ति से पूछा- महोदय, क्या यह ट्रेन ''गोयालन्द'' जाती है ? उसने हाँ कहा फिर एक अंग्रेज साहब को देखकर अचानक पुन: उससे पूछा - क्या यह ट्रेन ''गोयालन्द'' जायेगी ?

अंग्रेज ने पूछा -

अंग्रेज - तुम कहाँ जाओगे ?

मैं - मैं ढाका जाऊंगा ।

अंग्रेज - जल्दी उतरो। वहाँ दूसरे प्लेटफार्म में जो ट्रेन खड़ी है, वह ''गोयालन्द'' जायेगी। यह ट्रेन नहीं जायेगी। जल्दी करो - गाड़ी छूटने वाली है ।

मैं जल्दी से सामान वगैरह लेकर ''गोयालन्द'' की गाड़ी में चढा। उसी समय ट्रेन चल पड़ी । सुबह ''गोयालन्द'' में पहुँचा-पद्मा नदी की विस्तीर्ण जल राशि देखकर मन प्राण प्रफुल्लित हो उठा । वहाँ सुना कि

मुझे स्टीमर पर चढकर ढाका जाना होगा। वहाँ तीन गाड़ी खड़ी थी । मैंने काफी पूछताछ करने के पश्चात् (क्योंकि पहले धोखा खा चुका था) पता लगाया कि मुझे जो स्टीमर 'नारायणगंज' जा रही है, उसमें चढ़ना होगा। मैं निःसंशय होकर 'नारायणगंज' जाने के स्टीमर में चढ़ बैठा । पद्मा एवं मेघना नदी की सौंदर्य राशि देखकर आनंदित हुआ । पद्मा स्वेत वर्णा है जबकि मेघना का जल काला है। दोनों के संगम में एक 'लकीर' सी दीखती है , जैसे हरि-हर का मिलन हुआ है ।

शाम को करीब ढाई बजे मैं नारायण गंज पहुँचा। खूब भूख लगी। रात्रि में कुछ भी नहीं खाया था। सबेरे भी निराहार था। होटल की अपवित्र पूरी, सब्जी खाने को मन नहीं चाह रहा था । वहाँ से 'ढाका' जाने के लिए ट्रेन में चढ़ा । कुछ स्टेशन पार होने के बाद एक युवक ने मुझसे पूछा -

युवक - महोदय, आप कहाँ जायेंगे ?

मैं - ढाका में ।

युवक - किस लिये आप ढाका जा रहे हैं ?

मैं - मेरे गुरुदेव वहाँ रहते हैं, उनके दर्शन करने जा रहा हूँ ।

युवक - आपके गुरुदेव कौन हैं ?

मैं - श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी ।

युवक - वे तो ढाका में नहीं रहते।

मैं - फिर वे कहाँ रहते हैं, मैंने तो सुना था, वे 'ढाका' में रहते हैं?

युवक - वे 'ढाका' से कुछ दूर ''गेण्डारिया'' में रहते हैं। रात्रि के समय 'ढाका' जाने से आप परेशान हो जायेंगे ।

मैं - फिर मैं क्या करूँ ?

युवक - आप 'दोलाई गंज' नामक स्टेशन में उतर जाईये। वहाँ से गेंडारिया आश्रम नजदीक पड़ेगा ।

मैं - कृपया स्टेशन आने पर मुझे बोल दीजिएगा ।

युवक - चलिये, मैं भी वहाँ उतरूंगा ।

यथा समय ''दोलाईगंज'' स्टेशन आ गया। उस युवक ने मुझे अपने साथ लेकर आश्रम के पास पहुंचाकर कहा कि आप गेट के भीतर जाइए, मैं जाता हूँ। मैंने आश्रम में प्रवेश कर देखा कि गोस्वामीजी खड़ाऊँ पहनकर टहल रहे हैं। मुझे देखकर खूब प्रसन्न हुए एवं कुशलक्षेम पूछी। अपने पुत्र योगजीवन को बुलाकर कहा कि हरिदास बाबू पूरे दिन निराहार हैं, कुछ जलपान लाकर दो एवं भोजन (अन्न) की व्यवस्था करो । अपने सेवक को कहा कि शीघ्र हाथ-पाँव धोने के लिए पानी एवं बैठने के लिए कंबल ले आओ। मैं हाथ पाँव धोकर कंबल के आसन पर बैठ गया। योगजीवन अतिशीघ्र एक थाली में जलपान (नाश्ता) लेकर आये। मैंने थाली में देखा - पिस्ता, अनार, किशमिश, विविध फल, सन्देश, मीठा इत्यादि हैं। मैं सोचने लगा कि यह कैसी बात है ? गोस्वामीजी तो अति दरिद्र हैं, यह तो राजघरानों के लोगों जैसा आहार है।

खैर, मैंने पेट भरकर जलपान किया, थोड़ी देर बाद योगजीवन ने आकर कहा कि रात्रि का भोजन कर लें । मैंने कहा - सब लोगों के साथ बाद में प्रसाद लूंगा, अभी जरूरत नहीं है ।

गोस्वामीजी ने मुझे अपने शिष्य श्री राधारमण बाबू के यहाँ रहने की सुव्यवस्था कर दी - सामने पंडित श्यामाकान्त चटर्जी (शिष्य) के कुटीर के छींके में एक हंडी सरसों का तेल रखा हुआ था-पता चला, नहाने के समय सब कोई उसे उपयोग में लाते हैं । डटकर भोजन करने के बाद मैं गहरी नींद में सो गया ।

नेहाटी स्टेशन से जिस ट्रेन से मैं आ रहा था, वह दूसरी जगह जा रही थी, फिर रात के समय ढाका पहुँचने से भी मुझे काफी असुविधा होती-अनेक प्रकार की विपदाओं से निकालकर गोस्वामीजी ने मुझे अपने पास बुला लिया - मैं उस समय कुछ समझ नहीं पाता था-सोचा था कि यह सब अक्स्मात (बाईचॉन्स) हुआ है ।

मैं व्याकुलता के सहित महान उत्साह के साथ ढाका गया था। परन्तु यहाँ रहने से मेरे मन में फिर से अशांति शुरू हो गई। सबेरे गोसाँइर्जी की फूस की कुटिया में प्रवेश करके देखा कि एक चित्रपट टंगा हुआ है, माता यशोदा गोपाल को गोद में लेकर स्तन पान करा

रही है। मैं यह देखकर दुःखी हो गया। गोसाँईजी के घर में हिन्दू देवताओं के चित्रपट कैसे लगे हुए हैं ? क्या गोसाँईजी मूर्त्तिपूजक हो गए हैं ? मन में अनेक प्रकार की चिन्ताएँ होने लगी । अचानक ईसा मसीह का चित्र भी दृष्टि-गोचर हुआ। उसे देखकर थोड़ी तसल्ली हुई-सोचा-सब प्रकार की छवि संग्रहित की गई हैं।

गोस्वामीजी के पास कई कर्महीन (निठल्ले) शिष्य आश्रम में रहते हैं। गोस्वामीजी उनके उदर-पोषण की व्यवस्था करते हैं । सबेरे एक बड़े पात्र में चाय बनाई गई। सभी लोग चाय पीने लगे। मैं चाय नहीं पीता था। गोस्वामीजी के आग्रह करने से थोड़ी पीनी पड़ी । पण्डित श्यामाकान्त चटर्जी के साथ प्रथम साक्षात्कार हुआ । उन्होंने मेरा खूब सत्कार किया । उनका आचार-बातचीत, व्यवहार देखकर मुझे अत्यन्त आनंद की प्राप्ति हुई। उनके साथ मैत्री का दृढ़ संबंध स्थापित हो गया ।

मध्याह्न भोजन के समय, मैं प्रसाद पाने गया। आहार की सामग्री देखकर आश्चर्यचकित रह गया-विविध प्रकार के व्यंजन, दाल, सब्जी, उत्कृष्ट परमान्न, पुष्पान्न, खीर इत्यादि। मैंने श्रीधर नामक एक शिष्य से पूछा-

मैं - क्या रोज ही इस प्रकार का भोजन बनता है ?

श्रीधर - हाँ, रोज ही इसी प्रकार प्रसाद पाता हूँ ।

मैं - गोस्वामीजी के पास रहकर इस प्रकार भोजन रोज करने में तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

श्रीधर - उससे कुछ नहीं होता ।

मैंने सोचा - गोस्वामीजी सरल व्यक्ति हैं । ये सब फालतू, निठल्ले, आलसी लोग उनकी सरलता का फायदा ले रहे हैं - इनमें मनुष्यता नाम की कोई चीज नहीं है ।

मैंने सीधे गोस्वामीजी से प्रश्न किया, ''मैं देख रहा हूँ कि आश्रम में षोड़शोपचार से भोजन की व्यवस्था हो रही है। यह तो ठीक नहीं है। जो लोग भजन-साधन करेंगे-उनको तो केवल

जीवनधारण करने के लिए अल्प एवं सामान्य आहार करना चाहिए। जिह्वा की लोलुपता तो ठीक नहीं है। अधिक परिमाण में गरिष्ट भोजन करने से इन्द्रियों की प्रबलता बढ़ जाती है। भजन साधन नष्ट हो जाता है ।

गोस्वामीजी ने उत्तर में कहा - ''शान्तिपुर में श्याम सुन्दर की सेवा, महिलायें अति प्रेम के साथ विविध सामग्री से करती हैं। वही आदत इन लोगों में हो गई है । खैर, आज से अधिक रसोई नहीं होगी-केवल दाल, एक रसा सब्जी, एक तली हुई सब्जी एवं खटाई होगी। आश्रम के सब लोगों को बुलाकर उन्होंने समझा दिया। दूसरे दिन जब भोजन करने गया तो देखा पूर्ववत् सभी रसोई बनी है, उनकी आज्ञा का कोई पालन नहीं किया गया ।

दूसरे दिन, कुंज बिहारी घोष (गोस्वामीजी के शिष्य) ने मुझे निमंत्रण दिया। मैं भोजन करने उनके घर गया। वहाँ मिर्च की सब्जी, हर व्यंजन में मिर्च ही मिर्च भरी देखकर मैं दंग रह गया। मैं मिर्च बिल्कुल कम खाता था। अतः बड़ी मुश्किल से भोजन समापन किया-मेरी छाती जलने लगी । पूर्वी बंगाल के कुंज बाबू ने डटकर भोजन किया । साथ में मछली का भी सेवन किया ।

अपने पूर्वजों के वंश के संस्कार से मैंने कभी भी आमिष आहार ग्रहण नहीं किया था। गोस्वामीजी के शिष्यों को इस प्रकार राजसिक, तामसिक आहार भक्षण करते देखकर व्यथित हुआ । मुझे यह प्रतीत हुआ कि इस प्रकार के भोजन करने से भजन-साधन में अनुराग आ ही नहीं सकता। पहले देवी-देवताओं के चित्रों को वहाँ देखकर अश्रद्धा उत्पन्न हुई थी। फिर इस प्रकार के रजोगुणी, तमोगुणी आहार शिष्यों को करते देखकर उनके प्रति भी मेरी अश्रद्धा हो गई।

उसी समय मेरी बड़ी पुत्री सरोजिनी का विवाह होने वाला था। मैंने ब्राह्मसमाज में उसके विवाह देने की अनुमति लेने के लिए गोस्वामीजी से पूछा-उत्तर में उन्होंने कहा - ब्राह्मसमाज, नामक कोई समाज व्यवस्था नहीं है ।

मैं मन ही मन सोचने लगा कि सारा जीवन गोस्वामीजी ने

ब्राह्मसमाज में बिताया एवं अभी ऐसे कह रहे हैं जैसे वे इस समाज के विषय में पूर्ण अनभिज्ञ हैं । मैंने पुन: प्रश्न किया कि मैं हिन्दू पौत्तोलिक पद्धति से कन्या का विवाह अनुष्ठान नहीं करना चाहता।

गोस्वामीजी-आपको कोई अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं है। घर में बड़े भाई, चाचा, मामा वगैरह आत्मीयगण हैं, वे लोग ही विवाह करवा देंगे । समाज किस को कहते हैं ? जहाँ भाई, बन्धु, निकट संबन्धी रहते हैं, वही समाज है। वे जैसा बोलें, वैसा अनुष्ठान करना चाहिए। कोई मद्रास से, कोई बिहार से, कोई शिमला से आकर मिल जाने से क्या समाज बनता है ?

मैं उनकी बात सुनकर चुप हो गया। उनकी बातें मुझे अच्छी नहीं लगी । एक दिन मैंने गोस्वामीजी से कहा कि आपके जीवन चरित्र के ऊपर एक ग्रन्थ लिखा जाना चाहिए। उन्होंने कहा - मनुष्य क्या मनुष्य की जीवनी लिख सकता है ?

मैं - आपके जीवन की घटनाओं को पढ़ने से भी साधारण मनुष्य को फायदा होगा। आप स्वयं ही अपना जीवन चरित्र लिख सकते है।

गोस्वामीजी-अभी उसकी कोई आवश्यकता नहीं। फिर मैंने कहा कि हम लोगों को कोई चिन्ह धारण करने की अनुमति दीजिए। विभिन्न जगहों में हम लोगों के गुरु-भाई, बहन वगैरह हैं। कोई चिन्ह (निशानी) रहने से, पहचानने में सुविधा होगी । गोस्वामीजी ने प्रत्युत्तर में कहा कि ऐसे ही समझ जायेंगे, चिन्ह धारण करने की कोई जरूरत नहीं है।

हम लोगों के वंशजों के द्वारा पुरीधाम के श्री श्रीजगन्नाथदेव की पट्टडोरी की सेवा चलाई जाती थी। मैं देवी-देवता नहीं मानता था। अत: पट्टडोरी* की सेवा बंद हो गई थी इसलिए गोस्वामीजी ने एक दिन कहा-

गोसाँईजी-पट्टडोरी की सेवा बंद मत करो ।

* पुरी धाम में रथ यात्रा या स्नान के समय जगन्नाथ, बलराम एवं सुभद्रा जी के श्रीविग्रहों को स्थानांतर करने के लिए रेशम से निर्मित रस्सी बनाई जाती है। रथ में विग्रहों को चढ़ाने के समय पट्टडोरी द्वारा उन्हें बाँधकर ले जाया जाता है एवं रथ के ऊपर बने खंभों से इन्हें पट्टडोरी द्वारा बाँध दिया जाता है । ये रेशम की डोरियाँ देखने में बहुत ही सुंदर होती हैं। कभी कभी ये डोरियाँ माला रूप में भी काम में लाई जाती हैं ।

मैं - लकड़ी से निर्मित विग्रह को जूट से बनी रस्सी से बाँधने से क्या लाभ ? आप तो जानते ही हैं कि माँ यशोदा, गोपाल को रस्सी से बाँधने गई थी, क्या वे बाँध सकी थी ? भगवान को बाँधने (अपने वश में करने) के लिए प्रेम रूपी डोरी की आवश्यकता पड़ती है, इस प्रकार मैंने गोस्वामीजी को एक लम्बा लेक्चर झाड़ दिया ।

गोस्वामीजी ने मेरी बातों का कोई उत्तर नहीं दिया । कोई दूसरे गुरु होने से अपनी इष्ट निन्दा सहन नहीं करते। मुझे बाहर निकाल देते। किन्तु गोस्वामीजी अन्तर्यामी हैं। वे मेरे भीतर की दुर्दशा को जानकर इष्ट निन्दा सुनकर भी चुप रहे ।

रोज सुबह अनेक जगह से पक्षियों के झुण्ड आश्रम में उपस्थित हो जाते थे। गोस्वामीजी बाँये हाथ में एक बड़े बर्तन में 5-6 किलो चावल लेकर सामने आँगन में डालते जाते थे और पक्षीगण आनन्द से खाकर उड़ जाते थे। उस समय दुर्भिक्ष चल रहा था- चावल की कीमत भी काफी थी। गोसाँईजी सुदरिद्र हैं, रूपये की कोई नियमित आमदनी भी नहीं है - अत: इतने कीमती चावलों को पक्षियों को खिलाने की आवश्यकता है, यह मेरे समझ में नहीं आता था । गोसाँई जी के हर काम आश्चर्यजनक हैं।*

रोज संध्या के समय आश्रम में कुछ समय तक संकीर्तन होता था। उसमें चैतन्य (गौरांग महाप्रभु) की पूजा व वंदना सुनकर मुझे अत्यन्त क्लेश होने लगा। मैं अत्यन्त क्रोधित हो गया। रात्रि को नींद नहीं आई, सोचने लगा-अब गोसाँईजी भी नर-पूजा, मूर्ति पूजा एवं वंदना करने लगे हैं। भगवान के आसन में नर-पूजा ? श्री चैतन्य एक परम भक्त हैं, यह मैं जानता हूँ । गोसाँईजी अब ब्रह्म उपासक नहीं रहे । मैं बोलपुर में पड़ा रहता तो अच्छा था। यहाँ यह सब देखने के लिए वृथा आया । रात्रि के 1 बज गये। मैं बिस्तर में सो न सका। अचानक उठकर सीधे गोसाँईजी के पास जाकर उन्हें दोषारोपण करने लगा । गोसाँईजी कुछ

* प्रत्येक गृहस्थ को शास्त्रोक्त पंच यज्ञ (पितृ, ऋषि, देव, नृ एवं भूत) करने का विधान है । उनको इन यज्ञों को करने की कोई आवश्यकता नहीं थी । केवल शिष्यगण को शिक्षा के निमित्त इन्हें करते थे - यह बात मुझे तब समझ में नहीं आई थी ।

समय चुप रहकर, श्री चैतन्य तत्व, श्री नित्यानंद तत्व एवं श्री अद्वैत तत्व की व्याख्या करने लगे । मैंने कहा कि यह सब साधारण व्यक्ति नहीं समझते। साधारण व्यक्ति उन्हें भगवान मानकर श्रद्धा करता है । सारी रात्रि मेरी अनिद्रा में कटी ।

सबेरा होने के बाद सोचने लगा-कहाँ जाऊँ ? कहाँ जाकर थोड़ी शान्ति पाऊँ ? काफी देर बाद मैं धीरे-धीरे गोसाँईजी की कुटिया में गया, वहाँ जाकर देखा कि बहुत से भक्तगण वहाँ बैठे है, मैं चुपचाप एक कोने में बैठ गया । गोसाँईजी कहने लगे-मुसलमानों के प्रमुख धर्म ग्रंथ में एक कहानी है-एक दिन प्रभु परमेश्वर ने अपने दूत शैतान को बुलाकर कहा तुम मुझे एक मुट्ठी मिट्टी लाकर दो, मैं मनुष्य की सृष्टि करूंगा-परन्तु शैतान ने पृथ्वी एवं अन्य लोकों में जाकर मिट्टी की याचना की; परन्तु उसे कहीं भी थोड़ी मिट्टी न मिली। सब जगह उसे नकारात्मक उत्तर मिला। परमेश्वर ने उसे पुन: भेजा - इस बार शैतान पृथ्वी से थोड़ी मिट्टी चुराकर भागा। पृथ्वी उसके पीछे दौड़ी-शैतान हाँफता हुआ मिट्टी लेकर परमेश्वर को देता हुआ बोला - बड़ी मुश्किल से यह मिट्टी लाया हूँ, यदि पकड़ा जाता तो मेरी आफत होती ।

परमेश्वर ने हाथ में मिट्टी लेकर एक फूँक मारी। उससे 'आदम' की उत्पत्ति हुई । परमेश्वर ने उसे अपने सिंहासन में बिठाकर अपना मुकुट पहना दिया। वह चारों ओर प्रकाशित हो उठा । परमेश्वर ने शैतान से कहा, ''देखो, 'आदम' का कितना सुंदर स्वरूप है, तुम उसे प्रणाम करो।'' शैतान ने प्रणाम करने में आनाकानी की। उसे 'आदम' को प्रणाम करने की एकदम इच्छा न थी । तब परमेश्वर ने एक दस्तावेज निकालकर शैतान को कहा कि क्या इसमें जो हस्ताक्षर हैं वह तुम्हारे हैं ? शैतान ने 'हाँ' कहा- तब परमेश्वर ने कहा - देखो, तुमने इसमें लिखा है कि मैं परमेश्वर का दास हूँ, वे जो आज्ञा देंगे, उसका नतमस्तक होकर पालन करूँगा, नहीं तो स्वर्ग से हटा दिया जाऊंगा। अत: तुम 'आदम' को प्रणाम करो ।

गोस्वामीजी सभी के मध्य शिष्यगणों को यह कहानी सुना रहे थे परन्तु मुझे ऐसा लगा जैसे यह कहानी मुझे ही सुनाई जा रही है । कल रात्रि में मैंने उनका तिरस्कार किया था - इसलिए कहानी के माध्यम से

मुझे गोस्वामीजी कह रहे हैं कि जब गुरुकर लिया है, तब उनकी सब आज्ञा का पालन करना पड़ेगा नहीं तो शैतान के समान पदच्युति हो जायेगी । मैं गुस्से से तिलमिला उठा। मैं वहाँ बैठ न सका, उठकर गोस्वामीजी से कहा - यहाँ से ब्रह्मसमाज कितनी दूर है ?

गोस्वामीजी - क्या बात है ?

मैं - मैं ब्रह्मसमाज के 'बंग बाबू' से मिलना चाहता हूँ ।

गोस्वामीजी- 'बंग बाबू' अच्छे व्यक्ति है । यहाँ से ब्रह्मसमाज एक कोस के लगभग दूर है ।

मैं - मैं वहाँ अभी जाऊँगा ।

गोस्वामीजी ने तब श्रीचरण बाबू (उनके शिष्य) को कहा कि हरिदास बाबू ब्रह्मसमाज जायेंगे-उनके साथ जाकर उन्हें वहाँ पहुंचा आओ, वे रास्ता नहीं जानते ।

श्रीचरण बाबू भी ब्राह्मसमाज के सम्पादक रह चुके थे। रास्ते में मैंने उन्हें खूब फटकारा-कि आप लोग आश्रम में रहते हैं। गोस्वामीजी (मूर्तिपूजक) पौत्तोलिक हिन्दू होते जा रहे हैं। आप लोग कुछ प्रतिवाद भी नहीं करते हैं। उन्होंने कहा कि मैं क्या कर सकता हूँ ? मेरी बात कौन सुनेगा ? यथा समय नव विधान ब्राह्मसमाज में पहुँच कर श्री बंगबाबू से मिला एवं अनेक वार्तालाप के बाद मैंने वहाँ की 'उपासना' में योगदान किया ।

मैं जब ब्रह्मोपासना कर रहा था, अचानक मैं तन्मय हो गया एवं वहाँ मैंने सामने गोस्वामीजी को साक्षात् खड़े हुए देखा । मैं आश्चर्य चकित हो गया। सोचा क्या मेरा माथा खराब हो गया है ? या गोस्वामीजी मुझे कुछ 'जादू' वगैरह दिखा रहे हैं । मैं कुछ भी निर्णय नहीं ले पा रहा था-किसी को कुछ बोल भी न सका-शायद लोग मुझे बेवकूफ समझें ।

उपासना के पश्चात् मैं आश्रम में लौट आया । मेरा मन दिन दिन संकुचित होने लगा। अत: दुखी हृदय से उनसे आज्ञा लेकर मैं बोलपुर लौट आया।

कलकत्ते के श्याम बाजार में गमन

ढाका से बोलपुर आने के बाद मैं अफसोस करने लगा कि मैंने गोस्वामीजी से दीक्षा लेकर गलती की है। वे मूर्तिपूजक हिन्दू हैं । खैर, मैंने अपनी उपासना का परित्याग नहीं किया। पूर्ववत् चालू रखी । इधर बड़े दिन (25 दिसम्बर) की छुट्टी प्रारंभ हुई । मेरे मन में फिर गोस्वामीजी के पास जाने की प्रबल इच्छा होने लगी। मैं अपने को रोक न सका । सबेरे थोड़ा नाश्ता करके कलकत्ता ट्रेन से गया । गोस्वामीजी कलकत्ते के श्याम बाजार में थे परन्तु मैं उनका वास स्थान ठीक से नहीं जानता था। खूब बरसात होने लगी । घोड़ा गाड़ी नहीं मिली। अंत में मैं पालकी किराये लेकर हावड़ा स्टेशन से श्याम बाजार की ओर चला ।

मैं पालकी लेकर श्याम बाजार में इधर-उधर घूमने लगा । अचानक श्यामाकान्त बाबू दुमंजिले से उतर कर मेरे पास आये एवं मुझे साथ लेकर घर में ले गए - वहाँ भक्तगणों की भीड़ थी, तिमंजिला मकान था। ऊपर जाकर गोस्वामीजी को प्रणाम किया - उन्होंने मेरी यथायोग्य कुशलक्षेम पूछी । थोड़ी ही देर में कुलदानंद ब्रह्मचारी नामक गोस्वामीजी के एक शिष्य ने आकर एक केले के पत्ते में विभिन्न प्रकार की मिठाईयाँ, रसगुल्ला, अखरोट, किशमिश, पिस्ता, अनार वगैरह देकर जलपान करने के लिए कहा। मैंने कहा-इतनी वस्तुएँ क्यों दे रहे हो ? ब्रह्मचारीजी ने कहा - खाओ भैया, प्रेम से खाओ । मैंने तृप्ति के साथ सब खा लिया ।

प्राय: डेढ़ घंटे बाद दोपहर के भोजन का समय हुआ - श्री नगेन्द्रनाथ चटर्जी मुझे बुलाने आये - मैंने कहा कि मैंने अभी अभी डटकर जलपान किया है। उन्होंने कहा - कोई बात नहीं, चलिये भोजन कर लीजिए । मैं आहार करने गया। वहाँ मुझे लगा जैसे राजसूय यज्ञ चल रहा है - पनीर, मटर पुलाव, विभिन्न प्रकार की सब्जी, दही, पकौड़ी वगैरह । मैंने फिर भरपेट भोजन किया। ऐसा भोजन शायद ही पहले कभी किया हो ? रोज इस प्रकार के व्यंजन बनते थे । कितने लोग खा रहे हैं? इसका कोई हिसाब नहीं है ।

उस समय गोस्वामीजी की माताजी स्वर्णमयी देवी भी वहीं थी । वे विधवा थी एवं स्वपाक भोजन बनाती थी । वे कभी भी थोड़ा भोजन

नहीं बनाती थी। कम से कम सात-आठ व्यक्तियों का भोजन बनाकर उसमें से हम लोगों को भी थोड़ा-थोड़ा देती थी ।

एक दिन रात्रि आठ बजे तीन विवाहित स्त्रियों की दीक्षा हुई । यथासमय सब दरवाजे, खिड़की बंद कर दिए गए। तीन पृथक-पृथक आसन बिछाये गये । हम बाकी लोग पीछे दूर में बैठकर नामजप करने लगे । गोस्वामीजी जैसे ही उपदेश आदि देकर 'नाम' प्रदान करने लगे, उसी समय एक स्त्री उच्च स्वर में अजीब तरह से चित्त्कार (आवाज) करने लगी । गोसाँईजी ने बार-बार उन्हें शांत होने को कहा - बड़ी मुश्किल से वे शांत हुई। यथा समय दीक्षा लेकर वे तीनों स्त्रियाँ अपने अभिभावकों के साथ चली गई । तत्पश्चात् गोस्वामीजी से मेरी निम्नलिखित वार्तालाप हुई ।

मैं - वह स्त्री क्यों इस प्रकार से चिल्ला रही थी ?

गोस्वामीजी - एक प्रेत ने इनका आश्रय ले रखा था। नाम का तेज सहन न करने के कारण वह चीत्त्कार करके भाग गया ।

मैं - प्रेत ने इनको क्यों आश्रय किया था ?

गोसाँईजी - साधन प्राप्ति के समय उद्धार होने की आशा से वह आया था किन्तु 'नाम' की तीव्रता वह सहन न कर सका ।

मैं - क्या प्रेत को देखा जा सकता है ? दरवाजे तो सब बंद थे, वह कैसे आया ? वह देखने में कैसा है ?

गोस्वामीजी - यहाँ आने के पहले ही प्रेत उस स्त्री के अंदर प्रविष्ट हो गया था। प्रेत देखा जा सकता है, उसका रंग काला डरावना था ।

मैं यह सब सुनकर दंग रह गया । इस बार मुझे गोसाँईजी के पास रहकर कुछ शांति व आनन्द मिलने लगा । एक दिन गोस्वामीजी ने मुझ से पूछा -

गोस्वामीजी - आप शास्त्र ग्रंथ आदि का पाठ करते हैं ?

मैं - हाँ, मैं नित्य पाठ करता हूँ ।

गोसाँईजी - कौन कौन से ग्रंथ ?

मैं - देवेन्द्रनाथ ठाकुर का ब्राह्मधर्म का व्याख्यान, उपनिषद आदि।

गोस्वामीजी - कुछ भक्ति ग्रंथ का पाठ करते हैं क्या ?

मैं - कौन से भक्ति ग्रंथ ?

गोस्वामीजी - ज्यादा पाठ करने को नहीं कहता हूँ, केवल ''श्री चैतन्य चरितामृत'' व ''चैतन्य भागवत'' का पाठ करा कीजिए । पहले चैतन्य भागवत पढ़ें । यह सुनकर मैं शिशिर बाबू के कार्यालय में जाकर चैतन्य भागवत ग्रन्थ खरीद लाया एवं नित्य पाठ करना प्रारंभ कर दिया।

श्याम बाजार के घर में अत्यन्त भीड़ होने लगी । नित्य उत्सव सा माहौल लगता था । सुबह से लेकर रात्रि आठ बजे तक लगातार लोग उनके दर्शन के लिए आते थे । विभिन्न व्यक्ति अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते थे - गोस्वामीजी शान्त भाव से सबका सदुत्तर देते रहते थे । मैंने एक दिन पूछा -

मैं - इतने लोग आपके पास आकर अनेकानेक प्रश्न पूछते हैं; आपको असुविधा नहीं होती ? हम लोग वकील हैं, हमें रूपये देकर लोग सलाह लेते हैं। उसके बाद भी कभी कभी झंझट सा मालूम होता है ।

गोस्वामीजी-मुझे यह सब सहने का अभ्यास हो गया है । एक श्रेणी के व्यक्ति हैं, जो सारे दिन बाजार में घूमकर केवल वस्तुओं के मूल्य पूछते रहते हैं। कुछ भी खरीद नहीं करते। इसी श्रेणी के लोग ज्यादा हैं।

मैं - आप ज्यादा दिन यहाँ मत रहिए, ये लोग आपको परेशान कर देंगे ।

गोस्वामीजी - इस बार अतिवृष्टि के कारण ढाका के आसपास की जगह डूबकर गीली हो गयी है। इसलिए अभी तक यहाँ हूँ, परसों रविवार को ढाका जाऊंगा ।

मैं गोस्वामीजी को प्रणाम कर अगले दिन बोलपुर वापस लौट आया । उनके कथनानुसार 'चैतन्य भागवत' रोज एक अध्याय पाठ करने लगा । जगदीश बाबू सम्पादित 'चैतन्य चरितामृत' भी खरीद लिया । चैतन्य भागवत पढकर तृप्ति नहीं मिली, फिर चैतन्य चरितामृत पढ़ने लगा । उसके शुरू के अध्याय बड़े ही क्लिष्ट एवं दुर्बोध्य हैं; फिर भी गुरु आज्ञानुसार रोज पढ़ने लगा। एक जगह लिखा था ''यदद्वैतम् ब्रह्मोपनिषदि तदपास्य तनूमा'' श्लोक पढ़कर मुझे हंसी आ गई - एक

और जगह लिखा था ''लोभी कायस्थगण राजकार्य करे'' यह पढ़कर मुझे लेखक कविराज गोस्वामी के ऊपर अश्रद्धा हो गई । कायस्थ जाति को दोषारोपण करना मुझे अच्छा न लगा (क्योंकि मैं भी कायस्थ जाति का हूँ) । यद्यपि ग्रंथ में श्री चैतन्यजी की भक्ति का सुंदर वर्णन है; फिर भी मुझे वह ग्रंथ, साम्प्रदायिकता पूर्ण, (पौत्तोलिक) मूर्ति पूजा का समर्थक लगा। परन्तु गुरुआदेशानुसार मैं स्नान करने के बाद नित्य ग्रन्थ का एक अध्याय पाठ करने लगा ।

द्वितीय बार ढाका गमन

गोस्वामीजी के पास जाने से मन में संघर्ष उत्पन्न होता था, किन्तु प्राणों में एक अद्‌भुत आकर्षण भी था, जिस कारण उनके अदर्शन से मुझे बड़ी व्याकुलता होती थी। पुनः 1893 ई. दशहरा की कचहरी में छुट्टी होने के कारण मैं ढाका की ओर रवाना हुआ । इस बार रास्ते का पूर्ण विवरण ज्ञात था। अतः मुझे जाने में कोई असुविधा नहीं हुई । इस बार गोस्वामीजी की कुटिया के अंदर नई वस्तु देखने को मिली । गोसाँईजी के आसन के दक्षिण दिशा की ओर सिंहासन में एक राधा-कृष्ण का विग्रह देखा - उसे देखकर मुझमें पुनः क्रोध का संचार हुआ। मैंने गोस्वामीजी की ओर तीव्र दृष्टिपात किया - उन्होंने मेरे मन की बात जान ली एवं कहा कि यह कुतू (उनकी छोटी लड़की) के खेलने की गुड़िया है, सुनकर मन कुछ शान्त हुआ ।

इस बार भी पहले की तरह पक्षियों को चावल वितरण, सबेरे सब मिलकर चाय का सेवन, पंडित महाशय की कुटिया के पास सरसों तेल की हंडी से तेल शरीर मे मलकर बूड़ी गंगा में स्नान, दोपहर में षोड़शोपचार से भोजन, रात्रि में राधारमन बाबू के यहाँ विश्राम इत्यादि चलने लगा।

एक दिन मैं गोस्वामीजी के कुछ अकर्मण्य, घुमक्कड़, शिष्यों के साथ नहाने जा रहा था - वे लोग रास्ते में ब्राह्म समाज की निंदा करने लगे । यद्यपि मैं पूर्ववत् ब्राह्मसमाज नहीं जाता था; परन्तु अन्तःकरण में श्रद्धा थी । मैंने उन लोगों का खूब तिरस्कार करके कहा - तुम लोग

पहले तो खूब ब्राह्म समाज में जाकर उपासना वगैरह करते थे और अब उल्टी बातें कहते हो - तुम लोगों का पहले ब्राह्म समाज में जाना उचित नहीं था । यह सुनकर उनमें से एक व्यक्ति ने कहा - मैं ब्राह्मण जाति का हूँ, आपने ब्राह्म समाज में जाकर किया ही क्या है ? मैंने असवर्ण विवाह किया, जनेऊ फेंक दिया, आहार संबंधी कोई विधि निषेध भी नहीं माना परन्तु अब गोस्वामीजी के पास दीक्षा पाने के बाद धीरे-धीरे सनातन धर्म के आचार-अनुष्ठान पुनः पालन करने को बाध्य हो गया । आप ज्यादा इठलाईये मत, कुछ दिन अपेक्षा कीजिए - गोसाँईजी आपके सिर में ऐसा डंडा मारेंगे कि आप का वर्तमान पथ सब परिवर्तित होकर आप पूर्ववत् पूर्ण वैष्णव बन जायेंगे । मैंने रूष्ट होकर कहा - यह काम तुम्हारे समान मूर्खों के द्वारा ही संभव हो सकता है ।

दुर्गा-नवमी के दिन गोस्वामीजी के कुछ शिष्यों ने मुझसे कहा कि चलिये आज ढाका की देवी माता (ढाकेश्वरी) के दर्शन करके आते हैं। मैं न चाहते हुए भी उनके साथ देवी के दर्शन के लिए गया । मंदिर में जाकर देखा कि वहाँ बकरों की लगातार बलि हो रही है, चारों तरफ खून बिखरा पड़ा है । मेरा जन्म वैष्णव कुल में हुआ था तथा मैं आजीवन प्राणी हत्या का विरोधी था। यह भीषण दृश्य देखकर मैं कम्पित होने लगा। मुझे हिन्दुओं के इस निर्मम, पैशाचिक मनोवृत्तियों के ऊपर घृणा होने लगी।

गुरुभाईगण भक्तिपूर्वक देवी को प्रणाम करके, सिर में सिंदूर का तिलक ग्रहण करके बताशा प्रसाद खाते हुए लौटे । मैंने पुजारी प्रदत्त बताशा चुपचाप रास्ते में फेंक दिया - मन ही मन सोचने लगा- गोस्वामीजी के साथ-साथ उनके शिष्य भी बर्बाद हो गये ।

आश्रम में एक दिन नानी माँ (गोस्वामीजी की सास) ने मुझे कहा- ''आपका गुरुदर्शन हो गया है'' ? मैंने कहा - नहीं फिर नवविधान ब्राह्म समाज में जो दर्शन हुआ था, उसे मैंने विस्तार पूर्वक कहा । सुनकर उन्होंने कहा कि तब तो आपका ''गुरु दर्शन'' हो गया है ।

गेण्डारिया आश्रम ढाका की जिस फूस की कुटिया में गोस्वामीजी साधन-भजन करते थे, उस कुटिया के अंदर एक बड़ा सा त्रिशूल गड़ा

हुआ था। वहाँ पर दीपक की एक बड़ी बाँबी भी बन गई थी । उस कुटीर के अन्दर एक बिल में एक विराट विषधर सर्प रहता था, आजकल उस कुटिया को बंद करके चाबी लगा दी गई है। गोस्वामीजी को मैंने 'सर्प' के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि हाँ, यह बात सत्य है। प्रायः रात्रि में वह मेरे सिर एवं शरीर में चढ़ जाता था। बाद में लोगों के समक्ष दिन में भी मेरे शरीर में चढ़ने लगा था। तब से मैंने बेल के मूल की लकड़ी की माला धारण करना प्रारंभ कर दिया है । बेल की लकड़ी धारण करने से सर्प वहाँ नहीं आता है। मैंने पूछा - सर्प आपके शरीर में क्यों चढ़ता है ? उन्होंने कहा जो लोग भजन साधन करते हैं, उनका शरीर आन्तरिक रूप से शीतल हो जाता है। साँप को शीतल स्थान पंसद है। इसलिये वह आ जाता है। अभी भी सांप उस कुटिया के बिल में है । किसी किसी साधक के शरीर में अनाहत मधुर ध्वनि (प्राणायाम जनित) होती है, उससे आकृष्ट होकर भी सर्प आता है ।

एक दिन मैंने उनसे पूछा कि आप एक बार बोलपुर चलिये । **उन्होंने कहा-जाने के लिए जा सकता हूँ। रूपये की व्यवस्था भी अपने आप हो जाती है, परन्तु अपनी इच्छा से कुछ करने की इच्छा नहीं होती-मुझे उस समय लगता है कि मैं नरक में डूब रहा हूँ। मैंने संकल्प कर लिया है कि यदि उनकी इच्छा हो, तभी कोई कार्य करूंगा। वे जैसा करायेंगे, वैसा ही करूंगा। मुझमें स्वतंत्र कोई सामर्थ्य नहीं है ।''** इस प्रकार उत्तर सुनकर मैं चुप रह गया ।

साधन कुटीर के बाहर एक आम का घना वृक्ष है। गोस्वामीजी प्रायः उस वृक्ष के नीचे बैठकर भजन साधन करते थे, उस बार आम्रवृक्ष से मधुवर्षण आरंभ हुआ। गोस्वामीजी ने मुझे वहाँ ले जाकर कहा, देखिये किस प्रकार वृक्ष से मधुवर्षण हो रहा है। जिस वृक्ष के पास या नीचे भगवान की उपासना या कीर्तन होता है, वहाँ मधुवर्षण हो सकता है। वेद में इसका वर्णन है। मैं अपनी आँखों से यह दृश्य देखकर दंग रह गया । पत्तियां मधु से भीगकर गीली हो गई हैं, असंख्य चींटियाँ वृक्ष तल में आकर मधु-भक्षण कर रही हैं। मैं इतना कठोर हृदय हूँ कि यह सब देखकर भी बोला कि ''नये पत्ते आने के समय ऐसा कभी-कभी होता है''।

एक बार ढाका से एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ उन्हें भजन सुनाने आये- उनके साथ में एक तबलची एवं वायलीन वादक भी थे। चारों ओर भक्तगण बैठे थे, वाद्य संगीत शुरू हुआ। अचानक गोस्वामीजी की माता स्वर्णमयी देवी ने वहाँ आकर अजीब तरह से नृत्य करना शुरु कर दिया । गोस्वामीजी संपूर्ण शान्त एवं उद्वेग-रहित होकर बैठे रहे । घर के सब लोग असमंजस में पड़ गये । नृत्य करते-करते उनके पैर से लगकर राधाकृष्ण की मूर्ति टूट गई, मुझे खुशी हुई । भजन-गायन के बाद सब लोग चले गए। गोस्वामीजी ने अपनी माँ को साधन कुटीर में बंद करके रखने को कहा ।

मैंने गोस्वामीजी से पूछा - आपकी माता अचानक लोगों के बीच आकर क्यों नृत्य करने लगी ?

गोस्वामीजी - मेरी माँ के पिता-माता संतान अभाव से दुःखित थे, एक सिद्ध फकीर की कृपा से माँ का जन्म हुआ था । माँ के अंदर कभी-कभी उस फकीर का आविर्भाव होता है। उस समय माँ उन्मादग्रस्त हो जाती है ।

मैं - साधन कुटीर में तो विषधर सर्प रहता है। वहाँ यदि कोई दुर्घटना घटी तो क्या होगा ?

गोस्वामीजी - (हँसते हुए) माँ के सामने, सर्प की ताकत नहीं है जो बिल से बाहर निकल सके । उसके दूसरे दिन माताजी को कुटिया से बाहर निकाला गया। वह पूर्ववत् स्वस्थ थी। गोस्वामीजी निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान के अतीत थे। इतने लोगों के सामने उनकी माँ नृत्य करने लगी तो उन्हें कुछ भी खराब महसूस नहीं हुआ - वे समस्त घटनाओं में भगवत् लीला दर्शन करते थे - यह बात मैं तब समझ नहीं सका था ।

गोस्वामीजी के दिव्यचक्षु खुल गये थे इसलिए उन्होंने अपनी माता को अपनी कुटिया में रख दिया। वे जानते थे कि सर्प उनकी माता का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता - यह बात भी मेरी समझ के (उस समय) बाहर थी । मैं चिन्तित हो गया था ।

इस बार भी गोस्वामीजी ने कहा कि पुरी में श्री जगन्नाथ देव की 'पट्टडोरी' देनी चाहिए । इस बार भी मैंने उनकी बात को काट दिया ।

तब उन्होंने कहा - कुल की प्रथा की रक्षा करनी चाहिए । मैं अपने को बड़ा चतुर एवं बुद्धिमान समझता था । एक दिन मैंने उनसे ''श्रीकृष्ण तत्व'' के बारे में पूछा । उन्होंने कहा ''कृष्णस्तु भगवान स्वयं'' इस बात को सुनकर मैं खीज गया एवं उनसे घोर तर्क करने लगा । वे भी असंतुष्ट होने लगे । तब मैं वहाँ अधिक दिन रहना अनुचित समझकर वहाँ से लौटकर कलकत्ता चला गया । कलकत्ते गोस्वामीजी के परम भक्त ब्राह्मसमाज के प्रचारक श्री नगेन्द्रनाथ चटर्जी से मिला। मैंने उनसे कहा कि आप तो गोस्वामीजी को खूब मानते हैं। वे कहते हैं, ''कृष्णस्तु भगवान स्वयं।'' आपकी क्या राय है ? तब उन्होंने कहा - वे भगवत् भक्त तो हैं, पर उनकी बुद्धि तीक्ष्ण नहीं है, मन्द है। उनकी बात सुनकर मुझे तृप्ति मिली । मैं वहाँ से बोलपुर लौट आया ।

कलकत्ते के सुकिया स्ट्रीट में राखाल बाबू के घर में गमन

ढाका से लौटकर मन में शांति नहीं मिली। फिर भी यथावत् खूब भजन-साधन करता रहा । कुछ दिन बाद मुझे एक दर्शन मिला । दोपहर का करीब एक बजा था - मैंने उस समय देखा कि अपने सामने मैं स्वयं खड़ा हूँ; शरीर का प्रत्येक अंग-प्रत्यंग स्पष्ट रूप से मुझे दृष्टि-गोचर हुआ । आइने में भी इतना स्पष्ट नहीं दिखता । बीच-बीच में मुझे इस प्रकार दर्शन होने लगे । मैंने इस बात को किसी से भी नहीं कहा।*

यद्यपि गोस्वामीजी से मेरा मतभेद था, फिर भी समय-समय पर उनके दर्शन के लिए अवश्य जाता था । उनके आचार, व्यवहार एवं क्रिया-कलापों पर मेरी सुतीक्ष्ण दृष्टि थी । सर्वदा उनकी गल्तियों का अनुसंधान करता था- एक मात्र पौत्तोलिकता (विग्रह-पूजन) का समर्थन छोडकर दूसरा कोई दोष उन में दिखता नहीं था । 1893 ई. में भाद्र के महीने में मैं अपनी धर्मपत्नी को लेकर उन्हें दीक्षा दिलवाने कलकत्ते में सुकिया स्ट्रीट में राखाल राय चौधरी जी के घर में गया ।

---

* यह एक प्रकार का आत्म-दर्शन है । इस दर्शन से पूर्णरूप से देहात्म बुद्धि नहीं जाती । साधन पथ में इस तरह के दर्शन होने से यह पता चलता है कि हम ठीक साधन पथ पर चल रहे हैं ।

मेरी धर्मपत्नी **दीक्षा लेने मात्र से नाम की प्रबल शक्ति सहन न करने के कारण समाधिस्थ सी हो गई । गोस्वामीजी ने अपनी पुत्री व सास को कहा कि तुम लोग उसके मेरूदंड को अच्छी तरह से ऊपर से नीचे की ओर मसाज कर दो । कुछ देर बाद ऐसा करने से मेरी धर्मपत्नी की चेतना लौट आई ।**

मैंने **गोस्वामीजी से कहा कि आपने मुझे अन्य 'नाम' दिया तो मेरी पत्नी को 'दूसरा नाम' क्यों दिया ? उन्होंने उत्तर दिया - सब को एक ही नाम देने से लाभ नहीं होता है। जिसकी जैसी प्रकृति-उसे वैसा ही मंत्र देना पड़ता है ।**

गोस्वामीजी की आकाशवृति थी - कभी घी-दूध घना, कभी मुट्ठी भर चना, कभी वह भी मना । ठंड पड़ रही थी । गृह मालिक राखाल बाबू ने एक कीमती अल्फी बनाकर गोस्वामीजी को प्रदान की । उन्होंने उसे पहन लिया । शाम को दो वैरागी - वैरागिन, मंजीरा वगैरह लेकर, भिक्षा करने आये। वे लोग गोस्वामीजी को भजन सुनाने लगे । गोस्वामीजी ने उनका भजन सुनकर, आनंदित होकर वह अल्फी (अंगरखा), रूपया, कंबल, कमण्डल आसन वगैरह सब कुछ उन्हें दे दिया एवं स्वयं फर्श पर बैठ गये - वैरागी लोग इतने कठोर हृदय थे कि गोस्वामीजी को फर्श पर बैठते देखकर भी उनके आसन को वापिस लेने के लिए एक बार भी न पूछा । उनके उस व्यवहार को देखकर मैं बड़ा दुःखी हुआ ।

राखाल बाबू ने अपनी नई अल्फी जो उन्होंने गोस्वामीजी को दी थी - एक भिक्षुक को देने से अपना दुःख व्यक्त किया। यह सुनकर गोस्वामीजी ने कहा - **जो व्यक्ति यह सोचे कि मेरे द्वारा दी गई वस्तु का मेरी इच्छानुसार उपयोग किया जाये, वह व्यक्ति मुझे कोई भी वस्तु न दे। मेरी जैसी इच्छा होगी, वैसा करूंगा। कोई कुछ नहीं बोल सकता, दान देने के बाद वह वस्तु ग्रहीता की हो जाती है। यह वास्तविक दान है। उसमें देने वाले का अधिकार नहीं रहता (जिसमें अधिकार रहता है, उसे गिरवी कहते हैं) ।**

एक दिन किसी घटनाक्रम में राखाल बाबू ने कहा कि गोस्वामीजी लोगों की खुशामद करते हैं । यह सुनकर गोस्वामीजी ने क्रुद्ध होकर कहा

मैं किसी की खुशामद नहीं करता। तुमने यह बात क्यों कही ! मैं तुम्हारे घर में अभी हूँ पर मैं तुम्हारी हर बात में 'हाँजी हाँ' करता हूँ ? राखाल बाबू यह सुनकर भयभीत हो गए। उसके बाद, एक दिन उन्होंने आकर कहा- कल रात मुझे नींद नहीं आई, मेरे मन का भाव दूसरा था-आप सब पर दया करते हैं। मैंने भूल से 'खुशामद' शब्द कह दिया है। गोस्वामीजी यह सुनकर चुप रहे ।

उस समय ब्राह्मसमाज के अनेक व्यक्ति 'गुरुवाद' के दोष उल्लेख कर, गोस्वामीजी के ऊपर दोषारोपण एवं गाली-गलौच करने लगे थे। पत्रिकाओं में लेख भी निकलने लगे थे । बाबू मनोरंजन गुह गोस्वामीजी के भक्त शिष्य थे। वे उसका प्रतिवाद करके, अभ्रान्त गुरुवाद पर लेख लिखने लगे । गोस्वामीजी ने उन्हें वाद-प्रतिवाद करने से निषेध कर दिया। मनोरंजन बाबू ने कहा कि लोग आपको गाली-गलौच करते हैं। यह मुझसे सहन नहीं होता । उन्होंने कहा - धैर्य अवलम्बन कीजिए। कुछ बोलने की जरूरत नहीं है। उसके बाद मनोरंजन बाबू ने प्रतिवाद करना बंद कर दिया ।

मैं रात्रि के समय एक बड़े हॉल (कक्ष) में उनके साथ शयन करता था । **एक दिन रात्रि को सो रहा था। अचानक रात्रि एक बजे मेरी निद्राभंग हो गई। मैंने देखा गोस्वामीजी आसन में बैठे भजन साधन कर रहे हैं** । मैंने कहा -

मैं - **काफी रात हो गई है, आप अभी तक बैठे हैं, सो जाइये ।**

गोस्वामीजी - रात्रि के कितने बजे हैं ?

मैं - **अभी रात का एक बज चुका है ।**

गोस्वामजी - अभी तो बहुत रात्रि बाकी है ।

इस बातचीत के बाद मैं फिर गहरी नींद में सो गया । फिर रात्रि तीन बजे मेरी निद्रा भंग हुई। मैंने देखा, गोस्वामीजी पूर्ववत् आसन पर बैठे हुए हैं ।

मैं - आप तो अभी भी आसन पर बैठे हुए हैं। शयन नहीं किया। शीघ्र सो जाइए। रात्रि के तीन बज गए हैं ।

गोसाँईजी - अभी तो बहुत रात्रि बाकी है ।

मुझे फिर निद्रा आ गई, **करीब चार बजे निद्राभंग हुई। मैंने उन्हें आसन पर यथावत् बैठे देखा ।**

मैं - अरे ! आप अभी नहीं सोये हैं। जल्दी सो जाइये। शरीर अस्वस्थ हो जायेगा ।

गोस्वामीजी - अभी कितना बजा है ?

मैं - रात्रि के चार बज चुके हैं ।

गोस्वामीजी - अभी तो रात्रि समाप्त होने में काफी देरी है ।

मुझे पुनः निद्रा आ गई - **मैं सो गया। जब सबेरा हो गया; पूर्वदिशा में सूर्योदय होने लगा । मैंने देखा गोस्वामीजी अचल, अटल होकर पूर्ववत् शान्तभाव से आसन पर विराजमान हैं ।**

मैं - **आश्चर्य है ! सबेरा हो गया, अभी तक आपने शयन नहीं किया ।**

गोस्वामीजी - **दुर्लभ समय है, इसे क्या सोकर नष्ट किया जा सकता है ?**

इतने दिन बाद मेरा मन द्रवीभूत हो गया। मैं मन ही मन सोचने लगा । **ऐसा महापुरूष तो मैंने कभी नहीं देखा जो बिल्कुल निद्रा नहीं लेता हो; जो निन्दा-प्रशंसा के अतीत हो ; जिनमें लज्जा, घृणा, भय, मोह इत्यादि कुछ भी नहीं हो ; रिपुजयी, सर्व आशाशून्य एवं संपूर्ण रूप से ईश्वर पर निर्भर हो। शास्त्र में महापुरूष के जो सब लक्षण वर्णित हैं, वे सब इनमें वर्तमान हैं। फिर भी ये पौत्तोलिक (मूर्ति पूजा में विश्वासी) क्यों हैं ? जो लोग निताई गौर, राधाकृष्ण का भजन करते हैं, क्या वे वास्तविक धर्मलाभ कर सकते हैं ?**

मेरे मन में इस विषय को लेकर द्वन्द्व उपस्थित हो गया। अचानक गोस्वामीजी बोल उठे ''किसी भी प्रकार से लक्ष्य प्राप्ति होनी चाहिए। अवस्था प्राप्ति* ही मूल है। अर्थात् यदि राधाकृष्ण, निताईगौर आदि किसी का भी भजन करके परमोच्च अवस्था प्राप्त कर ले तो क्या बिगड़ता है ?''

* ''अवस्था प्राप्ति'' का अर्थ मैंने उनसे नहीं पूछा । माया से मुक्त होकर अपने स्वरूप की प्राप्ति ही शायद इसका अर्थ होगा ।

राखाल बाबू बड़े धनाढ्य जमींदार थे; परन्तु वे कृपण स्वभाव के व्यक्ति थे । एक दिन गोस्वामीजी ने मुझसे कहा -

गोस्वामीजी - मेरे गुरुदेव (ब्रह्मानंद) परमहंस जी मुझे बड़े असमंजस में डाल रहे हैं ।

मैं - क्यों क्या हुआ ?

गोसाँई - कल रात में परमहंसजी ने राखाल बाबू को स्वप्न में आकर कहा कि गोस्वामीजी पश्चिम में जायेंगे, उनको कुछ रूपये दे देना।

मैं - राखाल बाबू ने क्या कहा ?

गोसाँईजी - राखाल बाबू ने कहा कि मैं रुपया कहाँ से जुगाड़ करूँ-हाथ में अभी ज्यादा पैसे नहीं है ?

मैं - फिर क्या हुआ ?

गोस्वामीजी - परमहंस ने कहा कि रूपया नहीं है तो भूखा रह जा। उधार करके उनको रूपया दे । यह कहकर गोस्वामीजी हँसने लगे। दिन प्रतिदिन गोस्वामीजी के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी । और कुछ दिन रहकर, मैं सपरिवार उन्हें प्रणाम कर बोलपुर वापस लौट आया।

प्रयाग तीर्थ के कुंभ में गमन

बोलपुर आने के बाद मैं अस्वस्थ हो गया। दिन प्रतिदिन कमजोरी आने लगी । उसी समय 1894 के पूस/माघ के महीने में प्रयाग से एक पत्र मुझे मिला - उसमें लिखा था कि गोस्वामीजी बोल रहे हैं कि प्रयाग में पूर्ण कुंभ मेला है। लोग विभिन्न स्थान से यहाँ आ रहे हैं। हरिदास बाबू क्या जिन्दगी भर वकालत ही करते रहेंगे और रूपया कमाते रहेंगे ? उनको यहाँ आने के लिए लिख दो। यहाँ आने से उनका शरीर भी स्वस्थ हो जायेगा ।

मैं घोर सांसारिक आदमी हूँ, स्वभाव से कृपण भी हूं । पत्र को पढकर मुझे लगा कि शायद मैं प्रयाग न जाने का बहाना करूँ; इसलिए गोस्वामीजी ने ''शरीर स्वस्थ हो जायेगा'' यह प्रलोभन वाक्य प्रयोग किया है ।

तीर्थ, विग्रह, देवता, साधू, सन्यासियों के ऊपर मेरी किन्चित भी श्रद्धा नहीं थी । प्रयाग जाकर बेकार रूपये नष्ट करने एवं व्यवसाय की क्षति करने से क्या लाभ ? ऐसा पहले सोचा, फिर बाद में गुरुआज्ञा लंघन ना हो जाय, इस कारण मैं प्रयाग की ओर ट्रेन से रवाना हुआ । ट्रेन से दोपहर ढाई बजे पहुंचकर प्लेटफार्म में उतरते के साथ देखा कि गोस्वामीजी के पुत्र योगजीवन जी वहाँ खड़े हैं। वे एक घोड़े की गाड़ी (तांगा) में मुझे बिठाकर वासस्थान को ले गए । मैंने योगजीवन से पूछा - तुम किस लिए स्टेशन में आए थे ? उसने कहा - आप आज आयेंगे इसलिए पिताजी ने मुझे स्टेशन में भेजा था । तब मुझे होश हुआ कि प्रयाग जैसी अपरिचित जगह में, बिना पते के विशेषत: गोस्वामीजी को जहाँ कोई पहचानता भी नहीं है, मुझे बहुत ही मुसीबत होती यदि योगजीवन स्टेशन में न आता । मैं आज ही प्रयाग पहुँचूंगा, गोसाँईजी को पता चल गया । वे क्या अपनी दिव्यदृष्टि से सब जान जाते हैं ?

खैर, मैंने घर में जाकर देखा, गोसाँईजी भ्रमण के लिए बाहर गए हैं, उनके शिष्यगण वहाँ उपस्थित हो गए हैं । नानी माँ (गोस्वामीजी की सास) ने मुझे स्नान करके भोजन करने को कहा । मैं जल्दी स्नान करके आहार करने के लिए आसन पर बैठ गया । सुन्दर चावल, अरहर की दाल, अनेकानेक सब्जियाँ, चावल की खीर, मिठाई वगैरह परोसी गई थी। अनेक नौकर, नौकरानियाँ, रसोइये वगैरह घूमते हुए वहाँ दिखे। किराये में यह वृहत् घर लिया गया था । मैंने नानी माँ से कहा - बड़ी धूमधाम दिख रही है, रूपये-पैसे खूब आ रहे होंगे ।

नानी माँ ने कहा - वह सब यहाँ कुछ भी नहीं है । दुकान में कुछ कर्ज (दवाई वगैरह का) हो गया है, अभी बाकी पड़ा है । मैं क्या करूँ? मेरी बात कोई सुनता ही नहीं है ।

संध्या के समय गोस्वामीजी लौटे । मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कुशल क्षेम पूछी एवं अपने कमरे में ही रहने की व्यवस्था कर दी । सबेरे कुछ गुरुभाई आकर कहने लगे कि हरिदास बाबू आ गए हैं। अच्छा हुआ - उनका मस्तक मुण्डन कर दिया जाय एवं त्रिवेणी में स्नान कराके ले आएँ । गोस्वामीजी ने यह सुनकर कहा कि जो जिस वस्तु में विश्वास नहीं करते, उनको वे सब बातें नहीं बोलनी चाहिए। वे क्यों

मस्तक मुण्डन करेंगे ? फिर उन्होंने मुझे कहा कि ''त्रिवेणी घाट में जहाँ जंजीर से नौकायें बंधी हुई हैं, वहाँ पानी में उतर कर मन ही मन स्मरण कीजिएगा कि यह त्रिवेणी, गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम स्थल है। अति प्राचीन काल से कितने ऋषि, मुनि, साधु महात्मा इस स्थान में स्नान कर पवित्र हुए हैं ? हर साल यहाँ लाखों लोग आकर अपने को पवित्र करने के लिए जल में डुबकी लगाते हैं। मैं भी आज यहाँ स्नानकर पवित्र हो रहा हूँ'' यह कहकर डुबकी लगाइयेगा । यह बात कहने के बाद उन्होंने पुन: कहा - आप अकेले नहीं जा सकेंगे, मैं आपको साथ में ले जाऊंगा ।

गरीबों एवं साधुगणों को वितरण करने के लिए मैंने गोस्वामीजी को कुछ रुपये दिए। एक तांगा किराये पर लिया गया, हम लोग त्रिवेणी घाट की ओर रवाना हुए। रास्ते में रूपयों के (फुटकर) चिल्लर कर लिए गए।

घर से त्रिवेणी करीब डेढ़ मील दूर थी। गोस्वामीजी घाट पर खड़े रहे। मैंने बिना संकल्प किये ही स्नान किया एवं पंडे को कुछ पैसे दिए। श्यामाकान्त बाबू ने स्नान करके कुछ फूल गोस्वामीजी के चरणों में अर्पण किये । उस समय श्यामाकान्त गुरु-आज्ञानुसार भिक्षा करके भोजन करते थे । उन्होंने गोस्वामीजी से पूछा - माला एवं तिलक धारण करने की मन में बड़ी ही इच्छा हो रही है । गोस्वामीजी ने कहा कि अभी माला-तिलक धारण करने का आपका समय नहीं हुआ है ।

त्रिवेणी से गोस्वामीजी हम लोगों को साथ लेकर वेनीमाधव के दर्शन के लिए गए । रास्ते में दोनों तरफ भिखारियों की भीड़ थी - सब लोग भिक्षा मांगने लगे - गोसाँईजी सब को पैसे देने लगे और बोले ''आज तो हम दाता बन गए, कुछ कुछ देने लग गए'' । उनकी बात सुनकर हँसी आ गई । सामने दशाश्वमेघ घाट को दिखाकर उन्होंने कहा-यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामीजी को दस दिन तक शिक्षा दी थी । मंदिर के आहाते में जाकर बोले-इस स्थान में चैतन्य महाप्रभु रहते थे। बाद में मंदिर के सामने साष्टांग होकर वेणीमाधव को प्रणाम किया । उनको प्रणाम करते देख शिष्यगण भी साष्टांग प्रणाम करने लगे । मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया - छाती में धुकधुकी शुरु हो गई-क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आ रहा था । मैं मूर्तिपूजा, विग्रह में विश्वास

नहीं करता था । सब लोग मंदिर की परिक्रमा करने लगे । मैं भी 'कोई कुछ बोल न दे' यह सोचकर धीरे से एक छोटा प्रणाम कर, उन लोगों के साथ मंदिर के चक्कर लगाने लगा । गोस्वामीजी ने कुछ रूपयों के बताशे मंगाये एवं वेणीमाधव को भोग लगा, प्रसाद लेकर घर की ओर चले ।

घर में आकर गोस्वामीजी ने कहा कि कई जगह घूमा परन्तु अच्छे साधु के दर्शन न मिले। इसलिए एक साधु वेणीमाधव मिले इसलिए उन्हें कुछ देकर आया । गोस्वामीजी के क्रियाकलापों को समझना मेरे लिए कठिन था। मैं क्या उत्तर देता ? बाद में सुना-वेणीमाधव स्वयं साधु के वेश में गोस्वामीजी से भिक्षा मांगकर ले गए ।

दूसरे दिन किसी को भी कुछ न बोलकर, सिर में एक फेंटा बाँध, हाथ में लाठी ले, गोस्वामीजी घर से निकले। उनको निकलते देखकर सब शिष्यगण उनके पीछे चले। मैं भी उनके पीछे चला। गोस्वामीजी के पैर में दर्द था इसलिए उनके लिए एक तांगा किराये में लिया गया। उनके साथ के बाकी लोग (जिनमें अधिकतर कर्महीन, निठल्ले एवं हो-हल्ला करने वाले थे) भी पाँच-छै तांगे लेकर उनके पीछे घूमने लगे। दिन भर घूमने एवं साधु दर्शन के पश्चात् शाम को सब घर लौटे। उस दिन का सब किराया मैंने चुका दिया। दूसरे दिन भी उसकी पुनरावृत्ति हुई । उसके अगले दिन कानपुर से वकील श्री मन्मथ मुकर्जी बाबू आकर उपस्थित हुए । गोस्वामीजी ने मजाक करते हुए कहा कि ''दो बैल मिल गये हैं, जितना हो सके हाँक लिया जाए'' सुनकर मैं सोच में पड़ गया ।

पहले ही कह चुका हूँ कि मैं कृपण स्वभाव का व्यक्ति हूँ-मुझमें अर्थासक्ति प्रबल थी । गोस्वामीजी के शिष्यों में मैं ही केवल थोड़ा धनवान था, बाकी सब ऐरे-गैरे थे । मैं गुरु को न देकर स्वयं कुछ ग्रहण भी नहीं कर सकता हूँ - इसलिए भोजन वगैरह सब खर्च मुझे ही देना होगा-यह सब सोचकर मुझे चिन्ता होने लगी । तीसरे दिन का भाड़ा मन्मथ बाबू ने दिया। चौथे दिन का भाड़ा मैंने दिया। पाँचवे दिन का भाड़ा मन्मथ बाबू देकर कानपुर वापस चले गये - रुपये वालों में केवल मैं ही वहाँ रह गया । उसके दूसरे दिन सब भाड़ा मैंने देकर कहा कि मैं परसों बोलपुर चला जाऊंगा । यह बात गोस्वामीजी ने सुनकर कहा-

''परसों ! वह तो बहुत दिन की बात है।'' बाद में गुरुभाई लोग बोलने लगे कि हरिदासबाबू आप अभी बोलपुर मत जाइये। गोस्वामीजी से जो विदा चाहता है, उसे वे जाने के लिए कह देते हैं। आप यहीं रहिये। वकालती में नुकसान होने से भी यह स्थान त्याग मत कीजिए । यह सब सुनकर उनकी पूर्ण अनुमति प्राप्त न होने तक प्रयाग में ही वास करने का निश्चय किया ।

एक दिन गोस्वामीजी ने कहा कि इस मुहल्ले में एक कुत्ता है, जो रोज आरती के समय शिव का भजन गाता है। सुनकर मुझे कौतूहल हुआ। मैं आरती में सम्मिलित होने के लिए उत्सुक हुआ । यहाँ संध्या के समय आरती नहीं होती। रात्रि आठ बजे के बाद आरती शुरू होती थी। मुसलमान बादशाह के समय से ही यह नियम प्रचलित था । संध्या के समय झाँझ, घंटा के आवाज से नमाज में विघ्न होगा, इसलिए इस नियम को लगाया गया था । यथासमय आरती प्रारंभ हुई। उसी समय एक कुत्ता विभिन्न प्रकार की आवाज में भौंकने लगा। आरती जब समाप्त हुई, कुत्ते का भौंकना बन्द हो गया । ऐसा रोज होने लगा ।

एक दिन आरती के समय कुत्ते के भौकने की आवाज न सुनकर मैंने गोस्वामीजी से पूछा - आज तो कुत्ता भौंक नहीं रहा है । उन्होंने कहा-शायद कहीं भोजन वगैरह करने गया होगा इसलिए समय पर न आ सका - आने के बाद वह भजन गायेगा । थोड़ी ही देर बाद भौंकने की आवाज आने लगी एवं जितनी देर आरती होती रही, ठीक उतनी देर भौंकने के बाद वह चुप हो गया। मैं आश्चर्यचकित हो गया । मैंने गोस्वामीजी से पूछा-

मैं - कुत्ता भजन गाता है। बड़ा अजीब लगता है। दूसरे कुत्ते तो कोई उस समय नहीं भौंकते ?

गोस्वामीजी - यह कुत्ता पिछले जन्म में एक साधू था। गुरु के अभिशाप से कुत्ते की योनि प्राप्त हुई है ।

मैं - तब क्या जन्मान्तर है ?

गोस्वामीजी - **हाँ अवश्य है । पहले मैं भी जन्मान्तर के विपक्ष में था, युक्ति-विचार से पूर्वजन्म का न होना ही सिद्ध होता है परन्तु**

अब तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि पुन: जन्म होता है ।*

मैं - आपने किस प्रकार से पुनर्जन्म के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया?

गोस्वामीजी-मेरी दीक्षा के कुछ समय बाद अचानक मुझे पूर्वजन्म की स्मृति का उदय हुआ । पूर्वजन्म में मैं एक रामानंदी साधू था, राम गया में फल्गु नदी के तीर में एक पीपल के वृक्ष के पीड़ मे 'सीताराम' नाम खोदकर रखा था। यह बात मेरी स्मृति में आते ही मैं उस वृक्ष को देखने गया । जाकर देखा उसके पीड़ में 'सीताराम' लिखा हुआ है । काफी दिन हो जाने से अक्षर थोड़े फैल से गये हैं । **अवस्था लाभ होने से भूत, भविष्य, वर्तमान सब एक हो जाते हैं।**

मैं - जो सब घटनायें घट गई हैं, या दूर में या भविष्य में घटेंगी, उसे क्या आप जान सकते हैं ?

गोस्वामीजी - हाँ, मैं जान सकता हूँ ।

मैं - आप किस प्रकार से जान सकते है ?

गोस्वामीजी - मेरे सामने दृश्य दिखाई देता है ।

मैं उनकी बातों को समझ न सका इसलिए चुप रहा । एक दिन गोस्वामीजी ने मेरे मन की बात समझकर (मैं बाजू के कमरे में था) अपने शिष्यों से कहा कि हरिदास बाबू से अब तांगें का किराया मत लेना, जो रूपये यहाँ लोग दे जाते हैं; उसी से किराया भाड़ा देना । मुझे बाजू के कमरे से सब बातें स्पष्ट सुनाई दी । बात सुनने में अच्छी लगने पर भी मन प्रसन्न नहीं हुआ । थोड़ी देर बाद गोस्वामीजी ने सबको बुलाकर कहा -

गोस्वामीजी-सब लोग अपने घर-बार छोड़कर यहाँ आये हो-यहाँ हो-हुल्लड़ करके समय बिताना ठीक नहीं है। सब लोग एक-एक मनपसंद काम का दायित्व ग्रहण करो ।

शिष्यगण - जैसी आपकी आज्ञा । आप हम लोगों को एक-एक कर्म का दायित्व दीजिए ।

---

* ब्राह्म समाज में मूर्तिपूजा, गुरुकरण, पुनर्जन्म आदि नहीं माना जाता था- गोस्वामीजी पहले जीवन में ब्राह्मसमाज में थे । अत: उसी प्रकार का प्रचार किया था ।

गोस्वामीजी ने मुझे एवं स्वामी देवप्रसाद को कहा - आप लोग बाजार से सामान लाने का दायित्व लीजिए। श्यामाकान्त बाबू को भोजन आदि बनाने का उत्तरदायित्व दिया गया। महेन्द्रमित्र को जमा खर्च का काम सौंपा गया । इस प्रकार किसी को पानी भरने का, किसी को सफाई का कार्य दिया गया । बाद में उन्होंने कहा - मुझे भी कोई कार्य करने का दायित्व दो । उनकी बात सुनकर सब चुप रह गए । तब गोस्वामीजी ने कहा कि मैं सबको भिक्षा करके खिलाऊँगा । यह सुनकर जिस प्रकार पसीना आकर बुखार उतर जाता है, वैसे मेरे मन की अवस्था हो गई। मुझे शांति मिली। ऐसा लगा जैसे मेरे मृतदेह में जीवन का संचार हो गया।

उसके बाद गोस्वामीजी ने सबसे कहा, ''जिसकी जितनी भिक्षा देने की इच्छा है, वे मुझे भिक्षा दें।'' ऐसा कहकर उन्होंने अपना आँचल बिछा दिया । जिस के पास जो था, वे सब उन्हें देने लगे । मेरे पास लौटने का टिकट था, इसलिए ट्रेन खर्च की चिन्ता नहीं थी। अपने पास पाँच रूपये रखकर मेरे पास जितने रूपये थे, सब उन्हें दे दिये । भिक्षा में करीब 160 रूपये हुए । गोस्वामीजी ने वे अपने आसन के नीचे रख दिए और हम लोगों को कहा कि तुम लोग अपने परिवार वालों को लिख सकते हो । जिसकी जितनी देने की इच्छा है, भेज सकता है । गोस्वामीजी के निठल्ले शिष्य किसको पत्र लिखेंगे ? मैंने ही घर में रुपये भेजने के लिए एक पत्र दे दिया ।

बाबू महेन्द्रनाथ मित्र ने जमा खर्च के लिए एक पतली सी पेन्सिल एवं कापी संग्रह करके कुल बारह आने जमा किए । भिक्षा में जो रूपये संग्रह हुए थे, वे कापी में जमा नहीं हुए। वह गोस्वामीजी के आसन में ही पड़े रहे ।

प्रयाग कुंभ मेले में लाखों व्यक्ति आकर एकत्रित हुए हैं। यहाँ विशेष किसी से कोई परिचय भी नहीं है। दुकान से उधार पाने की भी कोई संभावना नहीं है, साथ में रूपये पैसे भी विशेष नहीं हैं। भिक्षा में जो रूपये गोस्वामीजी को मिले हैं; उसमें मुश्किल से दस बारह दिन चल सकता है । मेरी सर्वदा गोस्वामीजी के ऊपर प्रखर दृष्टि थी । इतने लोगों का खर्च वे किस प्रकार महीने भर चलायेंगे ? उनके मुखमण्डल में

चिन्ता की रेखा का आभास होता है या नहीं ? खर्च के लिए हम लोगों से कोई परामर्श होता है या नहीं ? यह सब बातें मैं बारीकी से निरीक्षण करता रहा ।

कुंभ मेले के उपलक्ष में प्रयागधाम में अनेकानेक साधुओं का समागम हुआ था। साथ में साधू वेशधारी भिखारी एवं चोरों का भी जमावड़ा हुआ था । गोस्वामीजी के पास आकर कोई कहता-बड़ा जाड़ा लगता है। कोई बोलता महाराज, हमारे धूनी की लकड़ी नहीं है, कोई बोलता, गाँजा खत्म हो गया। कोई लोटा माँगता तो कोई बोलता-बहुत भूखा हूँ, भोजन के लिए रूपये दीजिए । गोस्वामीजी अपने आसन के नीचे से रूपये निकाल कर देते रहे । शाम के तीन बजे तक सब रूपये समाप्त हो गये । उनके इस विचित्र क्रियाकलापों को देखकर मैं दंग रह गया। रात्रि समाप्त होते ही, कल सुबह रूपयों की जरूरत होगी तब क्या होगा ?

सबेरा हुआ। पक्षियों का चहकना प्रारंभ हो गया। गोस्वामीजी पूर्ववत् अपने आसन में निश्चिंत होकर बैठे हैं। मैं रजाई ओढकर उनके पास सोया हुआ था। उसी समय दरवाजे के पास एक व्यक्ति आकर उपस्थित हुआ। वह पजामा पहने हुआ था। पैर में जूता, ऊपर बदन में रूई की बगलबंदी एवं सिर में ऊनी टोपी थी । उसने आकर गोस्वामीजी को प्रणाम करके पूछा ''महाराज, आपकी आज्ञा हो तो आज की सेवा का भार मैं ग्रहण करूंगा। गोस्वामीजी ने स्वीकृति दे दी। वह व्यक्ति पुनः प्रणाम कर चला गया ।

सबेरे के करीब साढ़े सात बजे थे । दो व्यक्ति काँवर में काफी सामान वहाँ उतार कर चले गए । उसमें काफी मात्रा में चाँवल, दाल, नमक, तेल, घी, मैदा, आटा, सूजी, चीनी, मिश्री, विविध मिठाईयाँ, आलू, बैगन, गोभी, सेमी, साग इत्यादि विविध सब्जियाँ, नीबू, अमरूद आदि फल, दूध, दही रबड़ी एवं विविध मसाले, तम्बाकू, दियासलाई, पान इत्यादि था । सामान देखकर गोस्वामीजी के शिष्यगण आनंद से अधीर हो गए। कोई नृत्य करने लगा। कोई उछल कूद मचाने लगा ।

कोई आकर अमरूद, कोई संतरा, कोई तंबाकू जिसे जो अच्छा लगा, लेकर अपने कमरे में ले भागा । नानी माँ आने के पहले ही

आधी वस्तुऐं गायब हो गई । नानी माँ ने गुस्से से बड़बड़ाते हुए आकर सब सामान को भंडार में ठीक से रख दिया । दोपहर में चर्ब, चोष्य लेह्य, पेय के साथ उत्कृष्ट भोजन सम्पन्न हुआ । मैंने मन में सोचा - चलो आज जो होना था, हो गया। देखें, आगे कार्य कैसे चलता है ?

अगले दिन पूर्ववत् उसी व्यक्ति ने उसी प्रकार आकर सेवा की। तीसरे दिन फिर उस व्यक्ति ने आकर जब सेवा करने की बात कही तब गोस्वामीजी ने कहा - नहीं, दो दिन आपने सेवा कर दी है। अब नहीं होगा। सन्तों की यह रीति नहीं है । वह व्यक्ति बोला - हमारे यहाँ दूध की काफी सुविधा है, यहाँ दूध अच्छा नहीं मिलता है। हुक्म हो तो कुछ दूध भेज दूँ । गोस्वामीजी ने अस्वीकार किया । वह आदमी उन्हें प्रणाम कर लौटने लगा । शिष्यगण सब अफसोस करते हुए कहने लगे-हमारे पास रुपये पैसे भी नहीं हैं। अयाचित रूप से एक आदमी सेवा की सुव्यवस्था कर रहा था। गोस्वामीजी ने उसे भी बंद कर दिया । मैं तत्क्षण बिस्तर से उठकर उस व्यक्ति के पास गया, जो तब तक रास्ते में पहुंच चुका था ।

मैं - आप कहाँ रहते हैं ? आप क्या करते हैं ? आप गोस्वामीजी को इतनी सामग्री क्यों देते हैं ?

व्यक्ति - चक्का लगीज में दो मंजिल का जो घर है, वही मेरा है । मेरी काफी जमीन वगैरह है । हमारे गुरुजी ने कहा था कि इन महात्मा की रोज सेवा करना ।

सुबह के आठ बजे, एक सन्त ने हम सब लोगों को अपने आश्रम में प्रसाद पाने के लिए निमन्त्रण किया । बाद में पता चला कि वे उसी व्यक्ति के गुरुदेव थे । उन्होंने यह भी संदेश दिया था कि वे कीर्तन सुनना चाहते हैं । गोस्वामीजी सब शिष्यों के साथ वहाँ गए, संकीर्तन आदि वहाँ बहुत देर तक हुआ, गोस्वामीजी ने भावावेश में बहुत देर तक नृत्य किया । यथा समय में उस साधु ने सबको प्रसाद पाने के लिए बुलाया। सुनने में आया कि वे साधु 30 साल तक अपना आसन छोड़कर कहीं नहीं गए । आश्रम में राधाकृष्ण के विग्रह की प्रतिष्ठा थी । प्रसाद की बड़ी ही उत्तम व्यवस्था थी। पूड़ी, कचौड़ी, लड्डू, मालपूआ, परांठा, नमकीन, विविध सब्जियाँ, मिठाईयाँ, दही, खीर, रबड़ी, चटनी

एवं उस देश की विभिन्न वस्तुएँ थी, जिनके नाम भी मैं नहीं जानता । मैंने डटकर भोजन किया ।

इस प्रकार रोज भोजन की कहीं न कहीं व्यवस्था हो जाती थी । गोस्वामीजी स्थिर आसन में बैठे रहते । उनके मुखमंडल में चिन्ता की कोई रेखा दिखाई नहीं पड़ती थी । घर में दिन-दिन लोगों की संख्या बढ़ती गई। कितने आ रहे हैं, जा रहे हैं, कोई ठीक नहीं है। जमा खर्च का भी कोई हिसाब नहीं रहा । महेन्द्र बाबू ने जो हिसाब की कापी तैयार की थी, वह वैसे ही पड़ी रही ।

रोज शाम को संकीर्तन होता था। उसमें गोस्वामीजी अति मधुर नृत्य करते थे। कभी - कभी भावावेश में आँखें मून्दकर अपनी जटा द्वारा आरती करते थे। शिष्यगणों में भी अद्भुत भावावेश होता था ।

इन सब घटनाओं को देखकर, मैं इतने दिन तक गोस्वामीजी के अकर्मण्य एवं निठल्ले शिष्यों को देखकर अश्रद्धा करता एवं हँसी उड़ाता था किन्तु संकीर्तन में उनके दिव्य भावों को देखकर मैं मोहित हो गया- ऐसा लगा जैसे इनका जीवन ही सार्थक है। इनकी चरणरज लेने से भी मेरा जीवन धन्य हो जाएगा ।

मुझे संकीर्तन में कोई भाव वगैरह नहीं होता था। मैं शुष्क काष्ठ के सदृष्य संकीर्तन के एक कोने में खड़ा रहता था। मेरे अंत:करण में कुछ भी आनन्द नहीं आता था, बल्कि झाँझ मृदंग वगैरह की आवाज से चिढ़ होती थी । मेरे मन में विचार आने लगा कि जिस संकीर्तन में सुना है पाषाण भी गल जाता है, मेरे मन में कोई भी प्रभाव क्यों नहीं होता? इतने दिन तक भजन साधन भी किया परन्तु क्या हुआ ? प्रेम की बाढ़ में सब बह रहे हैं। मैं शुष्क, पाषाण सदृश पड़ा हुआ हूँ ।

मुझे ऐसा लगा कि वकालत व्यवसाय से ही मेरा सर्वनाश हुआ है । वकालती में मिथ्या का आश्रय लेना पड़ता है । कपटता ही इसका प्रधान अंग है । मन के अन्दर दूसरा भाव रहता है; बाहर दिखावा दूसरे प्रकार का करना पड़ता है । सत्य को असत्य एवं असत्य को सत्य समझाकर दिखाया जाता है । कोई पथ का भिखारी बन जाय, किसकी जायदाद नष्ट हो जाए, उसकी कोई चिन्ता नहीं होती। किसी भी प्रकार

से मुवक्किल को जिताना ही मुख्य उद्देश्य होता है। इसी प्रकार की जीत से, भले ही उसमें संपूर्ण मिथ्या का आश्रय लिया गया हो, आनंद की सीमा नहीं होती । विपक्ष का आदमी सत्य बोल रहा है; उसे यदि अंटशंट प्रश्न कर हड़बड़ा दिया जाये तो खुशी होती है । यह एक ऐसा व्यवसाय है कि मुवक्किल के रूपया देने से दिन को रात भी प्रमाणित किया जा सकता है । साथ ही साथ स्वयं के मन को यह समझाया जाता है कि विचारक तो मैं नहीं हूँ, पाप-पुण्य के भागी वे लोग होंगे, मैं तो अपना कर्तव्य कर रहा हूँ । इस प्रकार विवेक संपूर्ण नष्ट हो जाता है। इसी कारण इस पापासक्त हृदय में भगवद्भक्ति का उदय नहीं हो सकता है । मन में यह विचार आने लगा कि यदि छोटी मोटी कोई सरकारी नौकरी मिल जाये तो अभी वकालत छोड़ दूँ । मालिक की दो बातें सुनना भी मंजूर है; परन्तु वकालती सरीखे कुकर्म को करना ठीक नहीं है।

यह सब विचार करके गोस्वामीजी के पास जाकर बोलना प्रारंभ करने के साथ ही गोस्वामीजी बोले - ''हरिदास, तुम वकालती त्याग नहीं कर सकोगे, तुम्हारे पास वह शक्ति नहीं है और वकालती त्याग करने से तुम्हारा मंगल भी नहीं होगा । सावधान रहकर, जितना हो सके सत्भाव से वकालती करो; उपार्जित अर्थका सद्व्यवहार करो । दु:ख मत करो। भगवान जिस अवस्था में रखते हैं, उसी अवस्था में संतुष्ट चित्त होकर रहो । **भगवान सर्वशक्तिमान हैं, यदि वे प्रकृत धर्म देना चाहें तो नरक में भी उन्हें पाया जा सकता है; अन्यथा कितनी भी कोशिश करो, कुछ नहीं होगा ।**''

सुबह आठ बजे गोस्वामीजी ने ये बातें कही। भोजन के बाद साधू एवं देवदर्शन के लिये पूर्ववत् बाहर निकले। शिष्यगण तांगा किराये में लेने के लिए आगे निकल गए। गोस्वामीजी पीछे रह गये। मैं उनके पीछे उनका कमंडल हाथ में लेकर चलने लगा । मन खिन्न था। गुरुभाईयों का प्रेम देखकर स्वयं को मन ही मन धिक्कारने लगा। मन में निराशा उत्पन्न हो गई। उसी समय गोस्वामीजी ने कहा - जो देख रहे हो, उसमें माधुर्य नहीं है। यदि वृक्ष की एक डाली खूब लम्बी हो जाय और अन्य डालियाँ छोटी छोटी रहें तो क्या उस वृक्ष की शोभा होती है ? सब डालियाँ चारों

ओर समभाव से जब वर्द्धित होती (बढ़ती) हैं, पत्र पुष्प से सुशोभित होती हैं, तभी वृक्ष शोभायमान होता है । दु:ख मत करो। समय आने पर सब ठीक हो जायेगा ।

इतने दिन से भजन साधन कर रहा हूँ । परमेश्वर की उपासना या धर्म-कर्म करने से परलोक में सद्‌गति होती है; ऐसा सुना था, परन्तु धर्म धारण करने की वस्तु है, रसास्वादन करने की चीज है, इसमें तापत्रय नष्ट होकर जीवन मधुमय बन जाता है, हृदय ग्रन्थि छिन्न होकर प्राणों में अमृत की धारा बहती है, काम-क्रोधादि रिपुगण के दासत्व का मोचन (नाश) हो जाता है, दुष्प्रवृत्ति दूर होकर सत्यप्रवृत्ति जागृत होती है, इसकी मुझे ठीक से जानकारी नहीं थी। इसलिए ''सब हो जायेगा,'' इस वाक्य का अर्थ मैंने गोस्वामीजी से नहीं पूछा ।

उसके बाद सशिष्य गोस्वामीजी, नागा बाबा के पास गये । नागा बाबा एक परमहंस महापुरुष हैं। उनकी उम्र करीब ९० वर्ष होगी । गंगा के किनारे एक बड़े वट वृक्ष के नीचे कुटिया बनाकर काफी वर्षों से भजन साधन कर रहे थे। वे वस्त्रहीन थे। वे साधारणत: कहीं भी बाहर नहीं जाते थे । गोस्वामीजी कभी-कभी उनके पास जाते थे एवं वार्तालाप करते थे। उनके साथ काफी देर तक सदालाप करने के बाद गोस्वामीजी संध्या समय घर में लौटे ।

गोस्वामीजी - नागा बाबा को देखा ? अहा ! प्रत्येक भगवत् प्रसंग में उनके शरीर में रोमाञ्च होता है ।

मैं - आप यह क्या बोल रहे हैं ? मैं अपने गुरुभाईयों के अंदर जो कुछ देख पाता हूँ, उसका एक भाग भी नागा बाबा के अंदर दिखता नहीं है ।

गोस्वामीजी - ''ये चीज'' उन्हें कैसे प्राप्त हो सकती है ? ''ये चीज'' का अर्थ गोस्वामीजी से नहीं पूछा। ऐसा लगा कि वह शायद ''पंचम पुरुषार्थ श्री कृष्ण प्रेमभक्ति'' ही होगी, क्योंकि यह सुदुर्लभ है ।*

* कृष्ण-प्रेम साधन भजन द्वारा प्राप्त नहीं होगा । गुरुकृष्ण कृपा से किन्हीं भाग्यवानों को प्राप्त होता है ।

''नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यम् हृदि साध्यता (भक्ति रसामृत सिंधु) ''

एक दिन गोस्वामीजी के शिष्यगणों ने उनसे प्रश्न किया कि कुंभ में अनेक साधू सन्यासी हम लोगों के संप्रदाय के संबंध में पूछते हैं, हम लोग क्या बोलें ?

गोस्वामीजी - तुम लोग कहना कि हम लोग माध्वाचार्य संप्रदाय के अन्तर्गत हैं ।

मैं अभी तक नहीं जानता था कि हम लोग हिन्दू धर्म के अन्तर्गत हैं। मैं सोचता था कि गोस्वामीजी ब्राह्म ही हैं, यद्यपि उन्होंने ब्राह्म समाज का त्याग कर दिया है । **उन्होंने कहा था कि गुरु-प्रदत्त नाम साधन करते-करते प्रकृत धर्म, अपने अन्त:करण में अपने आप प्रस्फुटित होगा। किसी के द्वारा समझा देने की जरूरत नहीं होगी। जो प्रकृत धर्म है उसे ठोक-पीटकर बजाकर ग्रहण करना ।**

यद्यपि गोसांईजी ने हम लोगों को माध्वाचार्य संप्रदाय के अन्तर्गत कहा; परन्तु मेरे मन में संशय हो गया। मैंने सोचा कि हम लोग ब्रह्मोपासक, असंप्रदायी हैं किन्तु हिन्दू लोगों के बीच में या साधु संतों के पास कुंभ में स्थान पाने अथवा परिचय देने के लिए गोस्वामीजी ने माध्वाचार्य संप्रदाय का नाम कह दिया । बहुत साल बाद अनुभव हुआ कि हम लोग वास्तव में वैष्णव संप्रदाय के अन्तर्गत ही हैं ।

दिन बीतते गए, सबेरे से शाम तक भिखारियों की भीड़ लगी रहती थी। कोई कुछ न कुछ मांग ही रहा है। गोस्वामीजी के पास जो कुछ भी रहता, सब दान देते जाते। आसन, कंबल, चादर भक्तगण देते जाते और वे उन्हें प्रार्थी को तत्क्षण दे देते । मैंने भी एक कम्बल गोस्वामीजी को ओढ़ने के लिए दिया। माघ महीने में प्रयाग संगम में भयानक ठंड़ पड़ती है। थोड़ी देर में एक भिखारी आया - गोस्वामीजी ने उसे तत्क्षण वही कंबल दे दिया । इसके पहले कलकत्तें में राखाल बाबू को स:शर्त दान देने के कारण गोस्वामीजी असंतुष्ट हुए थे अत: अंत में शिष्यों ने परामर्श करके नानी माँ को कहा कि आप यह कंबल गोस्वामीजी को देकर कहिए कि जब तक और कंबल न मिले; तब तक आप इसे व्यवहार में लाइये, बाद में मुझे दे देना। पहले नानी माँ ने आनाकानी की; परन्तु बाद में वैसा ही किया। उसके बाद गोस्वामीजी उसी कम्बल को ओढ़ने लगे। शिष्यों को भी तसल्ली हुई ।

मैं भी साधू-संतों को कुछ कुछ दान देने लगा । एक दिन एक साधू ने आकर मुझसे एक कंबल मांगा। मैंने अपना अच्छा कम्बल उसे दे दिया । उस साधू के जाने के बाद गोस्वामीजी ने हँसकर मुझसे कहा-

गोस्वामीजी - वह आदमी आपको ठगकर चला गया। वह चोर था। साधू के वेश में कंबल ले गया ।

मैं - आपने कैसे जाना कि वह व्यक्ति चोर था ?

गोस्वामीजी - मैं मनुष्य को नहीं देखता। उसकी आत्मा को देखता हूँ । उसके समस्त क्रिया कलापों का पता मुझे हो जाता है ।

मैं - सुना हूँ, कभी यदि कोई महात्मा भिखारी वेश में भी गृहस्थ के घर में आये तो उनकी मर्यादा करनी चाहिए; नहीं तो गृहस्थ का अमंगल होता है ।

गोस्वामीजी - जो महात्मा गृहस्थ के कल्याण के लिए उनके घर में जाते हैं वे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करते, जिससे गृहस्थ का अमंगल हो ।

मैं - कोई चोर या साधू है, कैसे जानूँ ?

गोस्वामीजी - **साधू कभी भी याचना नहीं करता। आत्म प्रशंसा नहीं करता। परनिंदा नहीं करता। चमत्कार नहीं दिखाता। किसी के धर्म विश्वास को नष्ट नहीं करता ।**

प्रयाग के पूर्व में गंगाजी प्रवाहित हैं। दक्षिण में यमुनाजी संगम स्थल के सामने किला है। इस किले के सामने सुविस्तृत भूमि में कुंभ मेला होता है। परन्तु इस बार गंगा के पूर्व दिशा में सुविस्तीर्ण रेतीले तट पर मेला भरा है। गंगा पार होने के लिए सेतु बनाया गया है। उस रेतीले स्थान में हरेक संप्रदाय के साधुओं के लिए स्थान निर्दिष्ट किया गया है ।

एक दिन गोस्वामीजी के साथ साधूदर्शन के लिए हम सब मेला स्थान में गए। अचानक एक व्यक्ति आकर गोस्वामीजी एवं हम लोगों के मुंह के सामने हाथ हिलाकर आरती करने लगा । वह व्यक्ति गौरवर्ण, दृढ़काय था। एक फटा कंबल शरीर में लपेटा हुआ था । वह एक स्वांस में मीलों दौड़ता था। फिर वापस लौटता था किन्तु बिल्कुल थकता नहीं था । सब कोई उसे पागल समझते थे । जब वह दौड़ते हुए हम लोगों

के पास आया, मैंने और पंडित महाशय ने उसे दण्डवत् किया। वह उछलकूद करता दूर भाग गया। उसकी बातचीत भी समझ में न आती थी ।

घर आने के बाद मैंने गोस्वामीजी से पूछा कि वह व्यक्ति कौन था? गोस्वामीजीने कहा, ''वे एक बड़े महात्मा हैं; उनका नाम अर्जुनदास है। ऐसे बड़े महात्मा मेले में कम ही आए हैं - ये कहाँ रहते हैं ? कोई नहीं जानता। इन लोगों के प्रभाव से ही मेला सुचारू रूप से चल रहा है।''

संध्या के समय अर्जुनदास हम लोगों के शहर के घर में उपस्थित हुए । गोस्वामीजी के जामाता - श्री जगद्बंधु मैत्र उनके आदेश से चरण धोने के लिए सामने गए परन्तु उनके चरणों में हाथ देना ही मुश्किल था। बाद में गोस्वामीजी की इच्छा जानकर पैर धोकर आसन में बैठे। उन्हें जलपान के लिए फल, मिठाई वगैरह दिया गया। उसे आहार कर एवं गोस्वामीजी से वार्तालाप करके चले गए ।

मैंने गोस्वामीजी से कहा ''ये तो पागल जैसे लगते हैं। बातचीत भी अंट-शंट करते हैं ।'' उत्तर में उन्होंने कहा - पागल का स्वांग न रहने से स्वयं को लोगों की भीड़ से बचा कर रखना, उनके लिए असंभव होता । वे सर्वशास्त्र के ज्ञाता थे । किसी भी शास्त्र का एक श्लोक बोलने से वे उसके बाद के श्लोक लगातार बोल देते । श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में यहाँ के लोग नहीं जानते । गोस्वामीजी ने उनसे पूछा, ''आप चैतन्य महाप्रभु के संबंध में जानते है ?'' अर्जुनदास ने कहा - हाँ, मुझे ध्यान में सब पता चल गया है ।

मैंने एक दिन मेला घूमने जाने के पहले गोस्वामीजी से पूछा - ''आज अर्जुनदास के दर्शन मिलेंगे ?'' गोस्वामीजी ने कहा - ''जब भी उनके दर्शन की इच्छा से मेले में जायेंगे, उनसे मुलाकात हो जायेगी।'' मैंने गंगा का पुल जैसे ही पार किया; वैसे ही अर्जुनदास आरती करते हुए आ गए । उनका हँसमुख चेहरा देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ ।

गोस्वामीजी के शिष्यगण सब कोई ब्राह्म थे । वैष्णवता क्या होती है ? वे कुछ नहीं जानते थे । सब कोई साम्य मैत्री के पक्षपाती थे । इनके लिए छोटा बड़ा कोई नहीं था । एक दिन रात्रि ९ बजे संकीर्तन

समाप्त हुआ । गोस्वामीजी ने देखा कि कोई शिष्य एक ब्राह्मण की ओर पाँव फैलाकर बैठा है। यह देखकर वे बोले - इन लोगों को धर्म लाभ कैसे होगा ? इन लोगों को मर्यादा का ज्ञान नहीं है। बड़े के प्रति सम्मान का भाव नहीं है ।

मै - आपने हम लोगों को चैतन्य महाप्रभु की परंपरा के अनुसार साधन प्रदान किया है। तब क्यों हम लोगों को वैष्णव आचार पालन करने के लिए नहीं कहते हैं ?

गोस्वामीजी - **देख नहीं रहे हो। ये किस तरह के व्यक्ति हैं ? इन लोगों को और क्या बोलूँ ? यदि बोलूँ - विग्रहों के दर्शन करो तो बोलेंगे ईंट, पत्थर, लकड़ी से क्या फायदा ? यदि बोलूँ तिलक धारण करो तो बोलेंगे मिट्टी लगाने से क्या लाभ ? इसलिए मैंने शक्ति संचारित करके भगवन्नाम दे दिया है। इस नाम के प्रभाव से धीरे-धीरे सब कुछ प्राप्त हो जायेगा ।**

मैं - जो लोग अभक्ष्य आहार भक्षण करते हैं, क्या वे भी उसका परित्याग कर देंगे ?

गोस्वामीजी - **हाँ, नाम करते-करते ऐसा समय उपस्थित होगा, जब शरीर इसे सहन न कर सकेगा। रोगों की उत्पत्ति एवं अभक्ष्य आहार में अरूचि उत्पन्न हो जायेगी ; तब सब छोड़ना ही पड़ेगा ।**

मैं - **क्या नाम के द्वारा सब वैष्णवाचार आ जायेंगे ?**

गोस्वामीजी - **हाँ, अवश्य ।**

गोस्वामीजी ने शहर के घर का त्याग करके गंगा की रेती में जहाँ संतों के तम्बू लगे हैं, वहाँ पर अपना आसन शीघ्र लगाने का संकल्प सब शिष्यों को जनाया । उसी अनुसार वहाँ व्यवस्था की जाने लगी । शिष्यगणों ने कहा - पूरे भारत के साधू-संत इस मेले में आ रहे हैं। क्या आपके गुरुदेव ब्रह्मानंद परमहंसजी इस मेले में नहीं आयेंगे ? गोस्वामीजी ने कहा - उनकी इच्छा होने से आ सकते हैं। तुम लोगों को क्या जरूरत है ? शिष्यगणों ने कहा - हमें भी एक बार उन्हें देखने की इच्छा है ।

गोस्वामीजी के शिष्यगणों ने एक तंबू किराये में लेकर, एक वैष्णव साधू से थोड़ा स्थान संग्रह कर, उसे लगा दिया । माघ का महीना था।

गंगा की रेती ठंडी एवं थोड़ी गीली भी थी। इसलिए रेत के ऊपर धान के पैरे वगैरह मोटे करके बिछाये गये । शिष्यगणों ने अपने बिस्तर उसके ऊपर बिछा दिये । एक बाजू में गोस्वामीजी का आसन लगाया गया । उसके सामने एक धूनी का कुंड खोदा गया । इस कुंड में सारी रात धूनी जलती थी ।

प्रयाग के होम्योपैथिक डाक्टर, रामयादव बागची ने गोस्वामीजी से चैतन्य एवं नित्यानंद (निताई-गौर) की मूर्ति स्थापित करने का अनुरोध किया । यह सुनकर मुझे बड़ा गुस्सा आया। मन में हुआ कि यह नासमझ कहाँ से आकर, जबरदस्ती अपना दिमाग लगा रहा है ?

गोस्वामीजी ने उनकी बात को न टाला एवं उनके कथनानुसार गौर एवं निताई की मृन्मय (मिट्टी निर्मित) मूर्ति वहाँ स्थापित करवा दी ।

प्रयाग शहर में जो घर लिया गया था, वह भी रखा गया । अस्वस्थ व्यक्तिगण एवं स्त्रीगण वहीं वास करने लगे। दिन में आकर वे मेले में सत्संग करेंगे - रात्रि को लौट जायेंगे-ऐसा निश्चित हुआ । गोस्वामीजी अपने शिष्यों को लेकर - मेले में वास करने के लिए चले। गंगा का पुल पार करते ही एक व्यक्ति को देखकर उन्होंने भक्तिपूर्वक साष्टांग प्रणाम किया । शिष्यगण भी यह देखकर उस व्यक्ति को प्रणाम करने लगे । मुझे भीड़-भड़ाका पंसद नहीं। मैं दूर रहा । संकीर्तन करते हुए एवं नृत्य करते हुए सब कोई रेत में स्थित अपने तंबू की ओर चले । मैं उस व्यक्ति का ठीक से निरीक्षण करने लगा। देखा व्यक्ति श्यामवर्ण है, मुखमंडल में कृष्ण वर्ण की दाढ़ी मूँछें हैं। सिर पर पगड़ी है । शरीर में कमीज एवं एक धोती पहने हुए हैं। पैर में जूते नहीं हैं । भीड़ छंट जाने के बाद मैंने उन्हें प्रणाम कर, चरणधूलि अपने मस्तक में लगायी । उन्होंने कृपा-दृष्टि पूर्वक हाथ हिलाकर ''मेरा प्राण ! मेरा प्राण !!'' ये शब्द कहे । धीरे-धीरे वे चले गये । मैं भी संकीर्तन के पीछे पीछे चला ।

तंबू में निताई गौर के विग्रह के सामने खूब उत्साह के साथ संकीर्तन होने लगा । संतों एवं अन्य मेलावासियों की भीड़ लग गई। उधर के लोगों ने कभी मृदंग, करताल (झांझ) वगैरह नहीं देखे थे। गोस्वामीजी के मस्तक में जटाभार, कपाल में तिलक, मुख मंडल में दाढ़ी-मूंछ, गले में तुलसी, रूद्राक्ष, बेल, पद्म, स्फटिक, मूंगा, चन्दन की

मालाएं सुशोभित थी। गैरिक वसन, हाथ में दण्ड-कमंडल था। शिष्यगणों में से किसी के गले में तुलसी माला, किसी के हाथ एवं मस्तक में रूद्राक्ष की माला है। किसी के कपाल में गोपीचन्दन का तिलक, किसी के कपाल में सिन्दूर का टीका है। कोई कम्बल ओढ़े हुए है। किसी ने कोट-पैंट पहन रखा है तो कोई धोती व चादर ओढ़े हुये है। कोई जूते-मोजे भी पहने हुये हैं । गुरु एवं शिष्यगणों की इस अद्‌भुत विभिन्न प्रकार की वेशभूषा देखकर ये लोग किस धर्म के अनुयायी हैं, दर्शकगण व साधूगण कुछ समझ न सके । संकीर्तन समाप्त होने के बाद उन्होंने गोस्वामीजी से प्रश्नोत्तर किया ।

साधूगण - आपका डेरा कहाँ है ?

गोस्वामीजी - बंगाल के शान्तिपुर में हमारा डेरा है ।

साधुगण - आपका धर्म क्या है ?

गोस्वामीजी - बंगला देश में, गंगातीर में नवद्वीप नगर में भगवान अवतीर्ण हुए थे, उन्हें वहाँ श्री कृष्णचैतन्य देव एवं श्री नित्यानंद कहा जाता है। उनके विग्रह की यहाँ स्थापना हुई है। उनका जो धर्म था वही हमारा धर्म है ।

साधूगण - ये कौन से वाद्य हैं ?

गोस्वामीजी - इसे खोल (मृदंग) एवं करताल (झांझ) कहते हैं ।

साधूगण आनंदित होकर चले गये । पतली लकड़ियों के द्वारा कंपाउंड घेर लिया गया था । एक कोने में एक कुआ खोदा गया। पानी काफी नजदीक था । गेट में ''हरेर्नाम केवलम्'' लिखित एक प्लेट लगायी गयी। महात्मा अर्जुनदास ने भी घेरे के अंदर एक कोने में अपना आसन लगाया । वे गोस्वामीजी में अत्यन्त श्रद्धा करते थे । उन्होंने एक दिन कहा - हमने चारों-धाम दर्शन किये; परन्तु ऐसा साधू कभी नहीं देखा। सब समय नाम समाधि में रहते हैं। देवता लोग इनकी जटा की सेवा करते हैं । शिष्यगणों को उन्होंने कहा - तुम लोगों के बहुत सुन्दर भाग्य हैं जिससे ऐसे साधू का संग मिला ।

गोस्वामीजी ने यहाँ आते ही शिष्यगणों को आदेश दिया कि ''**तुम लोग यहाँ कल के लिए कुछ भी संचय मत करना, जिस दिन जो**

आयेगा, उसी रोज सब व्यय कर देना। बच जाए तो दान कर देना ।'' उस समय विधू घोष वहाँ के संचालक रूप में थे जैसे उनका आदेश हुआ, एक छटांक मैदा या चाँवल भी वे संचय नहीं रखते थे । जैसे प्रयाग (इलाहाबाद) शहर स्थित घर में खर्च चल रहा था, यहाँ भी उसी प्रकार चलने लगा । इतना खर्च (दोनों जगहों का) कैसे निर्वाह होता है ? यह कुछ भी धारणा करना कठिन था । गोस्वामीजी के साथ इस विषय में कोई बात भी नहीं होती थी । केवल भोजन बनाने के समय वे पूछते थे -

गोस्वामीजी - आज कितने लोगों का भोजन बना रहे हो ?

शिष्यगण - जी, चालीस व्यक्तियों का ।

गोस्वामीजी - इसमें कैसे होगा ? आज साठ व्यक्तियों के भोजन की व्यवस्था करो ।

किसी दिन बोलते आज 400 साधुओं का भंडारा करना है, कभी 800 का । उसी प्रकार सब व्यवस्था की जाती थी । रूपये पैसे के संबंध में कोई बातचीत ही नहीं करते थे। सब उनके आदेशानुसार कार्य किया जाता। सब खर्च पूरा हो जाता था ।

पश्चिम के लोग, बंगालियों को मत्स्य भोजी इत्यादि जानकर हेय दृष्टि से देखते थे। इसलिए गोस्वामीजी एवं उनके शिष्यगणों को देखकर संतों में संशय होने लगा एवं वे लोग आपस में एक मंडली बनाकर इस विषय में जाँच पड़ताल करने लगे कि वास्तविकता क्या है? गोस्वामीजी को जो सदाव्रत* दिया जाता था, वह भी बंद कर दिया गया। जिस वैष्णव साधू ने गोस्वामीजी को मेला में वास करने के लिए जगह दी थी, उससे भी इस संबंध में पूछा गया। उन्होंने कहा - ''मैं नहीं जानता था कि गोस्वामीजी बंगाली साधू हैं, इसलिए अपने पास जगह दी है।'' तत्कालीन सन्यासी मंडलेश्वर-स्वामी भोलानंद गिरिजी एवं चौरासी कोस व्रजमंडल के महन्त-महात्मा रामदास काठियाबाबा उपस्थित थे । ये दोनों

* कुंभ मेले का नियम है कि बड़े-बड़े महन्त, मेला स्थित संतों-साधुओं में अपने पास आयी हुई वस्तुओं को प्रयोजनानुसार बाँट देते है। इसे सदाव्रत कहते हैं।

बड़े ही प्रभावशाली ख्याति सम्पन्न महात्मा थे। वे दोनों महापुरुष गोस्वामीजी को पहले से ही जानते थे । उन्होंने गोस्वामीजी का समर्थन करके कहा कि कुंभ में उन बंगाली साधू जैसा एक भी साधू नहीं है। धीरे-धीरे विवाद मिट गया। सदाव्रत फिर से शुरू हो गया । कुछ दिन बाद गोस्वामीजी कुटिया में रहने लगे। रात्रिकाल में कुंभ के अनेक साधू सन्यासी लोगों ने गुप्त रूप से उस कुटिया में मंत्र-दीक्षा पाई ।

एक दिन शिष्यगण गोस्वामीजी से पूछने लगे -

शिष्यगण - इस कुंभ में भारत के सब प्रान्तों से महात्मा लोग आ रहे हैं। परमहंस जी (गोस्वामीजी के गुरुदेव) आये हैं या नहीं ?

गोस्वामीजी - वे तो आये थे, तुम लोगों ने देखा नहीं ।

शिष्यगण - नहीं, हम लोगों ने उन्हें नहीं देखा ।

गोस्वामीजी - मेला स्थल में आने के समय जिनको देखकर मैंने साष्टांग किया था, वे ही तो परमहंसजी थे ।

सब शिष्यगण अफसोस करने लगे ।

मैं - हम लोगों ने उनकी जो शक्ल देखी, क्या वही उनका वास्तविक चेहरा है ?

गोस्वामीजी - वह शरीर उनका खुद का न था। वे एक कल्पित देह धारण कर आये थे ।

मैं - उनका स्वयं का देह कहाँ पर है ?

गोस्वामीजी - मानस सरोवर में ।

मैं - वह किस अवस्था में है ?

गोस्वामीजी - समाधि अवस्था में ।

मैं - मनुष्य क्या देह से बाहर होकर दूसरा शरीर धारण कर सकता है ?

गोस्वामीजी - हाँ, कर सकता है। यह कल्पित देह दो प्रकार का हो सकता है। महात्मा लोग साधारणत: पंचभूत की सूक्ष्मावस्था पंचीकरण द्वारा कल्पित देह धारण करते हैं ।

मैं - परमहंस जी के पैरों में हाथ से स्पर्श किया था, उनका रक्त-मांस का शरीर था ?

गोस्वामीजी - वह भी होता है । देह अति वृद्ध हो जाने से कई महात्मा लोग देह परित्याग कर, नये देह का सृजन कर लेते हैं । कोई कोई माहत्मागण दो तीन बार ऐसा कर लेते हैं ।

मैं - परमहंस जी कल्पित देह से क्यों आये ?

गोस्वामीजी - साधारण लोग यदि उन्हें समझ गये तो क्या वे आत्मरक्षा कर सकेंगे ? मनुष्य इतना स्वार्थी है कि स्वार्थ के लिए उनको चबा खायेगा ।

मैं - यह तो बड़े आश्चर्य की बात है ।

गोस्वामीजी - मैं भी पहले ये सब बातें विश्वास नहीं करता था। एक दिन कुछ लोग एक मृत देह संस्कार करने जा रहे थे, उस समय अचानक बारिश आ गई। उस कारण वे लोग मृतदेह को उतार कर रखकर, दूर जा बैठे। उसी समय परमहंस जी उस मृतदेह में प्रविष्ट होकर मेरे पास आकर खड़े होकर बोले -''क्यों अब विश्वास हुआ ? मैं आश्चर्यचकित हो गया। बोला ''आपकी अद्भुत क्षमता है ?''

गोस्वामीजी हम लोगों को नित्य साधू दर्शन एवं परिक्रमा करने के लिए कहते थे। सर्वदा एक ही साधु के निकट जाने को मना करते थे। केवल दूर से प्रणाम करने के लिए कहते थे क्योंकि वे लोग किस भाव में रहते हैं ? यह मालूम न रहने से क्षति होने की संभावना है। मैं उनके आदेश से रोज साधू दर्शन को जाता था एवं परमहंस जी को सर्वत्र खोजता था परन्तु एक दिन भी फिर उनका दर्शन नहीं मिला ।

अनेक प्रान्तों से महन्तगण मेले में आये हुए हैं। उनके ऐश्वर्य की सीमा नहीं है। साथ में हाथी, घोड़ा, ऊँट, गाय इत्यादि हैं । कुंभ में खर्च करने के लिए लाखों रूपये साथ में लाये हैं। जब वे लोग घोड़े में स्नान के लिए निकलते हैं, तो लगता है, जैसे बादशाह लोग जा रहे हैं। उनके मणि-माणिक्य रचित पोषाक सूर्यालोक में चमकते थे । घोड़े भी सुसज्जित थे। साथ में बड़ी बड़ी ध्वजाएं भी थी, जिन्हें 8-10 लोग चारों तरफ से रस्सी से खड़ा करके ले जा रहे थे । ध्वजाएँ मलमल की निर्मित थी, जिनमें मोती वगैरह लगे हुए थे ।

इन सब महन्तों को देखकर रंगीन बाबा* मुंह बनाकर बोलते थे - ये क्या साधू हैं ? एक-एक नवाब बन कर बैठे हैं । महीने भर कुंभ में किस प्रकार से भोजन व अन्य व्यवस्था होगी ? - ये सब वार्ताएं, उन महन्तों के पास सुनने में आती थी परन्तु गोस्वामीजी के पास आर्थिक समस्या या खर्च की कोई भी वार्ताएं नहीं होती थी। सर्वदा ही उन्हें प्रशान्त एवं निश्चिंत भाव में देखा जाता था ।

एक दिन भोलागिरी महाराज के तंबू में, उनके दर्शन के लिए गया । एक मृगचर्म के ऊपर वे बैठे थे। मृगचर्म के चारों ओर में सुंदर कीमती झालर लगा हुआ था । दोनों ओर दो तकिए थे। शुभ्र सुन्दर कपड़े से गिलाफ उसमें लगाए गए थे। उनके परिधान में सिल्क का गैरिक वसन था । उन्होंने मुझे बैठने के लिए कहा एवं बहुत देर तक हिन्दी भाषा में भगवद्गीता का उपदेश दिया । उसके दूसरे दिन में फिर मैं उनके दर्शन के लिए गया, तब वे परीक्षा करने के लिए गीता के प्रश्न पूछने लगे । मैं उत्तर न दे सका । उन्होंने कहा - ''सब भूल गया''? मैंने गोस्वामीजी से आकर सब वार्तालाप कहा । उन्होंने सुनकर कहा- तुम बोल न सके कि भगवान स्वयंवक्ता थे, अर्जुन श्रोता। उपदेश देने के बाद अर्जुन ने कहा था कि मैं सब भूल गया। अत: मेरे जैसा व्यक्ति आपके द्वारा दिये गए गीता उपदेश कैसे याद रख सकता है ? एक दिन एक और सन्यासी महात्मा का, जिनका नाम शंकर अरण्य था, दर्शन करने गया। उनकी अत्यन्त विलासिता, वैभव देखकर बड़ा अजीब सा लगा ।

एक दिन रात को खूब तूफान एवं वर्षा हुई। भयानक ठंड पड़ी। चारों ओर हाहाकार मच गया। कई तंबू गिर गए । तब उन महात्मा को एक मात्र कौपीन पहनकर ठंड से काँपते हुए तम्बू के बाहर देखा । गोस्वामीजी ने उनके जाने के बाद कहा - इन लोगों का ऐश्वर्य धूलि कण के समान है। स्नान के समय ये बादशाह के समान देखने में लगते हैं, किन्तु देखो इतनी रात्रि में वे घूम कर देख गए कि धूणी के लिए

* रंगीन बाबा अंगरखा (अल्फी) पहनते थे जिसे विभिन्न रंगों के कपड़ों के टुकड़ों से बनाया गया था । वे एक नानक पंथी साधु थे, उनके वेश से वे रंगीन बाबा नाम से परिचित थे ।

लकड़ी है या नहीं। वस्त्रों या भोजन वस्तुओं की कमी तो नहीं है ? ये कल दिन में सब वस्तुएं भिजवा देंगे । इनका जो बाहरी दिखावा है, वह केवल पद के गौरव की रक्षा के लिए है ।

एक दिन गैरिक वस्त्रधारी, जटाजूटधारी एक साधू हम लोगों के तंबू में उपस्थित हुआ । उसके सर्व अंग में विभूति लगी हुई थी। हाथ में कमंडल था । वहाँ गोस्वामीजी के पास आते ही उन्होंने उसको ''चोर रूपी नारायण'' कह कर प्रणाम किया - वह आदमी चौंक कर कोई बात न बोलकर वहाँ से चला गया । मैंने गोस्वामीजी से पूछा -

मैं - आपकी बात समझ में नहीं आई । आप ने उन्हें ''चोर रूपी नारायण'' कहकर क्यों प्रणाम किया ?

गोस्वामीजी - आदमी यहाँ आया था वह साधु नहीं था। एक चोर साधू का वेश धारण कर, चोरी करने के लिये घूम रहा था। मैं उसे क्या बोलूँ सोचकर ''चोर रूपी नारायण'' कहा । वह आदमी एक दिन पहले भी आया था, आप लोग ठीक पहचान न सके ?

गोस्वामीजी के बोलने के बाद हम लोगों को उसका स्मरण हुआ । तीन दिन बाद हम लोगों ने देखा कि पुलिस उसे गिरफ्तार करके हाथ में बेड़ी डालकर मेले के बाहर ले जा रही है ।

गुरुभक्त महिलागण दिन को मेले के तंबू में आती थी; शाम को शहर के घर में चली जाती थी। गोस्वामीजी की पुत्री शान्तिसुधा काफी पीड़ित थी एवं बहुत कष्ट पा रही थी । शरीर कृश हो गया था। वह एकदिन आकर गोस्वामीजी को बोली - पिताजी या तो मुझे मृत्यु दे दो या मेरी व्याधि ठीक कर दो । गोस्वामीजी ने कहा - सब संभव है परन्तु ऐसा करने से तुम्हें फिर से एक बार जन्म लेना पड़ेगा । यह सुनकर शान्ति सुधा चुप रह गई । गोस्वामीजी ने उसके रोग के प्रतीकार की कोई व्यवस्था नहीं की ।

एक दिन शान्तिसुधा रोग यंत्रणा में छटपटा रही थी। उसे देखकर नानी माँ दु:खित होकर बड़े काठिया बाबा के पास दौड़गई और जाकर बोली - बाबा, गोसाँई जी कुछ नहीं करते। रामदास काठिया बाबा जी गाँजा पीकर मस्त होकर बैठे थे। उनकी बात सुनकर उन्होंने कहा -

''अभी ठीक हो जाएगी'' यह कहकर, धूनी की राख देकर नानी माँ को कहा कि उसे उसके पेट में मल देना । साथ में एक देसी दवाई भी दी । नानी माँ द्वारा उनके कहे अनुसार कार्य करने से शान्ति सुधा स्वस्थ हो गई एवं स्वर्णकान्ति प्राप्त की । कुंभस्नान के बाद गोस्वामीजी ने अपनी छोटी लड़की कूतू का विवाह राम यादव बागची के कनिष्ठ भ्राता के साथ कर दिया ।

गुरुशक्ति व कुडंलिनी शक्ति का प्रकाश

कुंभ स्नान के बाद मैं बोलपुर लौट आया । प्रयाग में मेरा शरीर स्वस्थ जरूर हुआ परन्तु अपने जीवन में उन्नति के कोई भी लक्षण न दिखे। मैं जैसा शुष्क हृदय था, वैसा ही रहा । इतने साधू-दर्शन, देवदर्शन, गंगास्नान, प्रसाद भक्षण, सत्संग, गुरु के पास वास से मुझे जीवन में कुछ भी फर्क नजर न आया। **सिर्फ एक उपकार यह हुआ कि गोस्वामीजी की दरिद्रता सोचकर पहले मन में दुख होता था, वह दूर हो गया।**

श्रीमद्भगवद् गीता में एक श्लोक है :

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योग-क्षेमं वहाम्यहम् ॥ 9-22 ॥

जो व्यक्ति अनन्य होकर मेरी उपासना करते हैं, उन निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का मैं योगक्षेम स्वयं वहन करता हूँ । शास्त्र वाक्यों में मेरा पूरा विश्वास नहीं था । गोस्वामीजी की आध्यात्मिक अवस्था देखकर मुझे शास्त्र वाक्यों में विश्वास पैदा हुआ ।

मैं गोस्वामीजी को बहुत समय से जानता था । **वे ब्राह्मसमाज में शीर्षस्थानीय थे** । सभी उन्हें प्रगाढ़ श्रद्धा-भक्ति करते थे । बाद में जब ब्राह्मगण उनके क्रिया कलापों को देखकर, उनका प्रतिवाद करने लगे, तब उन्होंने सब मान, सम्मान त्याग करके ब्राह्मसमाज का त्याग कर दिया। जीवनधारण कैसे होगा, इसकी भी चिन्ता न की ? ब्राह्मसमाज में उन्हें थोड़ा मासिक वेतन दिया जाता था, वह भी बन्द कर दिया गया । उन्होंने आकाशवृत्ति का अवलंबन किया । भगवान ने यदि कुछ दिया तो

ग्रहण करेंगे। किसी के पास याचना न करने का निश्चय किया । उन्होंने संपूर्ण रूप से ईश्वर के प्रति निर्भर एवं आत्मसमर्पण किया। प्रभु ने भी उनकी सर्व आपदा - विपदा से रक्षा की एवं सब भार ग्रहण किया । ईश्वर पर उनका संपूर्ण विश्वास एवं निर्भरता थी अन्यथा प्रयाग जैसी जगह में रिक्त हस्त इतने लोगों को लेकर रहना एवं उनका संपूर्ण व्यय भार वहन करना, किस प्रकार संभव हो सकता था ?

एक दिन ढाका में मैंने एक सच्ची कहानी उनको सुनाई थी । इंग्लैण्ड में एक साहब अनाथालय चलाते थे । एक बार वहाँ अन्न का अभाव हो गया । साहब ने बालकों को ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए कहा । सब लड़के प्रार्थना करने लगे । अचानक एक पोस्टमैन (डाकिया) ने एक रजिस्टर्ड लिफाफा साहब को दिया । उसे खोल कर देखा, किसी ने उनको काफी रूपये भेजे थे । यह कहानी सुनने के बाद गोस्वामीजी ने कहा - प्रार्थना की जरूरत नहीं पड़ती। उसके पहले ही भगवान सब अभाव का मोचन कर देते हैं । **कुम्भ मेले में गोस्वामीजी द्वारा कथित इस उपदेश वाक्य का प्रमाण मुझे मिल गया ।**

गोस्वामीजी प्रयाग से कलकत्ते आकर चैतन्य महाप्रभु के जन्मोत्सव होली के समय नवद्वीप गए । वहाँ से लौटने के बाद 1893 के चैत्र के महीने में कलकत्ते में, मैं उनसे मिलने गया । कुछ दिन आनन्द से वहाँ बिताने के बाद, बोलपुर लौटने के लिए उन्हें प्रणाम करके आज्ञा मांगी । तब उन्होंने कहा कि पंडित श्यामाकान्त जी को साथ ले जाइये। बोलपुर में इनको एक भजन के लिए कुटिया बना देना । मेरे लिए भी एक कुटीर बनाना। बोलपुर जाने से वहाँ रहूंगा । मैं ''जो आज्ञा'' कह, श्यामाकान्त पंडित जी को साथ लेकर बोलपुर लौटा ।

श्यामाकान्त पंडितजी का शरीर अस्वस्थ था। वे गुरु आज्ञा से भिक्षा करके खाते थे। वे भी ब्राह्म थे । उनके गले में यज्ञोपवीत था किन्तु तिलक, माला वगैरह कुछ नहीं था । उनके साथ मेरी पहले से ही मैत्री थी। इसलिए दोनों एक साथ भजन साधन, सत्संग करके जीवन-यापन करने लगे ।

बोलपुर के पूर्वी किनारे में एक छोटी सी नदी थी। उसके पूर्वी भाग में सुविस्तृत खाली मैदान था । वहाँ पूर्वमुख होकर खड़े रहने से

लगता था-जैसे अनंत आकाश क्षितिज से संलग्न हो गया है। एक भी वृक्ष या ग्राम दिखाई नहीं पड़ता था । दक्षिण या उत्तर दिशा में भी काफी दूर तक कोई ग्राम नहीं था । वहाँ पर छोटे-छोटे पानी के कई झरने थे। वहाँ का पानी शीतल एवं स्वास्थ्यप्रद था। वहीं एक अच्छे झरने के निकट, उनके लिए एक कुटीर का निर्माण करने लगा। जब तक घर नहीं बना, तब तक पंडित जी मेरे घर में रहकर भिक्षा करके आजीविका चलाते थे।

गुरुशक्ति (कुंडलिनी शक्ति) नाम की कोई वस्तु है, अभी तक मुझे इसका कोई आभास नहीं था । यह सोचता था कि एक मंत्र बोल देने से ही गुरु हुआ जा सकता है । शास्त्रों के अनुवाद छपे अक्षरों में प्राप्त हैं - उसमें से मन्त्र निर्वाचन करके जप करने से ही काम चल जाता है। इसलिए ब्राह्म अवस्था में, मैं एक मंत्र, तंत्र से निर्वाचन कर, जप करता था - एक अपने ही पौरूष बल पर भजन साधन करता था ।

1894 आषाढ़ के महीने में करीब 8 बजे, मैं अपनी बैठक के कमरे में बैठा, कागजात देख रहा था। श्यामाकान्त पंडित जी एवं बोलपुर अंग्रेजी विद्यालय के प्रधानाध्यापक, नवीन चन्द्र मैत्र, सामने बैठे हुए थे। घर में मुवक्किल भी कुछ बैठे थे। उसी समय, एक भिखारी आकर दरवाजे के पास करताल (झांझ) बजाकर गाने लगा ''निताई गौर सीतानाथ, मुझे दया करो''। जैसे ही इस ध्वनि ने मेरे अंदर प्रवेश किया, ऐसा लगा मानों कोई हवा का तूफान मेरे अन्दर घुस गया। मैंने आँखें बन्द कर ली। हाथ से कलम फिसलकर गिर गया । ऐसा लगने लगा, जैसे वायु का एक बड़ा तूफान (बवंडर) मेरे नाक से प्रविष्ट हो रहा है और एक बार बाहर निकल जा रहा है । मेरा पेट एवं पीठ एक समान हो जा रहा है । अजगर (साँप) के समान नाक से भीषण गर्जन होने लगा। भीतर की मांस-पेशियों, हृदय, फेफड़े वगैरह सब ऐसा लग रहा था जैसे फट जायेंगी । जब थोड़ी शांत अवस्था आती, तभी कीर्तन सुनने से पुनः वैसे प्राणायाम सा होने लगता। मैं बड़े संकट में पड़ गया ।

भिखारी भिक्षा लेकर चला गया पर मेरे अन्दर होने वाली क्रियाएं बंद नहीं हुई । अचानक श्वाँस बंद (कुंभक) हो गया। श्वाँस-प्रश्वांस सब बंद हो गया। मैं एक दम शान्त हो गया। शारीरिक कोई भी कष्ट महसूस नहीं हुआ । फिर मुझे चिन्ता होने लगी कि लोग बोलते हैं कि

श्वांस बंद रहने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। मुझे तो कोई कष्ट नहीं हो रहा है। ऐसा लग रहा है, आजीवन श्वांस न भी बहे तो मुझे कोई भय नहीं परन्तु काफी देर तक जब स्वांस बन्द रहा तब फिर चिंताएं सताने लगी, डर लगने लगा, इसलिए जबरदस्ती श्वाँस बाहर फेंकने की चेष्टा करने लगा किन्तु मैं श्वाँस बाहर न फेंक सका। तब पुनः पुनः मैं, जिससे स्वाँस चले उसकी चेष्टा करने लगा । अचानक फिर जोर से स्वाँस चला । इस प्रकार कुंभक, कभी भ्रस्त्रिका प्राणायाम, तीव्र आवाज के साथ अपने आप होने लगा । मैं भयभीत एवं क्लान्त हो गया ।

अभी तक गुरु का स्मरण नहीं हुआ था । अब घबराकर जब गोस्वामीजी को मन ही मन पुकारने लगा ''हे गुरुदेव रक्षा करो, मेरे प्राण निकल रहे हैं,'' प्रार्थना करने से धीरे-धीरे मुझे पूर्ववत् शान्त अवस्था की प्राप्ति हो गई'' और पूर्ण स्वस्थता का बोध होने लगा ।

मैंने आँख खोलकर देखा कि पंडित श्यामाकान्त जी मेरे मेरूदंड को ऊपर से नीचे की ओर जोर से रगड़ रहे हैं । उन्होंने कहा - ''हरिदास बाबू, आज आपका शुभ दिन है। गोस्वामीजी ने जो बीज आपके अन्दर बोया था, आज उसका अंकुर उद्गम हुआ ।'' नवीन बाबू एवं मुवक्किल लोग सब आश्चर्यचकित हो गए ।

यह अद्भुत क्रिया शरीर में हो जाने के बाद, मुझे लगा, जैसे मैं कोई नया आदमी बन गया हूँ। मुझे पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता आदि सब नये रूप में दिखने लगे । काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि रिपुओं का अत्याचार भी समाप्त हो गया । निन्दा प्रशंसा, लाभ, क्षति, कल्पना, वासना-कामना, अशान्ति ने मेरा परित्यागकर दिया । मैं जैसे नशे से चूर होकर रहने लगा । भीतर आनन्द का फव्वारा खुल गया । कर्म वगैरह करने की मेरी शक्ति खत्म हो गई। एक हस्ताक्षर भी करने की सामर्थ्य न रही। मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे मेरी वकालती अब खत्म हो जायेगी ।

यह अवस्था मेरी करीब महीने भर रही । मैं जैसे अमृत सरोवर में डुबकी लगाने लगा । इसके बाद जब भी निताई, गौर या राधाकृष्ण नाम मेरे कानों में प्रवेश करता, उसी समय प्राणायाम अपने आप होने लगता एवं शरीर कंपायमान होने लगता । मैं पहले गुरुआज्ञानुसार थोड़ा

प्राणायाम, कुंभक करता था। परन्तु अभी जो हो रहा था, वह एकदम अलग वस्तु थी । पहले जैसा ही भोजन आदि लेता हूँ। परन्तु अभी ऐसा क्या होता है ? - क्या यह मंत्र शक्ति है ? किस कारण इस प्रकार का अनुभव हो रहा है ? इन प्रश्नों की मीमांसा करने, सीताराम घोष स्ट्रीट कलकत्ते के किराये के घर में, जहाँ गोस्वामीजी तब रहते थे, मैं उनके पास पहुँचा ।

मैं - आपने मेरे भीतर क्या कर दिया ? मैं निताई, गौर राधाकृष्ण वगैरह कुछ नहीं मानता। उनके नाम से मेरे शरीर में विभिन्न क्रियाएं क्यों होती हैं ?

गोस्वामीजी - आप मानें या न मानें। वे* आपको मनवा करके ही रहेंगे । वे जब हँसेंगे तब आप हँसेंगे। वे आपके अन्दर जब रोयेंगे, तब आपको रोना पड़ेगा। वे जब आपको नृत्य करायेंगे तब नृत्य करना पड़ेगा।

मैं - मेरे इष्ट मंत्र के साथ निताई-गौर, राधाकृष्ण आदि का कोई मेल नहीं है। फिर भी उनके नाम सुनकर मन व्याकुल क्यों हो जाता है?

गोस्वामीजी - आप समझते हैं कि ये सब अलग-अलग हैं। परन्तु वस्तुत: **सब एक हैं ।**

मैं - **दीक्षा - तत्व क्या है ?**

गोस्वामीजी - **जीवात्मा और परमात्मा एक ही देह में अवस्थित हैं। मातृगर्भ से भूमिष्ठ होने के बाद भगवान की माया शक्ति के द्वारा जीव बद्ध हो जाता है। वह समझता है, मैं ही कर्त्ता (करने वाला) हूँ। परन्तु वास्तव में भगवान ही करने वाले हैं, यह बोध नहीं रहता। वे ही प्राणों के प्राण हैं, चक्षु के चक्षु हैं । सूर्य जिस प्रकार बादल द्वारा ढक जाता है, उसी प्रकार जीव भी मायाशक्ति द्वारा आच्छन्न हो (ढक) जाता है। श्री गुरु, शिष्य के अन्दर प्रविष्ट होकर माया-मेघ को अपसरित करते हैं एवं परमात्मा को जाग्रत करके, शिष्य के अन्दर प्रतिष्ठित करते हैं ।**

मैं - गुरु किस प्रकार से जीवात्मा को माया-मेघ से मुक्त करते हैं?

---

* वे अर्थात् जिस मंत्र को शक्ति संचारित करके गोस्वामीजी ने शिष्य के देह मंदिर में प्रतिष्ठित किया है अर्थात् भगवन्नाम-नामी-नामदाता एक हैं ।

गोस्वामीजी - कृपा दृष्टि द्वारा । परमात्मा, शक्ति रूप में इस देह में अवस्थित रहते हैं ।

मैं - हमें तो इसका अनुभव नहीं होता ।

गोस्वामीजी - यह शक्ति जाग्रत न होने से मनुष्य समझ नहीं सकता। कोई शक्ति संपन्न महापुरुष के द्वारा शक्ति जागृत करा लेनी पड़ती है ।

मैं - महापुरुष लोग किस प्रकार शक्ति जगाते हैं ?

गोस्वामीजी - जिस प्रकार दीये में तेल रहने से भी वह स्वयं नहीं जल सकता। एक जलते हुए प्रदीप की जरूरत पड़ती है। उसी प्रकार यह शक्ति मनुष्य के अंदर रहने से भी स्वयं जागृत होती नहीं है। किसी प्रबल शक्ति सम्पन्न महापुरूष की शक्ति का संस्पर्श जरूरी है। इसे ही शक्तिपात या ''शक्ति-संचार'' कहते हैं ।

बुद्ध देव सरीखे उच्च अवतारीगण होने से अपने आप शक्ति का जागरण संभव हो भी सकता है ।

मैं - **यदि शक्ति जागरण न हो तो नुकसान क्या है ?**

गोस्वामीजी - **साधन भजन का फल स्थायी नहीं होता । कोई अच्छी अवस्था प्राप्त होने पर भी ज्यादा दिन वह नहीं टिकती ।**

मैं - मंत्र प्रदान करने का प्रयोजन क्या है ?

गोस्वामीजी - **मंत्र शब्द नहीं हैं। मंत्र के प्रतिपादित देवता को, मंत्र में समन्वित करके, गुरु शिष्य को प्रदान करते हैं । मंत्र एवं मंत्र के प्रतिपाद्य देवता एक ही हैं। परमात्मा जैसे शक्ति स्वरूप हैं, मंत्र भी वैसे ही है ।**

मैं - **सिद्ध मंत्र किसको कहते हैं ?**

गोस्वामीजी - **जिस मंत्र को कोई महात्मा ने जप करके सिद्धि लाभ किया है, उसे सिद्ध मंत्र कहते हैं ।**

मैं - आपने मुझे दीक्षा क्यों दी है ?

गोस्वामीजी - **मैं त्रिताप की ज्वाला में बहुत ही दग्ध हुआ हूँ। आप लोग इससे निस्तार पा सकें, जिससे आप लोगों का आन्तरिक**

दु:ख दूर हो, इसलिए दीक्षा दी गई है । जिस प्रकार अपनी पत्नी को कोई अन्य को नहीं देता, उसी प्रकार इस अमूल्य धन को मैं कोई दूसरे को नहीं देना चाहता ।

मैं - शिष्य के लिए, गुरु का कोई कर्त्तव्य है ?

गोस्वामीजी - **हाँ है। जितने दिन तक शिष्य का उद्धार नहीं होता है, उतने दिन तक गुरु का भी उद्धार नहीं होता। यदि गुरु को इसके लिए जन्म ग्रहण करना आवश्यक हो तो उसे पुन: जन्म ग्रहण करना पड़ेगा ।**

मैं - **गोसाँई जी ! आपने ऐसा कार्य क्यों किया ? आपको क्या कोई अच्छा आदमी नहीं मिला ? मुझ जैसे पातकी को दीक्षा का दान कर दिया । आपने तो कंटीली झाड़ियों में मोती बिखेर दिया है ।**

गोस्वामीजी - **मैं आप लोगों की नित्य पूजा करता हूँ । आप लोगों का देह मेरा मंदिर है। उसमें मैंने अपने इष्ट देवता को प्रतिष्ठित किया है। वे कितने आपके प्रियजन हैं, यह आप लोग नहीं जानते हैं- आप लोग अभी उनका आदर या ठीक प्रकार से पूजा नहीं कर पाते इसलिए मुझे ही पूजा करनी पड़ती है ?**

मैं - **किस प्रकार से पूजा करनी पड़ती है ?**

गोस्वामीजी - **सदा सर्वदा गुरु प्रदत्त नाम से ही उनकी प्रकृत पूजा होती है ।**

मैं - **गुरु बिना क्या भगवत् प्राप्ति नहीं हो सकती ?**

गोस्वामीजी - **गुरु बिना भगवत प्राप्ति असंभव ही जानो ।**

भगवत्प्राप्ति के लिए सद्‌गुरु से दीक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। यह **उनका ही नियम है ।**

मैं - सद्‌गुरु किसे बोलते हैं ?

गोस्वामीजी - **मनुष्य देह में भगवान के आवेश को ।**

मैं - **आप क्या सद्‌गुरु हैं ?**

गोस्वामीजी - हाँ।

मैं - साधारण गुरु द्वारा क्या भगवत् प्राप्ति नहीं हो सकती ? हम लोगों के यहाँ जो गुरु दीक्षा दे रहे हैं, उस दीक्षा से कोई लाभ नहीं होता ?

गोस्वामीजी- हाँ, साधारण गुरु की दीक्षा से भी लाभ होता है। ये सब गुरुगण एक प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हैं, इससे समाज का बहुत कल्याण होता है।

मैं - सब समय क्या सद्‌गुरु का आविर्भाव होता है ?

गोस्वामी-नहीं, जब धर्म की अत्यन्त ग्लानि (दुर्दशा) होना प्रारंभ होता है तब सद्‌गुरु का आविर्भाव होता है।

मैं - आप जो साधन प्रणाली हमें दे रहे हैं उससे क्या प्राप्त हो सकता है ?

गोस्वामीजी - इस पृथ्वी में जितने प्रकार की साधन प्रणाली प्रवर्तित हैं, उससे मनुष्य जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वह सब प्राप्त हो सकता है । उसके अतिरिक्त ''प्रेमभक्ति की'' प्राप्ति होगी ।

मैं - यह अवस्था कितने दिनों में प्राप्त हो सकती है ?

गोस्वामीजी - 2 दिन, 10 दिन, 2 साल, 10 साल, 50 साल, में प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाने से अवस्था की प्राप्ति होगी ।

मैं - **प्रारब्ध कर्म कैसे समाप्त होगा ?**

गोस्वामीजी - **भगवत् नाम से ।**

मैं - हम लोगों का नाम अपराध है क्या ?

गोस्वामीजी - नहीं, गुरुदेव ने नाम अपराध नष्ट कर दिए हैं ।

मैं - यदि मन-मन में कुचिन्ता करूँ और नाम करूँ तो क्या नाम करने से फायदा होगा ?

गोस्वामीजी - हाँ, अवश्य होगा, नाम शब्द नहीं है - शक्ति है, वस्तु शक्ति का प्रभाव नष्ट नहीं होता ।

मैं - यह साधन अभी तक कहाँ था ?

गोस्वामीजी - निर्जन पहाड़ के बीच से जिस प्रकार एकान्त में कोई नदी धीरे-धीरे प्रवाहित होती है, उसी प्रकार यह साधन अति गुप्तभाव से साधू सन्यासियों के बीच गुरु परम्परा से चला आ रहा था। यह साधन पहले ग्रहस्थ व्यक्तियों को नहीं दिया जाता था । देश की अत्यन्त दुरावस्था देखकर, महात्मागण इस बार गृहस्थों को भी यह साधन प्रदान कर रहे हैं।

मैं - हम लोगों को क्या कर्मसूत्र में जड़ित होना पड़ेगा ।

गोस्वामीजी - नहीं। गुरु ने कर्म सूत्र को छिन्न कर दिया है। बिना कर्म बन्धन काटे जीव का उद्धार नहीं होता ।

मैं - श्री चैतन्य महाप्रभु का नाम मुझको भावावेश में ला देता है वे क्या भगवान हैं ?

गोस्वामीजी - हाँ, वे पूर्णतम् भगवान है, यह साधन उनका खुद का साधन है ।

संकीर्तन आरंभ

यद्यपि गोस्वामीजी के मत के साथ मेरे मत की एकता (समानता) न थी, तथापि गुरु-आज्ञा समझकर यथा-साध्य उनकी बातों को पालन करने की चेष्टा करता था । उनकी आज्ञानुसार मैं नित्य नियम से स्नान के बाद एक अध्याय ''चैतन्य चरितामृत'' पाठ करता था । पहले पहले अच्छा नहीं लगता था परन्तु धीरे धीरे गुरुशक्ति के प्रभाव से नित्य नियम से पाठ करने से मुझे रस मिलने लगा। बाद में ग्रन्थ को पढ़ने से अति आनन्द एवं शान्ति की प्राप्ति होने लगी । जितनी बार पढ़ने लगा, हर बार मुझे नई-नई बातें उसमें मिलती रहती । इस ग्रंथ में उच्चतम सिद्धान्त धर्म संबंधी लिखे गए हैं । धीरे-धीरे ग्रन्थकार श्री कविराज गोस्वामीजी के प्रति मेरी प्रगाढ़ श्रद्धा होने लगी ।

''चैतन्य चरितामृत'' में एक जगह में श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे पूर्वज सत्यराज खाँ* एवं उनके पुत्र रामानंद बसु को कहरहे हैं ।-

कुलीन ग्राम वासिओं को कहे सम्मान देकर ।
हर साल आवोगे पट्ट डोरी लेकर ॥
गुन राज खान* ने लिखा श्री कृष्ण-विजय ।
उसमें एक वाणी है अति प्रेममय ॥
''नन्द-नन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाथ''।
इस वाक्य से मैं बिक गया उनके वंशजों के हाथ ॥

---

* सत्यराजखान मेरे उर्ध्वतम दशम् पूर्वज थे। इनका नाम लक्ष्मीकान्त वसु था। दिल्ली के बादशाह ने सत्यराज खान उपाधि दी थी ।

* गुनराज खान का असली नाम मालाधर बसु था। वे कवि भी थे। बंगाल के एक राजघराने के थे ।

फिर रामानन्द** और साथ में सत्यराज खान ।
प्रभु के चरणों में उन्होंने किया निवेदन ।
हम लोग विषयी गृहस्थी, क्या करें भजन ?
कुछ दीजै शिक्षा, आपके चरणों में निवेदन ॥
प्रभु ने कहा, करो कृष्णसेवा, वैष्णव-सेवन ।
नित्य करते रहो घर में नाम-संकीर्तन ॥

इस पाठ को पढ़ने के बाद मैंने घर में कृष्ण सेवा, वैष्णव सेवा एवं रोज नाम संकीर्तन की व्यवस्था कर दी। यद्यपि नाम संकीर्तन में मेरी रूचि नहीं थी। फिर भी विष ही विष की औषधि है । यह समझकर संकीर्तन प्रारंभ किया । मेरे मुंशी, राखाल चक्रवर्ती, मृदंग अच्छा बजा लेते थे । पंडितजी (श्यामाकान्त) अच्छा गायन कर लेते थे। 2/4 युवक व्यक्ति मुहल्ले में मिल गए, जो साथ में गा लेते थे। संध्या के बाद काम-काज सब बंद कर दिया जाने लगा। बैठक खाने में संकीर्तन होने लगा । धीरे-धीरे श्रोताओं एवं गायकों की वृद्धि होने लगी । दिनों-दिन संकीर्तन में आनन्द की अनुभूति होने लगी ।

रोज संकीर्तन चलने से मोहल्लावासी अंदर ही अंदर क्रोधित होने लगे। मैं प्रभावशाली वकील था, इसलिए सीधे कुछ बोलने में हिचकिचाते थे। परन्तु परोक्ष में कई लोग मेरी घोर निन्दा करने लगे । कुछ लोग बोलने लगे - इस व्यक्ति का कोई लक्ष्य नहीं है । जब ब्राह्म था तब तो कुछ भी नहीं मानता था। अब कुछ दिन बाद मृदंग, झांझ लेकर घर में रोज हो-हल्ला मचा रहा है - पूरा वैष्णव हो गया है । मेरे कोर्ट में एक प्राचीन वैष्णव मेरी ब्राह्म अवस्था देखकर दु:खित थे। अब घर में रोज संकीर्तन वगैरह कराने से वे बड़े ही आनंदित होकर सबको बोलने लगे - इसका जन्म तो चैतन्य प्रभु के परम भक्त रामानन्द वसु के वंश में हुआ है, उसका प्रभाव तो रहेगा ही ।

** रामानन्द बसु महाप्रभु के परम भक्त थे । गौडीय वैष्णव गण
इनकी नित्य वन्दना भी करते हैं।
इनके वंशज श्री चैतन्य बिना कुछ नहीं जानते ।

संकीर्तन दल दिनों-दिन बढ़ने लगा । विपक्षी गण क्रमशः रूष्ट होने लगे एवं गाली गलौच करने लगे । बोलपुर में मद्य,मांस का चारों तरफ बोल बाला था - उसी समय 1894 ई. में भक्त प्रवर श्री हरिमोहन चौधरी (श्री गोस्वामीजी के शिष्य) भाद्र के महीने में मेरे घर में आये । उनके आने से संकीर्तन में दुगना उत्साह बढ़ गया। भक्ति गंगा की बाढ़ आने लगी । रात्रि-दिन कीर्तन एवं नृत्य होने लगा । पंडित जी एवं हरिमोहन जी के शरीर में जो भाव के दृश्य मैंने देखे थे, उसे वर्णन करने की मुझमें शक्ति नहीं है । कभी-कभी उनके शरीर में महाप्रभु का, कभी नित्यानन्द प्रभु का, कभी श्रीकृष्ण का, कभी सखीगण का, कभी पौर्णमासी का आवेश आता था । वे लोग उस समय भावावेश में मूर्छित हो जाते थे। मैं फूल, चंदन, दूर्वादल इत्यादि लेकर उनके चरणों में अर्पित कर पूजा करता था। किसी को भी उनके शरीर को स्पर्श करने नहीं देता था ।

हरिमोहनजी सर्वदा भाव में ही रहते थे। एक दिन वे लता-पुष्प पत्र से सुसज्जित होकर नगर संकीर्तनमें निकले । हरिनाम की ध्वनि से आकाश विदीर्ण होने लगा । रास्ते में भीड़ जम गई । अपने घरों से वृद्ध, युवक, युवती सब कीर्तन दर्शन करने हेतु निकलने लगे । विपक्षी दल ने हिंसा, द्वेष से भरकर-इसका प्रतिशोध लेने का एक उपाय निकाला । एक दिन कुछ व्यक्ति माला, तिलक वगैरह धारण कर मेरे पास आकर बोले- हम लोग नगर संकीर्तन में जायेंगे, कृपया मृंदग एवं झांझ हमें दीजिए। मैंने उन्हें प्रणाम करके मृदंग वगैरह दे दिये । उस समय बोलपुर में मृदंग वगैरह दूसरी जगह नहीं थे । वे लोग सब झुंड बनाकर कीर्तन का नाटक करते हुए रास्ते में निकले । कुछ लोग मुँह बनाकर नृत्य का ढोंग करने लगे एवं कुछ रास्ते में गिरकर लोटने लगे। उसे देखकर सब हँसने लगे । हरिमोहनजी आश्रम से लौटते समय दूर से संकीर्तन सुनकर अचानक भाव से गद्‌गद् हो गए एवं सकीर्तन को साष्टांग प्रणाम करने लगे ।

उन्हें देखकर विपक्षीगण अवाक् रह गए । वे लोग हँसी मजाक बंद कर, कीर्तन समाप्त कर घर चले गए ।

मैं इस प्रकार के घटना (नाटक) के विषय में कुछ नहीं जानता था। चार-पॉच दिन बाद एक आदमी दुःखित होकर मेरे पास आकर कहने लगा ''हम लोगों ने बहुत अपराध किया है, हमें क्षमा कीजिए। मैंने कहा - क्या हुआ है ? ''मुझे कुछ भी नहीं मालूम ।'' तब वह व्यक्ति बोलने लगा कि जो संकीर्तन में इस प्रकार के हुल्लड बाजी करने का प्रमुख था, वह हैजे से मर गया है। एक आदमी खूनी-दस्त होने के कारण अधमरा होकर पड़ा है। दो लोगों को जबरदस्त बुखार हुआ है। मुझे भी बुखार हुआ था थोडा ठीक होने के बाद आपसे सब कहने आया हूँ । मैंने कहा- खबरदार, ऐसे काम भविष्य में बिल्कुल नहीं करना । भगवान के नाम को लेकर हँसी-मजाक करना बहुत बड़ा अपराध है। इसकी सजा अवश्य भोगनी पड़ती है।

हरिमोहन जी आश्रम की शोभा देखकर अति आनंदित हुए - बाहर मनोरम दृश्य एवं एकान्त वातावरण देखकर उन्होंने एक वृक्ष के नीचे आसन लगाया । उस स्थान में एक विषधर सर्प भी निवास करता था। हरिमोहन उससे एक दम भयभीत नहीं थे । दिवारात्रि उस वृक्ष तले साधन में मग्न रहते थे । धूप, बरसात, किसी की कुछ भी परवाह नहीं करते थे। भोजन की भी कोई चेष्टा नहीं थी । घर से उनके लिए भोजन जाता था । कभी-कभी वे उपवासी भी रह जाते थे । एक बार दो तीन दिन उपवासी रहकर मेरे घर में आये । उनके अनाहार की बात सुनकर मन में दुःख हुआ । मेरी धर्मपत्नी को मॉ - मॉ कहकर पुकारते थे । वे उन्हें संतान की तरह भोजन खिला देती थी । उस समय की हरिमोहन जी की अवस्था जिन्होंने देखी थी, वे उसे भूल नहीं सकते। हरिमोहन कुछ दिन बोलपुर रहकर वृन्दावन धाम चले गये ।

यद्यपि गुरु शक्ति के प्रभाव से मेरे भाव में परिवर्तन हो रहा था, तथापि मैं उपासना के दिन (बुधवार) को नियमित रूप से शान्ति निकेतन में जाता था । एक दिन पंडित श्यामाकान्तजी को साथ ले गया । सभी लोग कुछ खाने के लिए कहने लगे । पंडित जी की अनिच्छा थी, पर लोगों के कहने पर उन्होंने दूध एवं फल ग्रहण किया । मैंने अन्न भोजन किया। दोनों घर आए एवं ज्वर से आक्रान्त हो गए। पंडित जी रजाई ओढ़कर पड़े रहे । उन्होंने कहा - ''उच्छिष्ट भोजन के कारण ही यह दशा हुई है।'' कुछ दिन ज्वर भोगकर हम लोग स्वस्थ हुए ।

परिवर्तन आरंभ

धीरे-धीरे मेरे विचार, विश्वास, मत में परिवर्तन होने लगा । वैसे मैं जन्मजात संस्कार के वश से मत्स्य, मांस, प्याज, लहसुन वगैरह तामसी वस्तुएँ नहीं खाता था, परन्तु जाति विचार या सदाचार, ब्राह्म समाज की शिक्षा के कारण, बिल्कुल न था । किसी के भी हाथ की बनी वस्तु खा लेता था, परन्तु अब वैसा करना मेरे लिए असंभव सा हो गया । शास्त्र, सदाचार, मानकर एवं भगवत् मूर्ति, चित्रपट देखकर आनन्द एवं तृप्ति होने लगी । साधू संतों के प्रति श्रद्धा होने लगी । पहले शौच क्रिया करके वस्त्र परिवर्तन नहीं करता था, अब वस्त्र न बदलने से घृणा होने लगी । सासांरिक बातों एवं चर्चा में अरुचि होने लगी । स्त्री, पुत्र, परिवार पहले अच्छा लगता था, अब मन में तृप्ति नहीं होती । झूठी वस्तु खा नहीं सकता था । भोजन आदि करने के बाद ठीक से हाथ वगैरह धोना अनिवार्य हो गया ।

मेरी प्रकृति संपूर्ण परिवर्तित होने लगी । चैतन्य चरितामृत ग्रंथ में लिखा है :

अन्तर्यामी ईश्वर की यह होती है रीत ।

बाहर से न कहकर, अन्दर में होता प्रकाशित ॥

गोस्वामीजी ने मुझे मेरे मत के विरूद्ध में कभी कुछ नहीं कहा, क्योंकि वे जानते थे कि मत विरूद्ध बातें सुनकर मैं श्रद्धाहीन हो जाउंगा इसलिए वे भीतर-भीतर तोड़कर मेरा पुन: निर्माण करने लगे। यह सब सद्गुरु नाम की शक्ति से हो रहा है - इसकी मुझे स्पष्ट प्रतीति होने लगी । पहले गोस्वामीजी के सामने अनाप-शनाप बोल देता था । अब सोच समझकर बोलने लगा - वे यह देखकर मन्द मन्द मुस्काते थे। मुझे लज्जा आती थी ।

पृथ्वी में जितने कठिन कार्य हैं, श्वाँस प्रश्वाँस में नाम करना सबसे कठिन है, यद्यपि गोस्वामीजी ने नाम के चलने का पथ (नाम में शक्ति संचार कर) थोड़ा सहज कर दिया था। फिर भी नाम करने के समय बड़ी असुविधा होती थी । ऐसा लगता था, जैसे कोई गला दबा रहा है, श्वाँस बंद होने लगता । आधा घन्टा प्राणायाम करने के बाद,

ज्यादा से ज्यादा ठीक से दो तीन मिनट नाम चलता। फिर बन्द हो जाता। किसकी ताकत है कि नाम चला सके । गुरुशक्ति प्रकाशित होने के बाद, यह शक्ति आकर नाम की सहायक हो गई । यह शक्ति नाम को परिचालित करने लगी । मुझे थोड़ी सुविधा हुई । नाम करने का कष्ट समाप्त हो गया ।

नाम व गुरु शक्ति बड़ी ही इज्ज़त की वस्तु है । यदि थोड़ा भी इनका अनादर किया गया, फिर रक्षा पाना मुश्किल होता है। **अहंकार, परचर्चा, परनिन्दा, फालतू बातें, वृथा क्रीड़ा (ताश, पाशा आदि) करने से शक्ति या नाम की खोज खबर पाना मुश्किल है ।** वे तत्क्षणात् परित्याग कर चले जायेंगे । अनुभव हुआ कि ये (श्री गुरुनाम) किसी के वश में नहीं हैं। **केवल समादर, एकान्त इच्छा एवं दीनता के वश में हैं । जो पौरूष के बल पर नाम करने की चेष्टा करेंगे; वे अवश्य ही अकृतकार्य** (असफल) होंगे । दीन हीन कंगाल होकर नाम के पदावनत रहकर यदि नाम कर सके, तभी नाम की कृपा होगी एवं नाम अपने आप चलने लगेगा। गुरु शक्ति भी नाम के साथ कार्य करने लगेगी । गुरु शक्ति नाम की सहायक न होने से, नाम करना कष्टदायक है । धीरे-धीरे मुझे नाम करने में आनन्द एवं उत्साह बढ़ने लगा।

श्यामाकान्त पंडित जी की परीक्षा

श्यामाकान्तजी कुटीर बनाने के बाद एकान्त में झरने के पास एकाकी वास करके भजन साधन करने लगे । वहाँ रात्रि को साहसी लोगों के लिए भी एकान्तवास कठिन था । सामने एक श्मशान भी था । आश्रम में विषधर सर्प भी थे । किंवदंती थी कि निकट के बेल के वृक्ष में एक ब्रह्मदैत्य भी वास करता है ।

छुटपन में पंडितजी की स्त्री का देहान्त हो जाने से, उन्होंने फिर विवाह नहीं किया था । झरना नजदीक रहने से स्त्रियाँ पानी भरने वहाँ कभी-कभी आती थी । एक बार एक स्त्री रात्रि के समय नाना अलंकार से विभूषित होकर कुछ खाद्य वस्तु लेकर पंडितजी की सेवा करने उपस्थित हुई एवं उन्हें मोहित करने की चेष्टा करने लगी । पंडितजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और कहने लगे-माँ, आप लोग कृपा न करें तो

किसकी शक्ति है कि एकान्त में भजन करे? आशीर्वाद दीजिए, जिससे एकान्त भाव से भजन कर सकूँ - यह कहकर वे कुटिया के बाहर आ गए। यह सुनकर वह स्त्री क्षुब्ध मन से चली गई। जाते समय भोजन वगैरह लेने का आग्रह करने लगी । उसकी मन तुष्टि के लिये वे वस्तुएँ ले ली जिन्हें बाद में उन्होंने नष्ट कर दिया ।

उस समय एक और परीक्षा पंडितजी के सामने उपस्थित हुई । पंडित जी को सब कोई साधू एवं महापुरूष कहने लगे एवं कई लोग रोग के लिए दवाई या अर्थ प्राप्ति के लिए आने लगे । पंडितजी की जिस प्रकार से वहाँ ख्याति थी, यदि वे शिष्य बनाना या दवाई वितरण करना प्रारंभ कर देते, तो उनके ऐश्वर्य की सीमा न रहती, परन्तु वे जानते थे कि यह सब भक्ति प्राप्त करने के विघ्न हैं, इसलिए इनका उन्होंने विषवत् त्याग कर दिया था । अपने साधन भजन एवं भगवत् चर्चा, संकीर्तन वगैरह करके अपना जीवन अति सादगी पूर्वक वे व्यतीत करते थे ।

कलकत्ते सीताराम घोष स्ट्रीट में गुरुदर्शन के लिए गमन

कार्तिक के महीने में पंडित श्यामाकान्त जी को साथ लेकर मैं सीताराम घोष स्ट्रीट में 14/21 घर में गोस्वामीजी के दर्शन के लिए गया। कुछ कमल के फूल, धान की बालियाॅ एवं कुछ दूर्वादल लेकर उनके चरणों में रखकर प्रणाम किया । गोस्वामीजी के संग से उनके गत जीवन की अति अद्भुत घटनाओं की जानकारी मिली । गोस्वामीजी के जीवनी लेखकगण विस्तार से अपनी पुस्तकों में विवरण लिख कर गये हैं। कुछ घटनायें, जिन्हें **उनके मुख से मैंने श्रवण किया था** एवं मैं उन घटनाओं से प्रभावित हुआ था - यथासाध्य लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ।

(1) गोस्वामीजी अपनी शैशव अवस्था (छुटपन) में किसी विवाह उपलक्ष में वर पक्ष की ओर से गये थे । उनके शरीर में कीमती आभूषण थे । रात को विवाह कार्य पूर्ण होने के बाद सब सो गये । रात को डकैतों का एक बड़ा दल आकर काफी गहने, सोना, वगैरह चुरा ले गया । उनकी मनोकामना पूर्ण होने से निकट के जंगल में वे माॅ काली के सामने बलि देने के लिए गोस्वामीजी को भी निद्रावस्था में उठा ले गए ।

उस ग्राम में एक पागल निवास करता था। उसने उसे देख लिया । जब गोस्वामीजी को देवी के सामने रखकर खड्ग से बलिदान करने लगे, तब वह दौड़ता हुआ आया और खड्ग छीन लिया एवं काली माॅ के समान खड्ग लेकर जिह्वा बाहर निकाल लिया । उसे देखकर डकैत सब डर के मारे भाग गये । सबेरे लोग गोस्वामीजी को खोजने निकले तो वहाॅ माॅ काली के समक्ष सब आभूषण एवं पागल के साथ गोस्वामीजी को पाकर हर्षित हुए। पागल मौन था । उसने इशारे से सब घटना समझायी ।

(2) एक बार विंध्याचल भ्रमण काल में पथ भूलकर गोस्वामीजी एक जंगल में भटक गए थे। सारे दिन अनाहार रहने के बाद शाम को एक साधू के दर्शन हुए, जो एक गुफा में रहते थे । सन्त ने फल व जल देकर उन्हें तृप्त किया । वहाँ एक डकैत की मण्डली भी रहती थी जिसने गोस्वामीजी को देखकर उन्हे कोई गवर्नमेन्ट का गुप्तचर समझ कर मार डालने का संकल्प किया । रात्रि के समय गोस्वामीजी उस गुफा में ही रहे । साधु अकेले रहते थे, तब दस्युगण उन्हे कुछ नहीं कहते ।

रात्रि के समय, मेघ गर्जन होने लगा। थोड़ी-थोड़ी बरसात होने लगी। उस समय बन्दूक की आवाज होने लगी । एक शेर गुफा के बाहर थोड़ी दूर में बैठा था, वह भी गर्जन करने लगा । डकैतों ने आक्रमण करने की अनेक कोशिश की परन्तु वे सफल न हुए । तब उन्होंने एक और रास्ते से वहाँ आने की कोशिश की किन्तु उन्हें वहाँ भी एक शेर बैठा मिला । शेर पर गोली चलने पर भी उसे कुछ नहीं हुआ । उधर प्रबल वर्षा एवं बिजली चमकने लगी एवं बादल गरजने लगे । गंभीर रात्रि के बाद प्रात: आकाश साफ हो गया । तब सन्त ने कहा - यहाँ अब न रहिए - उन्होंने रास्ता दिखा दिया । तब वे विन्ध्या देवी के मंदिर के पास पहुँच गए, जहाँ आरती हो रही थी ।

सुबह करीब आठ बजे गोस्वामीजी मंदिर के बाहर बैठे थे। तब डकैतों के दल के लोगों ने वहाँ आकर गोस्वामीजी को प्रणाम किया एवं कहने लगे -

डकैत - ''महाराज, क्षमा कीजिये, हम लोगों ने बहुत अपराध किया है ।''

गोस्वामीजी - क्या हुआ ? मैं तो कुछ भी नहीं जानता ।

डकैत - हम लोग कल रात को आपकी हत्या करने के लिए गुफा में गए थे । वज्राघात से (बिजली गिरने से) हम लोगों के चार आदमी मारे गए हैं, दो की हालत गंभीर है, हमें क्षमा कीजियेगा ।

गोस्वामीजी ने डकैतों को समझाकर विदा किया एवं भविष्य में डकैती करने से मना किया । वे लोग भक्तिभाव से प्रणाम करके चले गए।

(3) एक दिन गोस्वामीजी कलकत्ते के विडन स्ट्रीट से जा रहे थे। सामने उन्होंने एक चर्मकार को रास्ते के बाजू में जूता सिलाई करते हुए देखा । रास्ते में अनेक लोग जा रहे थे । एक आदमी का फटा जूता देखकर उसने कहा -

चर्मकार - महोदय, आप अपना जूता दीजिए, मैं सिल कर देता हूँ।

व्यक्ति - मेरे पास पैसे नहीं है ।

चर्मकार - पैसे देने की जरूरत नहीं है, मैं सिलकर दे दूंगा ।

उस चर्मकार ने जूता सिलकर वापस दे दिया । गोस्वामीजी को अजीब सा लगा। वे छिपकर सब देखने लगे। जो जितने पैसे सिलाई के दे देता, उसे वे ले लेते। किसी को कुछ भी नहीं बोलते थे । शाम के बाद संध्या समय एक जगह में सब सामान रखकर, वह चर्मकार गंगा स्नान करके तिलक लगाकर, साधु वेश में एक बड़े घर के अन्दर चला गया । उसी समय उस घर में एक बड़े तांगे में बैठकर एक व्यक्ति ने प्रवेश किया । वह घी, मैदा वगैरह साथ में लाया था । पूड़ी, सब्जी, मोहनभोग वगैरह बनाकर ठाकुरजी का भोग लगाया गया। आरती वगैरह हुआ - प्रसाद पाने का समय हुआ। गोस्वामीजी चुपचाप यह सब देख रहे थे । उस साधू ने गोस्वामीजी से कहा-

साधू - आईये, प्रसाद पाईये ।

गोस्वामीजी - आप तो अभी जूता सिल रहे थे। अभी साधू के वेश में यहाँ कैसे हैं ?

साधु - हम साधू नहीं हैं, चमार हैं ।

गोस्वामीजी ने आश्चर्यचकित होकर कहा कि आपकी बात मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। ठीक-ठीक विस्तार से सब कहिए, तब साधू ने कहा कि मैं एक बार अपने गुरु जी के पास कोई गल्ती कर बैठा, तब गुरुजी ने मुझे त्याग दिया । मैं खूब रोने लगा। तब गुरु जी ने कहा-बारह साल लोगों के पावों की जूतियाँ सिलाईं करो । आठ वर्ष हो गए, चार वर्ष और बाकी है । तब से मैं नित्य जूता सिलाई कर रहा हूँ ।

गोस्वामीजी साधू के मुख से उसकी गुरु निष्ठा एवं प्रेम देखकर गद्गद् हो उठे । पहले साधू सन्तों के प्रति उतनी श्रद्धा उन्हें न थी। इस घटना के बाद उन्होंने समझा कि **किसी के बाहर की वेशभूषा देखकर सचाई समझ में आना कठिन है। कितने अच्छे साधू, महात्मा साधारण वेश में विचरण करते हैं** । गोस्वामीजी वहाँ प्रसाद पाकर अपने घर लौट गए ।

(4) गोस्वामीजी एक बार दार्जिलिंग गये थे । वहाँ पत्थर के ऊपर एक नागा साधू को देखा, जो कि एकान्त में बैठे थे । गोस्वामीजी ने देखा कि उनका शरीर जैसे काँच से निर्मित है और भीतर एक रोशनी जल रही है, जैसे किसी लालटेन के अन्दर बत्ती जल रही हो । गोस्वामीजी को तब दीक्षा नहीं मिली थी। उन्होंने उनसे दीक्षा की प्रार्थना की । उन्होंने कहा मैं तुम्हे कुछ प्राणायाम सिखा देता हूँ, उसे करते रहना - मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ, दो साल के अंदर तुम्हें सद्गुरु की प्राप्ति हो जायेगी ।

(5) गोस्वामीजी ने गया पर्वत में तान्त्रिक चक्र की कहानी कही थी। करीब 12-13 व्यक्ति एक साथ एक तांत्रिक चक्र में थे । तान्त्रिकों के गुरु ने मुझे भी साथ में ले लिया । उस समय एक महिला मंत्रपूत जल के छींटे देने से बेहोश सी हो गई - वह संपूर्ण निर्वस्त्र थी । तान्त्रिक गुरु ने हमें भी निर्वस्त्र होने को कहा । गोस्वामीजी को लगा जैसे वे पाँच साल के शिशु के समान हो गये हैं। वे लुढ़कते हुए उस स्त्री के चरणों के पास चले गए । तान्त्रिक ने उस स्त्री की विधिवत् पुष्प वगैरह लेकर पूजा प्रारंभ की, दिव्य वातावरण हो गया । बाद में पूजा समाप्ति होने पर शान्ति-जल प्रदान किया गया। सब को चैतन्य हुआ । सबने वस्त्र पहन लिए । स्त्री वहाँ से चली गई ।

गोस्वामीजी ने कहा, स्त्री एवं मद्य लेकर ठीक-ठीक तान्त्रिक साधन करना बड़ा कठिन पथ है । भैरवी गुरु का कार्य करती है । मद्य वगैरह पान करने से जिसकी जो वृत्ति है, वह बढ़ जाती है । क्रोधी का क्रोध, लोभी का लोभ इत्यादि बढ़ जाता है । अपने छुपे रिपुओं को पहचान कर साधकों को उस तरह से परिचालित किया जाता है । इन सब पथों में ठीक से न चलने से पतन होने का डर रहता है। उपयुक्त गुरु की विशेष आवश्यकता रहती है । ईश्वर प्राप्ति के लिए तंत्रमत भी एक पथ है ।

(6) सद्गुरु दीक्षा पाने के पहले गोस्वामीजी ने अनेक संप्रदायों में रहकर भजन साधन किया था । एक बार वे बाऊल संप्रदाय में रहकर भजन किये थे । कुछ दिन भजन करने के बाद बाऊल ने उनको चारूचन्द्र (मल-मूत्र, खून वगैरह मिश्रित वस्तु) खाने को कहा, तब गोस्वामीजी ने कहा -

गोस्वामीजी - इसको खाने से क्या होगा ? इससे क्या भगवत् प्राप्ति होगी ? यदि हो तो मैं हंडी भरकर इसका पान कर सकता हूँ ।

बाऊल - नहीं, इससे भगवत् प्राप्ति तो नहीं होगी परन्तु शरीर स्वस्थ एवं दीर्घजीवन लाभ होगा ।

गोस्वामीजी - शरीर नश्वर है। एक न एक दिन इसका विनाश होगा, उसके लिए मैं इस प्रकार की घृणित वस्तु का आहार क्यों करूंगा ?

बाऊल - तुमको खाना ही होगा । तुम हमारे संप्रदाय में घुसकर अंदर के गुप्त रहस्य जान लिये हो, यदि नहीं खाओगे तो हम लोग तुम्हारी पिटाई करेंगे ।

गोस्वामीजी - तुम लोग जानते हो मैं कौन हूँ ? मैं शान्तिपुर के अद्वैतवंश का गोस्वामी हूँ, ज्यादती करने की कोशिश की तो यहाँ भी मेरे परिचित भक्त-शिष्य वर्ग हैं, तुम भी बच नहीं सकोगे ।

इन बातों को सुनकर वे लोग चुप रह गए । गोस्वामीजी वहाँ से चले गए ।

(7) एक बार गोस्वामीजी चट्टग्राम एवं श्रीहट्ट (बंगला देश) के पथ में पहाड़ के ऊपर से जा रहे थे । अचानक पहाड़ में आग लग गयी ।

वन्य जन्तुगण इधर-उधर भागने लगे । गोस्वामीजी के बचने का कोई उपाय नहीं था । वे एक जगह बैठकर भगवत् स्मरण करने लगे । अचानक एक महापुरूष आकर उन्हे पकड़कर पहाड़ से नीचे कूद गए एवं नीचे रखकर अद्दश्य हो गये ।

(8) एक बार ब्राह्म धर्म प्रचारक के रूप में गोस्वामीजी ब्रह्मपुत्र नदी तैर कर एक जगह पहुंचे - रास्ता भूल जाने के कारण जंगल में भटक गए। नजदीक कोई ग्राम भी नहीं था। भूख-प्यास भी लग रही थी। अचानक उन्होंने देखा कि एक हिरन अपने प्राण बचाने के लिए सामने से दौड़ कर जा रहा है और पीछे-पीछे एक शेर दौड़ रहा है । वहाँ से किसी प्रकार से बचकर निकले तो सामने उन्हें एक जंगली भैंसा दिखा जो उनको देखकर निकट आने लगा । गोस्वामीजी किधर भागें ? कुछ समझ न सके । अचानक वहाँ तीव्र गति से हवा चलने के कारण सामने के सरकंडे के पौधे एक तरफ झुक गए । वहाँ उन्हे एक गड्ढा दिखाई दिया । कुंभकार लोग वहाँ की मिट्टी ले जाते थे, इसलिए वहाँ गड्ढा था । गोस्वामीजी हाथ की छतरी वहीं फेंक कर दौड़कर गड्ढे में घुस गए । तत्क्षण हवा रूकने के कारण सरकंडे के पौधे फिर सीधे खड़े हो गए । जंगली भैंसा गोस्वामीजी को न देखकर गुस्से से मिट्टी में मुँह रगड़ने लगा। छाता भी तोड़ दिया फिर बाद में वहाँ मलमूत्र त्यागकर चला गया ।

भैंसे के जाने के बाद, गोस्वामीजी वहाँ से निकलकर पैदल बहुत दूर जाने के बाद रात्रि आठ बजे करीब एक बगीचे के पास पहुंचे । वह स्थान रहने के लायक नहीं था। वहाँ कुछ गौ रक्षकगण ऊँची मचान बना कर रहते थे । उन्होंने कहा कि यहाँ रात्रि को शेर आदि जानवर आते हैं। वे उनको साथ लेकर बहुत दूर गाँव में बत्ती जलाकर साथ में लेकर पहुंचा कर आये ।

भगवान, जिनके द्वारा महत् कार्य सम्पन्न करते हैं, उनकी किस तरह से रक्षा करते हैं, यह गोस्वामीजी के जीवन चरित्र से जाना जा सकता है। उनका जीवन इस बात का उज्ज्वल प्रमाण है ।

(9) एक बार शान्तिपुर में उनके गृह देवता श्यामसुन्दर के विग्रह के लिए उनकी चाची ने एक सुंदर मुकुट बनवा दिया । मुकुट

गोस्वामीजी के द्वारा ढाका के एक अच्छे कारीगर से बनवाया गया था । मुकुट जब श्यामसुन्दर को पहना दिया गया तब उन्होंने गोस्वामीजी को दर्शन देकर कहा -

श्यामसुन्दर - आकर मन्दिर में देख मैं कैसा सुन्दर दिख रहा हूँ?

गोस्वामीजी - मैं ब्राह्म हूँ, मैं कोई देवता वगैरह पर विश्वास नहीं करता (गोस्वामीजी तब ब्राह्म समाज के प्रचारक थे)

श्यामसुन्दर - भले ही तू मुझे विश्वास मत कर, एक बार देखने मंदिर मे तो आ, और ब्राह्म तो तुझे मैंने ही बनाया है ।

गोस्वामीजी ने अंत में विग्रह श्रीश्यामसुन्दरजी के दर्शन किए, तब उनकी शोभा देखकर दंग रह गए । ब्रह्मज्योति विग्रह से निकल रही थी। उन्होंने कहा - तुमने मुझे इतना घुमाया क्यों ? मुझे ब्राह्म क्यों बनाया ? मुझमें संशय, अविश्वास क्यों पैदा करवाया ?

श्यामसुन्दर - सोने के गहने को तोड़कर फिर से बनाने से उसमें और अधिक निखार आता है।

वास्तव में, अध्यात्म राज्य अति गुह्य है। हम लोग मोह-माया में हैं। माया के जाल को भेद करके हम लोगों की दृष्टि अंदर जा नहीं पाती। भगवान भक्त को लेकर कितना आनन्द लीला करते हैं ? यह साधारण मनुष्य के समझ के बाहर की वस्तु है । **साधारण मनुष्य को यह सब कपोल कल्पित सी लगती है । जन्मान्ध क्या सूर्य को देख या समझ सकता है ?**

गोस्वामीजी ने अपनी दीक्षा के संबंध में यह घटना कही थी। एक दीर्घ स्वप्न में उन्हें एक मन्दिर में महावीर की मूर्ति के दर्शन हुए थे । उन्होंने देखा कि वे हाथ से इशारा करके उन्हें बुला रहे हैं । इस दर्शन के कुछ दिन बाद जब, एक मित्र के साथ वे गया धाम गए तो उन्हें स्वप्न-दृष्ट स्थान एवं महावीरजी की मूर्ति के दर्शन हुए । एक दिन, श्री गोस्वामीजी उस आकाश गंगा पहाड़ में रघुवरदास बाबाजी के आश्रम में महावीर की मूर्ति के पास बैठे थे, अचानक एक चरवाहे ने आकर संवाद दिया कि ऊपर पहाड़ में एक बड़े महात्मा आये हुए हैं । साधु सेवा के लिए कुछ सामग्री लेकर उनके दर्शन के लिए गोस्वामीजी जी गए । तब महात्माजी ने उनसे पूछा -

महात्माजी - तुम कौन हो ? क्या काम करते हो ?

गोस्वामीजी - मैं ब्राह्मसमाज का प्रचारक हूँ ।

महात्माजी - ब्राह्मधर्म के संबंध में हम जानते हैं । कलकत्ते में ब्राह्मसमाज है। राजाराममोहन राय एक अच्छे व्यक्ति थे। पहले उन्होंने ही समाज की स्थापना की । देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं केशव सेन को भी हम जानते हैं। इतना कह कर उन्होंने ब्राह्मसमाज के संबंध में कई बातें विस्तार से बोली जिससे गोस्वामीजी को उनके ऊपर विश्वास हो गया। वह सब सुनते-सुनते गोस्वामीजी का शरीर अवश हो गया। उनके हिलने की शक्ति भी खत्म हो गई । तब उन महात्मा ने उन्हें अपनी गोदी में लेकर गुरु-मंत्र दीक्षा दी। दीक्षा के बाद थोड़ा स्वस्थ होकर महात्माजी (मानस्सरोवर के स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंसजी) को प्रणाम करके बेहोश हो गए। करीब ३ घन्टे बाद जब चेतना आई, तब उन्होंने देखा कि वे अकेले पहाड़ में पड़े हैं। उस स्थान में कोई नहीं है । उन्होंने अपने गुरुजी को बहुत खोजा, पर वे मिले नहीं । बाद में रघुवरदास बाबाजी के आश्रम में लौट आए ।

1883 के अगस्त के महीने में अलौकिक रूप से उनकी दीक्षा सम्पन्न हुई । इस घटना के कुछ दिन बाद दरभंगा में, एक सन्त को देखकर, उन्हें ऐसा लगा कि जैसे इनको कहीं पहले देखा है । बाद में पता चला कि इनके पास ही उन्होंने मंत्र प्राप्त किया था ।

गोस्वामीजी - क्या आपने ही मुझे दीक्षा दी थी ?

महात्माजी - हाँ ।

गोस्वामीजी - दीक्षा प्राप्ति के बाद अनेक अवस्थाएँ प्राप्त हो रही हैं, ये सच हैं या झूठ ?

महात्माजी - पहले से बोलने से तुम्हें विश्वास नहीं होगा। तुम 'विचार सागर' एवं हठयोग प्रदीपिका ग्रन्थ पढ़कर देखो ।

गोस्वामीजी - ये ग्रन्थ कहाँ मिलेंगे ?

महात्माजी - बाजार में मिलेगा । पाँच रूपये मूल्य लगेगा ।

गोस्वामीजी ने ये दोनों पुस्तकें खरीद कर पढ़ी । पुस्तकों में लिखित सब अवस्थाएँ व अनुभूतियाँ उन्हें प्राप्त हो गई थी। इसके बाद

ही उन्हे शास्त्र ग्रन्थों में विश्वास होने लगा, पुन: प्रकृत हिन्दूधर्म की ओर झुकाव हो गया। यद्यपि गुरु आज्ञानुसार उन्हें कुछ समय ब्राह्म समाज में रहना पड़ा था परन्तु उनका ब्राह्म जीवन तभी से समाप्त होने लगा।

हेमेन्द्र बाबू और उनकी स्त्री सुशीला कलकत्ते में ही रहते थे परन्तु मेरी उनके घर में जाने की इच्छा नहीं होती थी । सुशीला के अंदर परलोकवासी आत्माओं का आविर्भाव भी बंद हो गया था । मुझे सद्गुरु दीक्षा मिल गई। मेरे जीवन का कल्याण हो गया। यह बात तो परलोक वासी आत्मा ने ठीक ही कही थी परन्तु योगाभ्यास के संबंध में जो कहा था, सोचने लगा, उसका क्या हुआ ? धीरे-धीरे योग के प्रत्येक अंग मेरे अंदर प्रकाशित होने लगे तब मुझे परलोकवासी आत्मा की बातों की सत्यता का प्रमाण मिला ।

शान्तिपुर में श्याम सुन्दर एवं नवद्वीप में महाप्रभु दर्शन

धीरे-धीरे नाम साधन में रुचि आने लगी। गुरु शक्ति के प्रभाव से उपासना में मधुरता आने लगी । मुझे यह मन में होने लगा कि जितने मेरे परिचित हैं, वे भी इस आनन्द को प्राप्त करें । यह सोचकर मैं अपने संबंधी कालीकृष्ण सरकार, रामकृष्ण सरकार एवं कन्या सरोजनी को दीक्षा दिलवाने की इच्छा से 1894 के जनवरी महीने में सपरिवार गोस्वामीजी के पास गया । वे हम लोगों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए एवं मेरी शारीरिक कुशलता पूछी ।

मैं - अभी मेरा शरीर ठीक ही है परन्तु जब भी मैं शान्ति निकेतन में उपासना के लिए जाता हूँ, मुझे बुखार आ जाता है । वहाँ की जलवायु कितनी अच्छी है ? एकान्त वातावरण है, फिर भी मैं अस्वस्थ हो जाता हूँ ।

गोस्वामीजी - वहाँ जाकर कुछ खाते हो क्या ?

मैं - सबेरे सबके साथ प्याली, टेबिल पर रखकर कुर्सी पर बैठकर चाय पीता हूँ ।

गोस्वामीजी - तुम लोगों को उच्छिष्ट (झूठा) खाना निषेध है। एक साथ टेबिल में चाय पीते हो ?

मैं - चाय की प्याली परस्पर स्पर्श नहीं होती। झूठी चाय भी किसी की नहीं पीता । झूठी कोई खाने की चीज भी नहीं खाता ।

गोस्वामीजी - झूठे टेबिल में प्याली से चाय पीने से भी उसे उच्छिष्ट कहा जाता है। इसी कारण तुम्हें बुखार होता है ।

मैं - दुनियाँ भर के लोग तो ऐसे ही चाय पीते हैं। उन्हें कुछ भी तो नहीं होता ।

गोस्वामीजी - अब दीक्षा मिल गई है। भगवत् नाम से गुरुशक्ति के प्रभाव से प्रतिदिन तुम्हारे शरीर के **रक्त व परमाणु का शोधन** हो रहा है। अत: तुम्हारे विशुद्ध रक्त के साथ अपवित्र आहार जनित दूषित रक्त का मिश्रण होने से या तो आहार करने के साथ ही वमन हो जायेगा या पेट की पीड़ा उपस्थित होगी । यदि आहार वस्तु परिपाक होकर रक्त में परिणित हो गयी हो तो बुखार होगा । जब तक अपवित्र रक्त ज्वर द्वारा विशुद्ध न हो जाये, तब तक शरीर स्वस्थ नहीं होगा ।

मैं - गुरुभाइयों में भी तो कई लोग उच्छिष्ट विचार करके नहीं चलते। अभक्ष्य भोजन भी कभी कभी कर लेते हैं। उनको तो कोई अनिष्ट होते हुए मुझे नहीं दिखता ।

गोस्वामीजी - **गुरुशक्ति के प्रभाव से जिनके शरीर का रक्त विशुद्ध नहीं हुआ है, उनको विशेष कुछ नहीं होगा। परन्तु गुरुशक्ति धीरे-धीरे म्लान होने लगती है । मन प्राणों में शुष्कता आती है । मुझे भी पहले बहुत असुविधा झेलनी पड़ी है ।**

गोस्वामीजी की बात सुनकर मैने शान्तिनिकेतन में आहार करना एकदम बन्द कर दिया । खूब सावधानी से रहता था । पहले जैसे वहाँ जाने से ज्वर होना एकदम बन्द हो गया । धीरे-धीरे मैंने देखा कि वहाँ ब्रह्मोपासना में जाकर विशेष कोई लाभ नहीं होता है। उसकी अपेक्षा **एकान्त में इष्ट मंत्र जप करने से ज्यादा आनन्द एवं चित्तशुद्धि होने लगी।** यह सब देखकर मैंने शान्ति निकेतन में जाना भी प्राय: बन्द कर दिया ।

एक बार मैं सिऊड़ी में गया था। वहाँ के वकील श्रीचन्द्रगति मुस्तफी मुझे अत्यन्त स्नेह करते थे। वे बड़े धार्मिक प्रकृति के थे। उन्होंने अपने रसोईये एवं धर्मपत्नी को ठीक से समझा दिया था परन्तु

जब भोजन करने लगा, तब पता चला कि मैं निरामिष खाता हूँ इसलिए वे लोग आमिष सब्जी से सब्जी अलग कर मुझे दिये थे । उसी आमिष बनाने की कढाई में आलू, परवल वगैरह भूँज कर मुझे खाने को दिया था । भोजन थोड़ा करने के साथ ही साथ मुझे कँपकँपी के साथ बुखार आ गया । मैं जल्दी से मुँह हाथ धोकर सो गया । दो रजाई मुझे ओढ़ा दिया गया फिर भी कंपकपी न गई । चन्द्रगति बाबू बड़े परेशान हो गये । मैंने कहा चिन्ता की कोई बात नहीं, ठीक हो जायेगा । करीब दोपहर एक बजे बुखार आया था, रात्रि ग्यारह बजे कंपकपी बंद हो गई । मैं वहाँ से बोलपुर लौट आया । रसोईये का आचार-आचरण देखकर मुझे लगा कि जरूर इसने उच्छिष्ट भोजन दिया होगा ।

बोलपुर में एक क्रिश्चियन मिशन है । उस साल प्रभु यीशु के जन्म दिवस में वहाँ जाने के लिए मन में खूब आकर्षण होने लगा । मैं चर्च में गया और वहाँ ईसा मसीह का फोटो देखने की इच्छा व्यक्त की। वहाँ के पादरी ने कहा कि हमारे यहाँ प्रतिमूर्ति रखने का नियम नहीं है । खैर, मेरे पास एक फोटो है, मैं तुम्हें दिखाता हूँ । यह कहकर उन्होंने एक फोटो लाकर मेरे हाथ में दिया। उस फोटो में ईसा मसीह को क्रास-विद्ध अवस्था में देखकर मैं अपने को संभाल न पाया और मैं रोने लगा। किसी प्रकार से भी रोना बंद न हुआ । पादरी साहब एवं वहाँ उपस्थित भक्तमंडली के मन भी द्रवीभूत हो गये। सब लोग सरस भाव से उपासना एवं गायन करने लगे । उपासना समाप्त होने के बाद वे लोग क्रिसमस केक एवं कुछ फल मुझे खिलाने के लिए अत्यन्त आग्रह करने लगे । मैं मना करने लगा परन्तु उन लोगों का एकान्त आग्रह देखकर मैंने थोड़ा सा फल खाकर उन लोगों की इच्छा की मर्यादा रखी । घर आने के बाद मुझे अत्यन्त उल्टी (कै) होने लगी । ऐसा लगने लगा, जैसे अभी प्राण ही निकल जायेंगे । पंडितजी के पूछने पर मैंने कहा कि चर्च में मैंने थोड़े फल खाये थे । श्यामाकान्त पंडित जी ने कहा, इसी कारण तुम्हें उल्टी हुई । उन्होंने मुझे चरणामृत एवं महाप्रसाद खिलाकर स्वस्थ किया। यह सब देखकर मैंने बाहर लोगों के घर निमंत्रण वगैरह में जाना भी बन्द कर दिया । साधारण बुखार एक अलग तरह का होता है और झूठा (उच्छिष्ट) भोजन करके जो बुखार होता है, वह अलग प्रकार का

होता है। इसमें कष्ट भिन्न प्रकार का होता है, यह समझाना मुश्किल है । संबंधी लोग इस बात को समझ नहीं पाते थे । वे लोग मुझे साम्प्रदायिक कट्टरवादी मानने लगे । **मैंने जो यह सब लिखा, शायद साधरण व्यक्ति भी इसे विश्वास नहीं कर पायेंगे। केवल सत्य के अनुसरण के लिए लिख रहा हूँ ।**

मेरी जन्मभूमि 'कुलीन ग्राम' है । चैतन्य महाप्रभु कुलीन ग्राम में गये थे, ऐसा किसी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं है परन्तु चैतन्यचरितामृत में इस प्रकार वर्णन किया गया है -

कुलीनग्राम वासी सत्यराज, रामानन्द ।
यदुनाथ, पुरुषोत्तम, शंकर, विद्यानंद ॥
वानीनाथ वसु आदि जितने ग्राम के जन ।
सब कोई चैतन्य प्रिय, चैतन्य प्राणधन ॥
प्रभु बोले, कुलीन ग्राम का जो कुत्ता है ।
भक्तों के साथ-साथ वह भी मेरा प्रिय है ॥

कुलीन ग्राम वासी का भाग्य कहा नहीं जा सकता ।

चण्डाल भी शूकर चराते समय कृष्ण नाम गाता ।

चरितामृत पाठ कर मुझे सन्देह हुआ। जो व्यक्ति कुलीन ग्राम गया ही नहीं, वह कुलीन ग्राम के संबंध में ऐसे उच्च विचार कैसे व्यक्त कर सकता है ? मैंने गोस्वामीजी से पूछा -

मैं - क्या चैतन्य महाप्रभु कुलीन ग्राम गये थे ।

गोस्वामीजी - हाँ, गये थे ।

मैं - कब गये थे ?

गोस्वामीजी - सन्यास ग्रहण करने के बाद राढ़ (बंगाल) देश भ्रमण के समय।

मैं - किसी ग्रंथ में तो उसका उल्लेख नहीं मिलता ।

गोस्वामीजी - सब बातें किताबों में नहीं रहती ।

इस संबंध में और कुछ अधिक पूछना उचित नहीं समझा । गुरु ने कह दिया, मैंने सुन लिया । विश्वास - अविश्वास कुछ भी नहीं हुआ ।

यद्यपि मेरे जीवन में अनेक परिवर्तन घटते जा रहे थे, तथापि अभी भी मैं मूर्त्तिपूजा का विरोधी था । विग्रहों को लकड़ी-पत्थर के अलावा कुछ नहीं मानता था। गोस्वामीजी के कुल देवता श्यामसुन्दर की अंगहानि हो जाने से पूजा बंद थी । उस समय गोस्वामीजी ने अपने सम्बन्धियों के आग्रह से एक श्यामसुन्दर की नई मूर्ति बनवाकर शान्तिपुर में भिजवा दी थी। एक पत्थर, मूर्त्तिकार द्वारा खुदाई करने से भगवान बन जाता है, यह कुछ मन में ठीक नहीं जँचता था । गोस्वामीजी पौत्तोलिकता (मूर्त्तिपूजा) को समर्थन दे रहे हैं, यह सोचकर उनसे प्रश्न किया -

मैं - सुना है, आप श्यामसुन्दर की नई मूर्त्ति बनवाकर प्रतिष्ठा करा रहे हैं ?

गोस्वामीजी - मूर्त्तिकार जब श्यामसुन्दर की मूर्ति बनाकर लाये, तब श्यामसुंदर हँस उठे। अब क्या प्रतिष्ठा करें ? मैंने कहा, श्यामसुन्दर को सिंहासन पर बिठा दो ।

मैं - आधा घन्टा पहले मूर्त्तिकार के लिए वह पत्थर था, अब भगवान कैसे हो गया ? क्या यह संभव है ?

गोस्वामीजी - भगवान सर्वत्र, सर्वकाल में, सर्वभूत में विराजमान हैं। एक जगह में दीर्घकाल तक भक्तिपूर्वक पूजा वगैरह करने से वे भक्तिबल से प्रकाशित होते हैं।

मैं - भगवान सर्वभूत में विराजमान हैं। यदि कोई एक वृक्ष को भगवान मानकर भक्ति करे, तो क्या उससे भगवत् प्राप्ति हो जायेगी ?

गोस्वामीजी - हाँ, भगवान पहले वृक्ष रूप में प्रकाशित होंगे, फिर वे अपने असली स्वरूप का दर्शन करायेंगे ।

इस सब वार्तालाप के बाद गोस्वामीजी ने कहा - **हरिदास, एक जगह में मन प्राण को एकाग्र करने से सब हो जाता है । आन्तरिकता की जरूरत है ।** बाद में उन्होंने एक कहानी सुनाई।

कलकत्ते के तालतला में एक मुसलमान युवक वास करता था। उसके घर के सामने एक ईसाई का घर था। उसकी एक कन्या थी। उन दोनों में प्रेम हो गया। दरबान के द्वारा उसके पिता ने उसको अनेकों

बार प्रहार किया परन्तु जब भी मौका मिलता, वह उस कन्या की ओर एकटक देखता रहता। जब युवक ने समझा कि वह लड़की उसे प्राप्त होना संभव नहीं है, तब उसने एक फकीर से सब कहा। तब फकीर ने उसे कहा कि आहार निद्रा त्याग कर एकाग्रचित से उसका ध्यान करो- दूसरी चिन्ता मत करना। युवक ने कहा - यह कौन सी बड़ी बात है ? मैं तो उसके चिन्तन में ही रात-दिन बिताता हूँ ।

वह युवक एक पीपल वृक्ष के नीचे कम्बल ओढ़कर अनाहर में पड़ा रहा । चारों ओर यह घटना फैल गई । तीसरे दिन लड़की युवक की वह घटना सुनकर दु:खी हुई । उसने पिता से कहा - मैं उसी युवक से विवाह करूंगी क्योंकि वह मेरे लिए अनशन कर रहा है। पहले भी काफी दु:ख अपमान भोग चुका है । पिता ने समझाया कि युवक दरिद्र है। उसका मस्तिष्क विकृत है। जाति में भी मुसलमान है। ऐसी बात तुम क्यों कह रही हो ? परन्तु युवती ने कहा कि जो इस प्रकार मेरे लिए प्राण त्याग करने को तैयार है, मैं उससे ही विवाह करूंगी । अंत में पिता ने कहा कि जैसी तुम्हारी अभिरूचि हो, कर सकती हो ।

उसके बाद युवती ने वहाँ जाकर युवक से कहा कि अब अनशन त्याग करो। मैं तुमसे विवाह करूंगी ।

युवक - मुझे अब विवाह करने की आवश्यकता नहीं है । मेरी खुदा से शादी हो गई है । तुम्हारा मंगल हो। तुम घर चली जाओ। युवक उस फकीर के पास पुन: गया एवं अपने परिवर्तन की बात उनसे कही। फकीर उसे अपने साथ लेकर तपस्या करने चट्टग्राम पर्वत में चले गये। तब गोस्वामीजी ने पुन: कहा - **एक जगह में अनन्य भाव से आन्तरिकतापूर्ण मन प्राण अर्पण करने से ईश्वर की प्राप्ति सहज में हो जाती है।**

यथा समय मेरे साथ आये हुए लोगों की दीक्षा हो गई । शान्तिपुर जाकर श्यामसुन्दर के दर्शन की इच्छा होने लगी इसलिए गोस्वामीजी से अनुमति लेकर नानी माँ एवं पंडित जी को साथ लेकर शान्तिपुर रवाना हुआ । सियालदह स्टेशन से दार्जिलिंग मेल से रानाघाट उतर कर वहाँ से तांगे से शान्तिपुर पहुंच कर गोस्वामीजी के पैतृक घर में रात्रिवास किया ।

सबेरे उठकर गोस्वामीजी के वासगृह-दो मंजिल मकान में गया। मकान में जगह-जगह दरारें हो गई थी, पर उस पुराने कमरे में जाने के साथ ही मैंने वहाँ तीव्र शक्ति के प्रभाव* का अनुभव किया। मैंने श्यामाकान्त पंडितजी को बुलाया। उन्होंने भी इसका अनुभव किया । वहाँ कुछ देर भजन करने के बाद हम लोग नीचे आए ।

दोपहर में श्याम सुन्दर को मंदिर से भोग मंदिर ** में लाया गया। मंदिर से निकालते समय श्यामसुन्दर के थोड़े दर्शन करने मात्र से मुझमें गुरुशक्ति की क्रिया शुरु हो गई । मैं अपने को संभाल न सका। प्रबल अश्रुपात होने लगा। विविध अंग चेष्टाएं एवं प्राणायाम अपने आप होने लगा। वहाँ गोस्वामीजी के संबंधी लोग यह सब देखकर आश्चर्यचकित हो गये ।

हम लोग तीन दिन गोस्वामीजी के पैतृक गृह में रहे । रोज श्यामसुन्दरजी का दर्शन एवं प्रसाद पाते थे । शान्तिपुर में और भी जितने विग्रहों की ठाकुर सेवा है, सब जगह दर्शन करने गये । पंडित श्यामचरणजी जहाँ भी जाते थे, भावावेश में नृत्य करते रहते और बाद में गिरकर मूर्छित हो जाते । मैं उनके साथ-साथ सदा रहता था एवं उनके शरीर की सेवा शुश्रूषा करता। रास्ते में भी कभी-कभी गिरकर वे धूलि-धूसरित हो जाते।

एक दिन बावला जाकर श्री अद्वैतप्रभु के, जहाँ वे रहते थे, वहाँ दर्शन किये । वहाँ अद्वैतप्रभु की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। वहाँ एक वृद्ध वैष्णव सेवा करते हैं। पहले गंगाजी वहाँ थी। अभी वह शान्तिपूर से 2 मील दूर स्थित है । शान्तिपुर दर्शन कर, वहाँ से नवद्वीप गए । वहाँ धर्म का एक श्रोत सब समय बह रहा है । कहीं पूजा हो रही है, कहीं पाठ, कहीं आरती, कहीं संकीर्तन । कालान्तर में यहाँ भी व्यवसायिकता घुस गई है।

* जिस स्थान में शक्तिशाली महापुरुष गण तपस्या करते हैं , वहाँ पर जिनकी कुंडलिनी शक्ति जाग्रत हो गई है, वैसे साधक जाने से वहाँ की शक्ति का अनुभव प्राप्त हो सकता है ।

** आज भी वही प्रथा है। वहाँ ठाकुरजी को उठाकर भोग मंदिर (रसोईघर) में लाया जाता है ।

रूपये बिना कई जगह विग्रह दर्शन करने नहीं देते । यह सब देखकर जिस उत्साह से नवद्वीप दर्शन करने गया था वह धीरे-धीरे म्लान होने लगा।

एक दिन शाम को गंगा दर्शन को जा रहे थे । बायें तरफ एक घर में पाठ चल रहा था । मैं और पंडितजी दोनों वहाँ श्रवण करने गये । वहाँ जाने पर पता चला कि वह एक वैष्णव का अखाड़ा है। मिट्टी का घर है । एक ऊँचे स्थान पर बैठकर एक वैष्णव हाथ के लिखे हुए किसी ग्रंथ का पाठ कर रहे थे । कुछ और श्रोता भी श्रवण कर रहे थे। हम लोग जाकर वहाँ एक मालती वृक्ष के नीचे बैठकर श्रवण करने लगे। उस समय पाठ चल रहा था उसका सार इस प्रकार था :-

उस समय राढ़ देश के प्रसिद्ध कुलीन ग्राम में महाप्रभु पहुँचे । महाप्रभु के आगमन की वार्ता सुनकर ग्राम के स्त्री, पुरुष, बालकगण सब उनके दर्शन के लिए दौड़ पड़े । उस समय स्त्रीगण जो तालाब से पानी भर रही थी, कलश को छोड़कर दौड़ पड़ी। जो गृहकार्य कर रही थी वे भी सब परित्याग कर उनके दर्शन के लिए तीव्र गति से दौड़ पड़ी । ....इत्यादि इत्यादि। जिस प्रकार श्रीकृष्ण की वंशीध्वनि सुनकर व्रजबालाएँ उनके दर्शन के लिए व्याकुल हुई थी उसी प्रकार महाप्रभु के दर्शन के लिए भी उन्मत्त होकर दौड़ने लगी, उस ग्रन्थ में इस प्रकार का वर्णन था । मैंने पाठक से प्रश्न किया-

मैं - उस ग्रन्थ का क्या नाम है ?

पाठक - श्री चैतन्य भागवत ।

मैं - मैंने तो ''श्री चैतन्य भागवत'' पाठ किया है। उसमें तो इस प्रकार का वर्णन नहीं है ।

पाठक - ''श्री चैतन्य भागवत'' ग्रन्थ के अनेक अंश लोप हो गये हैं। यह अति प्राचीन ग्रन्थ है।

छपे ग्रंथो में इसका उल्लेख नहीं है ।

पाठ सुनते-सुनते पंडितजी को भावावेश हो गया। विविध अंग चेष्टायें होने लगी । पाठक एवं सब श्रोतागण उन्हें एकटक देखने लगे । थोड़ा अपने को संभाल कर पंडितजी और मैं वहाँ से निकल पड़े । कोई

हम लोगों का परिचय न जानता था। कुछ व्यक्ति हम लोगों का परिचय जानने के लिए हमारे पीछे दौड़े। हम लोगों को रूकने के लिए कहा परन्तु हम लोग जल्दी-जल्दी वहाँ से चले गये । एक महिला तब जोर से बोली - मैं उन लोगों को पहचान गई। वे लोग विजय कृष्ण गोस्वामीजी के शिष्यगण हैं ।

वहाँ से कलकत्ते लौटने के बाद गोस्वामीजी ने पूछा ।

गोस्वामीजी - श्यामसुन्दर को देख कर कैसा लगा ?

मैं (लज्ञित होकर) - श्यामसुन्दर की कृपा की बात क्या बोलूँ ? इस पापी पर इतनी कृपा-मैं तो उनकी एक झलक पाकर ही अपने को संभाल न सका ।

गोस्वामीजी - तुम लोग श्याम सुन्दर को कीर्तन सुनाये थे ?

मैं - हाँ, कुछ देर तक, झाँझ बजाकर ।

गोस्वामीजी - नवद्वीप में महाप्रभु के दर्शन किए ? नवद्वीप परिक्रमा किए ?

मैं - हाँ, दर्शन तो किए। परिक्रमा की बात याद नहीं थी । गोस्वामीजी ने कहा था, चैतन्य महाप्रभु कुलीन ग्राम गये थे। किसी ग्रन्थ में यह वार्ता मुझे नहीं मिली थी। बाबाजी के अखाड़े में यह पाठ सुनकर पूर्ण विश्वास हुआ। मन में सोचा गोस्वामीजी जो कुछ बोलते हैं, वह अन्दाजी बात नहीं होती। वे त्रिकालज्ञ हैं, झूठी बात नहीं बोलते । विग्रह को पत्थर, लकड़ी समझता था, उसका भी प्रमाण उन्होंने दिया । **प्रभु कृपा से जिसके अन्दर अवतार तत्व, लीला तत्व प्रकाशित होता है, वही इसे समझ सकता है । 'विग्रह तत्व' तो और गहन है ।***

गोस्वामीजी के पास, सब समय देखता था कि 'अर्थ का संचय' उनके पास नहीं होता था। परिवार वर्ग में भी जो उनके साथ रहते थे,

* जो लोग यह समझते हैं कि 'विग्रह तत्व' निम्न अधिकारी के लिए है, वे तत्वत: इसे नहीं समझ पाये हैं । भगवान सर्वत्र वर्तमान हैं, इसलिए वे विग्रह में भी विराजमान हैं, इसे 'विग्रह तत्व' नहीं कहते । 'विग्रह तत्व' विकास प्राप्त होने से **यह विग्रह ही चिन्मय भगवान हैं, ऐसा बोध होता है ।** पुरी में गोस्वामीजी एक छोटी जगन्नाथ मूर्ति की पूजा करते थे, वे कहते थे 'जो विग्रह मेरे से बात नहीं करता, उसकी पूजा मैं नहीं करता'' ।

उनके पास से भी किसी भी प्रकार से रूपये निकलवाकर खर्च करा देते थे । कलकत्ते में दुकान से सामान्य चावल, दाल आदि लाया जाता था, रुपये आ जाने से उसकी भरपाई कर दी जाती थी । कोई हिसाब पत्र वगैरह नहीं रहता था। दुकानदार जितना बोलता था, उसे उतना दे दिया जाता था ।

सुकीया स्ट्रीट में जब गोस्वामीजी रहते थे, उस समय एक वामाचारी साधु रोज उनके पास आता था । उसकी उम्र ज्यादा नहीं थी। उसका गैरिक वसन, हाथ में नर कपाल, गले में रूद्राक्ष एवं हड्डियों की माला, शरीर में भस्म, नशे में आँखें लाल, कपाल में सिन्दूर का टीका एवं एक हाथ में त्रिशूल था ।

वह वामाचारी साधु हम लोगों के साधन पथ से संपूर्ण विभिन्न पथ का था । जब भी वे आते थे, गोस्वामीजी उनको पृथक आसन देकर एक रूपये का गाँजा दिलवाते थे । वह गाँजा पीकर बीच-बीच में ''माँ-माँ'' बोलकर भजन गाते थे । गाँजे के धुएँ से हम लोगों को वहाँ बैठना भारी पड़ता था । रात्रि को साढ़े सात बजे के बाद उसे अच्छी तरह से भोजन करवाकर विदा किया जाता था । रूपयों की तंगी के बावजूद गोस्वामीजी ने एक भी दिन उसका सम्मान करना न छोड़ा । वे सब संप्रदाय के संतों में समानभाव से श्रद्धाभक्ति करते थे । उनके निकट कोई साम्प्रदायिकता नहीं थी । उनके धैर्य की सीमा नहीं थी । किसी के धर्म विश्वास पर कटाक्ष करते हुए उन्हें मैंने कभी नहीं देखा ।

उसी समय कलकत्ता निवासी दानशील श्रद्धेय काली कृष्ण ठाकुर के किसी कर्मचारी ने आकर कहा कि श्री काली कृष्ण ठाकुर की इच्छा है कि आप (गोस्वामीजी) उनके घर में पदधूलि दें । गोस्वामीजी ने कहा- मैं आजकल आसन छोड़कर बाहर नहीं जाता - बाहर जाने से शरीर अस्वस्थ हो जाता है । उसके दूसरे-दिन कर्मचारी ने आकर कहा कि कालीकृष्ण बाबू आपसे मुलाकात करने आ सकते हैं या नहीं ? गोस्वामीजी ने कहा - मेरे यहाँ आने के लिए किसी का निषेध नहीं है। जिनकी जब इच्छा हो आ सकते हैं । कुछ दिन बाद मनोरंजन गुह ठाकुरता के साथ श्रद्धेय कालीकृष्ण ठाकुर ने एक सफेद धोती और एक चादर ओढ़कर गोस्वामीजी को आकर प्रणाम किया । गोस्वामीजी ने

उनको यथोचित सम्मान देकर बैठने के लिए एक स्वतंत्र आसन दिया । थोड़ी देर वार्तालाप के बाद कालीकृष्णजी चले गए एवं बाद में मनोरंजन बाबू के द्वारा गोस्वामीजी को मासिक रूपये खर्च के लिए प्रस्ताव दिया। गोस्वामीजी ने कहा - कालीकृष्ण बाबू सरल प्रकृति के व्यक्ति हैं, कई लोग साधु का वेश धारण कर उनको ठग लेते हैं । उनको कहिएगा - मेरा खर्च अभी भगवत् इच्छा से चल रहा है, यहाँ सहायता करने की कोई आवश्यकता नहीं है, अन्यत्र कहीं कर सकते हैं ।

एक बार गोस्वामीजी ने मीननाथ एवं गोरखनाथ की कहानी सुनाई थी । संक्षेप में उसका वर्णन करता हूँ । मीननाथ अपने प्रिय शिष्य गोरखनाथ को लेकर जा रहे थे । रास्ते में राजा का महल दिखाई दिया। मीननाथ की इच्छा हुई कि राजगृह में प्रवेश करें परन्तु गोरखनाथ ने कहा - हम लोगों को राजा से क्या मतलब ? हमें धनी, विषयी लोगों से दूर रहना चाहिए परन्तु मीननाथ न माने । वे अकेले राज दरबार में गए। जाते वक्त बोल गए कि हम सिद्ध हैं, हमारा पतन नहीं हो सकता ।

मीननाथ को देखकर राजा ने उनका सत्कार किया। वे वहाँ आनन्द से रहने लगे । बाद में राजा ने उन्हें अपनी कन्या एवं आधा राज्य दान देने का प्रस्ताव किया । मीननाथ ने सोचा, मेरा पुत्र होने से वह भी एक महान् व्यक्ति होगा। अतः उन्होंने विवाह कर लिया एवं कालान्तर में पुत्र एवं परिवार को लेकर माया में बद्ध हो गये ।

बहुत वर्षों बाद गोरखनाथ अपने गुरु का संवाद लेने राजगृह के बाहर पहुंचे। वे एक ढोलक लेकर बजाते हुए अपने वहाँ आने का संवाद देकर गाने लगे । वे राजगृह के अन्दर नहीं गये, मीननाथ ने जब उनकी आवाज सुनी तब वे उनको अंदर ले जाकर अपनी संपत्ति, पुत्र, परिवार वगैरह दिखाने लगे । गोरखनाथ समझ गए कि मीननाथ माया में फँस गये हैं। उन्होंने, उनके पुत्र को स्नानघाट में ले जाकर पटक कर मार डाला । यह संवाद सुनकर वहाँ के लोग एवं स्वयं मीननाथ भी उच्च स्वर में विलाप करने लगे। उनका रोना बंद नहीं हुआ । अंत में गोरखनाथ ने पुत्र को योगबल से जीवित कर मीननाथ को प्रदान किया। मीननाथ परम आनंदित हुए । तब गोरखनाथ ने कहा -

गोरखनाथ - गुरुजी, क्या आप सब कुछ भूल गये हैं ? अपनी पूर्व अवस्था का एक बार स्मरण कीजिए ।

मीननाथ - गोरखनाथ, मैंने तुम्हारी बात नहीं सुनी । मेरा सचमुच सर्वनाश हो गया है । मैं माया-मोह धन, ऐश्वर्य में एकदम डूब गया हूँ । मेरी समस्त साधन शक्ति नष्ट हो गई है । अब मेरा क्या उपाय होगा ?

गोरखनाथ - प्रभु, आप यहाँ बिल्कुल न रहें । आज रात्रि को ही राजपाट परित्याग कर प्रस्थान करो । मैं नगर के बाहर वृक्षतल में रहूंगा, आप वहाँ आकर मुझसे मिलें ।

यह कहकर गोरखनाथ चले गये । अर्द्धरात्रि में मीननाथ भी सिर में एक गठरी रखकर आ पहुँचे । उन्हें देखकर, गुरु को प्रणाम करके गोरखनाथ ने पूछा, आपके सिर के ऊपर क्या है ? मीननाथ ने कहा - कुछ हीरा, सोना जवाहरात वगैरह है, भविष्य में काम देगा ।

गोरखनाथ समझ गए कि गुरु एक दम संसार में मोहित हो गए हैं। राजप्रासाद तो छोड़ दिए परन्तु हीरा वगैरह न त्याग सके । उन्होंने गुरु से कहा - मेरे रहते आप क्या वजन को अपने सिर में उठायेंगे ? यह कहकर उन्होंने गठरी अपने सिर पर रखली एवं गुरु के पीछे-पीछे चलने लगे । धीरे-धीरे वे सब रत्न, हीरा वगैरह जंगल में फेंकते गए। बाद में सब खाली होने के बाद गठरी के कपड़े को भी फेंक दिया । सबेरा होने के बाद मीननाथ ने गठरी के संबंध में पूछा । गोरखनाथ ने कहा कि मैंने तो सब फेंक दिया है । यह सुनकर मीननाथ उच्चस्वर में रोने लगे । गोरखनाथ गुरु की दुरवस्था देखकर अत्यन्त दुःखी होकर बोले - आप को सब कुछ विस्मृत हो गया है। लीजिए आपको जितने हीरे-मोती चाहिए; ले लीजिए । यह कहकर गोरखनाथ मूत्र-त्याग करने लगे और उसमें से विभिन्न प्रकार की रत्नराशि उत्पन्न होने लगी । यह देखकर गुरुजी का मोह संपूर्ण रूप से दूर हो गया ।

वे अपने प्रिय शिष्य गोरखनाथ का गला पकड़कर रोते हुए बोले- गोरखनाथ, मेरा सर्वनाश हो गया। मैं अब क्या करूँ ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है । तब गोरखनाथ ने कहा कि अब भी सावधान हो जाइये, विषय के संस्पर्श में कभी भी मत जाइयेगा । इसके बाद शिष्य

गोरखनाथ ने शक्तिसंचार कर पुन: मंत्र उच्चारण किया। मीननाथ ने तीव्र भजन करके सिद्धावस्था की प्राप्ति की ।

यह कथा सुनाकर गोस्वामीजी ने कहा कि साधुओं के लिए विषयी व्यक्तियों का संग हलाहल विष के समान है ।

उनको निर्जन में ही रहना चाहिए । मेरा भी कलकत्ता जैसे शहर में रहना ठीक नहीं है परन्तु कुछ लोगों को दीक्षा देने के लिए गुरु आज्ञा से मुझे यहाँ रहना पड़ रहा है ।

गोस्वामीजी जिस कमरे में रहते थे, वहाँ खटमलों का बड़ा ही उपद्रव था । गोस्वामीजी के सिर की जटाओं में तो खटमलों का अड्डा था। परन्तु वे निरूद्वेग होकर अपने आसन में बैठे रहते । हम लोग खटमलों को नष्ट करने के लिए कमरे में कोई दवाई वगैरह का विधान करने को भक्तों को कहते । मैंने गोस्वामीजी से पूछा -

मैं - हम लोग खटमल के मारे परेशान हैं, आपके सिर में तो खटमल भरे पड़े हैं। वह आपको नहीं काटते ? वे तो आपका सब रक्तशोषण कर लेंगे ।

गोस्वामीजी - मुझे कोई असुविधा नहीं होती, वे मुझे नहीं काटते ।

मैं - खटमल, जूँ वगैरह आपको क्यों नहीं काटता ?

गोस्वामीजी - हिंसावृत्ति चले जाने से कोई जीव किसी की हिंसा नहीं करता । एक घटना सुनो। यह कहकर गोस्वामीजी ने कहा कि ढाका में एक साहब थे, वे शिकार करने के लिए गारा पहाड़ के निकट जंगल में हाथी पर चढ़कर गये । सामने एक बड़ा शेर देखकर उन्होंने गोली चलायी । शेर से डरकर हाथी बिचक कर दौड़ने लगा । साहब हाथी से फिसलकर नीचे गिरे। वे दौड़कर भागने लगे, सामने एक साधु की कुटिया थी। वहाँ उन्होंने आश्रय ग्रहण किया । साधू ने शेर को देखकर कहा-जाओ, यहाँ से चले जाओ। सुनकर शेर वहाँ से चला गया, तब साहब ने साधू से पूछा -

साहब - क्या यह शेर आपका पालतू है ?

साधु - नहीं, वह भी जंगल में रहता है, मैं भी जंगल में रहता हूँ ।

साहब - आप यहाँ रहते हैं, शेर यहाँ उपद्रव नहीं करता ?

साधू - **मन में हिंसा नहीं रहने से कोई जीव किसी की हिंसा नहीं कर सकता (पातंजल योगदर्शन)। इसलिए मैं निश्चिन्त होकर यहाँ रहता हूँ । आप क्या शेर का माँस खाते हैं ?**

साहब - नहीं, मैं शौक के लिए शिकार करता हूँ ।

साधू - फिर आप शिकार क्यों करते हैं ? वह शेर यहाँ छुपकर बैठा है। आपको अकेला देखकर फिर वार कर सकता है । यह कहकर साधू उसे साथ में लेकर जंगल के बाहर छोड़ आया एवं हिंसा न करने की सलाह दी । साहब ने ढाका आकर आमिष आहार तक परित्याग कर दिया, वे सत्भाव से रहने लगे । ब्राह्मण रसोइया रखकर सात्विक निरामिष आहार करने लगे । साधू के प्रभाव से उनका जीवन संपूर्ण रूप से बदल गया ।

गोस्वामीजी कहते थे कि जब कल्पना में भी हिंसा वृत्ति उदय न हो, तब समझना चाहिए कि हिंसा वृत्ति समाप्त हो गई है । बोलपुर लौटने के पहले गोस्वामीजी से कहा -

मैं - ब्राह्मसमाज में दीर्घकाल रहने से मेरा भीतर शुष्क हो चुका है। सहज विश्वास, श्रद्धा, भक्ति एकदम समाप्त हो गया है, बड़ी दयनीय अवस्था है ।

गोस्वामीजी - भीतर शुष्क हो गया है। इससे उपकार भी हुआ है । बौद्ध धर्म में ''संस्कार वर्जन'' नामक एक साधन पथ है, उसमें प्रथम दो वर्ष सर्व संस्कार को त्याग करके फिर भजन में प्रवृत्त होना पड़ता है । तुम्हारे अंदर ''संस्कार वर्जन'' का कार्य हो गया है । अब जो विश्वास जन्म लेगा वह सुदृढ़ होगा । पुरानी इमारत मरम्मत करने से उतनी मजबूत नहीं होती, किन्तु यदि नींव तक उखाड़ कर नए सिरे से गंथनी की जाये तो वह इमारत बहुत मजबूत होती है । सत्य को दस बार ठोक पीट कर बजा लेना । जो प्रत्यक्ष होगा, उसमें भी अचानक विश्वास की जरूरत नहीं है । यहाँ तक कि गुरु पर भी विश्वास या श्रद्धा न हो तो दिखावे के लिए प्रणाम करने की आवश्यकता नहीं है।

मैं - कोई यदि गुरुजन हों एवं दुराचारी हों, तो समाज में रहने से प्रणाम तो करना ही पड़ता है ।

गोस्वामीजी - मन में भक्ति लाने की चेष्टा करनी चाहिए, किसी का दोष मत देखो - गुण देखना ही अच्छा है ।

मैं - आपको मैं अधिक क्या बोलूँ ? मेरा समस्त भार, आपके ऊपर है ।

गोस्वामीजी - कुछ बोलने की जरूरत नहीं है।

उसके बाद मैं सपरिवार, पंडित जी को साथ लेकर बोलपुर लौट आया ।

पंडित श्यामाकान्त जी का बोलपुर त्याग एवं प्रत्यागमन

हमारे बोलपुर आने के कुछ दिन बाद गोस्वामीजी 1894 ई. के फाल्गुन के महीने में वृन्दावन धाम चले गए - पंडितजी भी उनके साथ गए । मैंने उनके साथ काफी दिन तक एक साथ भजन साधन किया था; अत: उनके चले जाने से मन में कष्ट होने लगा । कई भक्तगण भी बार-बार पूछने लगे कि पंडितजी क्या लौटकर नहीं आयेंगे ? ईश्वर ईच्छा से पंडितजी भादों के महीने में गोस्वामीजी के साथ लौटकर बोलपुर आ गए। सभी लोग हर्षित हुए ।

पंडितजी भिक्षा करके भोजन ग्रहण करते थे । जिस घर में भिक्षा लेने जाते थे, वे लोग अपने को कृतार्थ मानते थे । कई लोग पहले से ही भिक्षा का निमंत्रण करते थे । वे स्वयंपाकी थे । उनके संग लाभ से हम लोगों के कोर्ट के एकाउन्टेंट श्री हरिदास सिंह ने गोस्वामीजी से दीक्षा ग्रहण की । दीक्षा ग्रहण के पहले उनका चरित्र ठीक नहीं था । खान-पान, सदाचार कुछ भी ठीक न था परन्तु दीक्षा प्राप्ति के बाद वे सदा भावावेश में रहने लगे । ग्राम के लोग उनको भूतग्रस्त या वायु रोग ग्रस्त समझने लगे । ग्राम में एक परम वैष्णव श्रीबिहारीसिंह जी रहते थे, वे भक्ति शास्त्र के सुपंडित थे । उन्होंने लोगों को समझाया कि महापुरूष के पास दीक्षा ग्रहण करने से उन्हें यह अवस्था प्राप्त हुई है । उनकी बात सुनकर लोग आश्वस्त हुए ।

1895 ई. अक्टूबर में छुट्टी होने से, मैं परिवार के साथ अन्य कुछ लोगों को साथ में लेकर गोस्वामीजी से दीक्षा दिलवाने के लिए

सीतारामघोष स्ट्रीट कलकत्ते गया । उन लोगों में मेरे संबंधी की पत्नी सुशीलादासी, मेरे मध्यम भ्राता की विधवा पत्नी राजलक्ष्मी दासी एवं मेरे अधीनस्थ कर्मचारी श्री नाथ सरकार थे । गोस्वामीजी के पास खूब भीड़ थी । पुरुषों के रहने के घर का अभाव था । इसलिए नानी माँ (गोस्वामीजी की सास) ने नीचे एक घर में मेरी स्त्री एवं श्री नाथ सरकार के शयन की व्यवस्था करने की इच्छा से गोस्वामीजी से पूछा -

गोस्वामीजी - यह कैसी बात है ? स्त्री एवं पुरुषों को क्या एक घर में रहना चाहिए ?

नानी माँ - श्रीनाथ सरकार वृद्ध व्यक्ति हैं । अलग से घर के एक कोने में सो जायेंगे ।

गोस्वामीजी - भले ही वे वृद्ध हों । पुरुष एवं स्त्री को कभी भी एक घर मे एकान्त में नहीं रहना चाहिए । बारह वर्ष का पुत्र भी माँ के निकट शयन न करे । जिस घर में स्त्रियाँ अकेली हैं, उस घर में पुरुष को नहीं जाना चाहिए । स्त्रियाँ भी एकान्त में अन्य पुरुष के कमरे में न जायें ।

नानी माँ ने गोस्वामीजी की बात सुनकर उनके पृथक रहने की व्यवस्था कर दी । गोस्वामीजी हम लोगों से भगवत्चर्चा करने लगे । भागवत का यह श्लोक उन्होंने कहा :-

माता, स्वश्रा च दुहिता वा न विविक्तासनो वसेत् ।

बलवान इन्द्रिय ग्रामो विद्वानांसमपि कर्षति ।।

माता, बहन अथवा कन्या के साथ भी निर्जन में रहना ठीक नहीं है। कारण, बलवान इन्द्रिगण विद्वान (ज्ञानी) व्यक्ति को भी आकर्षण करती हैं । काशी के दण्डी स्वामी ने श्रीमद् भागवत के इस श्लोक को पढ़कर मन में विचार किया कि व्यासदेव ने ठीक नहीं लिखा। ज्ञानियों को कुछ विकार नहीं आ सकते। उनको शिक्षा देने के लिए प्रभु ने माया का विस्तार किया । दण्डी स्वामी ने भागवत के ''अपि कर्षति'' पाठ को काटकर ''नहि कर्षति'' लिख दिया ।

एक बार दण्डीस्वामी अपनी कुटिया में अकेले थे । संध्या के समय खूब वृष्टिपात हुआ एवं विद्युत चमकने लगी। उसी समय उन्होंने देखा

कि एक युवती वर्षा में भीगकर अति करूण स्वर में आर्तनाद करते हुए उनकी कुटिया के पास आई एवं शरण माँगी । उन्होंने अपने कमरे में रहने के लिए कहा पर युवती ने कहा कि मैं एक साथ कुटिया में नहीं रहूँगी। तब दण्डी स्वामी उसे कमरे में रहने के लिए कहकर बाहर बरामदे में चले गये । रात्रि के समय वर्षा संपूर्ण समाप्त हुई। तब दण्डी ने उसे कमरा खोलने को कहा, परन्तु युवती ने कमरा न खोला क्योंकि वह उसके असत् भाव को समझ गई थी। तब अंत में दण्डी स्वामी कुटिया की छत जो फूस की बनी थी, उसे हटाकर कमरे में अंदर जाने की कोशिश करने लगे परन्तु वे छत के बीच में ही अटक गए, न नीचे जा सके और न बाहर निकल सके ।

बाद में सबेरा होने पर युवती ने अन्य लोगों को बुलाया । सब लोग आश्यर्चचकित रह गए । जब दण्डी स्वामी को नीचे उतारा गया तब उन्होंने अपनी गल्ती स्वीकार की और भागवत के श्लोक को जहाँ उन्होंने काट दिया था, उसे पुनः तीन बार ''अपि कर्षति'' लिखा और व्यासदेव से मन ही मन क्षमा प्रार्थना क़ी ।

मेरे साथ आये लोगों की दीक्षा हो गई । मेरी छोटी कन्या, जिसकी उम्र ढाई साल की थी, उसके दीक्षा के संबंध में पूछने पर गोस्वामीजी ने उसे खूब दुलारा एवं कहा कि यह तो बिल्कुल बालिका है, अभी रहने दो।

एक दिन गोस्वामीजी ने मुझसे वार्तालाप करते हुए कहा कि श्री वृन्दावन अप्राकृत स्थान है । यहाँ के वृक्षों पर भी राधाकृष्ण नाम लिखे हुए देखे हैं । परिक्रमा मार्ग में एक कदंब वृक्ष के नीचे बैठकर सोचने लगा कि इस वृक्ष के पत्ते दोनों के आकर के हो गये थे, श्री कृष्ण ने अपने गोप बालकों के साथ इस दोने में भोजन ग्रहण किया था, वह लीला दर्शन क्या मुझे नहीं होगा ? उसी समय ऊपर दृष्टि देते ही देखा कि एक-एक करके पत्ते दोने के आकार के हो गए ।

मैं आजीवन अविश्वासी व्यक्ति हूँ, मुझमें परिवर्तन हो रहा था पर मैं असंभव सुनकर कभी भी विश्वास नहीं कर सकता था अतः फौरन प्रतिवाद करके कहने लगा, आपने वृन्दावन में जो वृक्ष के पत्तों में

राधाकृष्ण नाम देखा था, वह अंग्रेजी में था, या संस्कृत में या बंगाली में? असंभव बात बोलनी नहीं चाहिए । आप जानते हैं, पत्तों के शिरों की लकीरों के माध्यम से तिब्बत भाषा के वर्ण की सृष्टि हुई है ? एक प्रकार के वृक्ष भी होते हैं, जिनका आकार दोना जैसा होता है । अंग्रेजी में उसे पिचर प्लान्ट कहते हैं - इस प्रकार शिष्य होकर भी गुरु के सामने मैंने प्रवचन झाड़ दिया । वहाँ उपस्थित अन्य भक्तगण एवं गोस्वामीजी चुप रहे । दूसरा कोई गुरु होने से इस प्रकार की बातों को कदापि सहन नहीं करता परन्तु गोस्वामीजी अदोषदर्शी थे। वे मेरे अंतःकरण की दुरावस्था को देखकर सब सहन कर गये । मैं बराबर देखता आ रहा हूँ कि गोस्वामीजी जैसे पत्थर की मूर्त्ति हैं। स्तुति, निन्दा, गाली, प्रंशसा उनके सामने सब समान है । ये सब उनके अंतःकरण में कुछ भी स्पर्श नहीं करता था । मैं पाषंडी था। फिर भी गोस्वामीजी मेरा यथोचित आदर-सत्कार करते थे ।

ज्येष्ठ पुत्र का जन्म

बोलपुर में गुरुभाईगण की संख्या मे वृद्धि होने के साथ-साथ नाम संकीर्तन का समय भी बढ़ने लगा । संध्या के बाद मेरे बैठक घर में सब काम बंद करके रोज नियम से संकीर्तन होने लगा । रात्रि 10-11 बजे के पहले वह बन्द नहीं होता था ।

1895 के 30 अगहन में प्रातः काल चाय पीने के बाद संकीर्तन शुरू हुआ, रात्रि के 12 बजे तक कीर्तन हुआ, फिर सब प्रसाद पाकर घर लौटे । उसके बाद हम लोगों ने शयन किया परन्तु उस समय नाखुटिया निवासी श्री रसिक लाल दन्त ने अकेले रात भर कीर्तन किया । सुबह के समय कुछ लोगों ने पंडितजी को साथ लेकर प्रभाती कीर्तन शुरु किया । उस समय पंडितजी ने मुझसे कहा -

पंडितजी - आज शायद आपके एक पुत्र संतान होगी ।

मैं - आपने किस प्रकार जाना ?

पंडितजी - मेरे सामने एक दृश्य दिखा था।

मैं - किस प्रकार का दृश्य ?

पंडितजी - मैंने देखा, मेरे सामने एक छोटा बालक उपस्थित हुआ, उसके दोनों हाथों में झाँझ है। गले में माला, उस माला में हरिनाम की झोली भी लगी है । थोड़ी देर बाद यह दृश्य अद्दश्य हो गया । इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि घर के अंदर से शंखध्वनि की आवाज सुनाई पड़ी। 1 ता. पौष सूर्योदय के साथ-साथ ज्येष्ठ पुत्र का जन्म हुआ। हम लोगों ने घर में जाकर देखा कि लड़के को तुलसी के पौधे के नीचे सुला कर रखा गया है ।

सबेरे ही संकीर्तन का समुदाय उपस्थित हुआ । खूब जोर-शोर से संकीर्तन होने लगा । अचानक उस समय काली कृष्ण भाई को भावावेश हो गया । वे मधुर भाव से नृत्य करने लगे । इसके पहले उनको नृत्य करते किसी ने देखा न था । वे जोर-जोर से नीचे भूमि में कूद रहे थे परन्तु उनके पाँव की वृद्धांगुष्ठ अंगुली ही केवल नाम मात्र भूमि में स्पर्श कर रही थी । संकीर्तन में गगन भेदी आवाज, हुंकार, गर्जन होने लगा। पूरा गृह जैसे नृत्य से कंपित हो रहा था । एक घन्टा पूर्व जन्मा हुआ बालक उत्तर मुख करके सो रहा था किन्तु अपने आप मस्तक घुमाकर दक्षिणमुखी होकर एक टक संकीर्तन को देखने लगा । बाद में नगर संकीर्तन दल दोपहर होने के बाद संकीर्तन घर में वापस लौटा, सबने प्रसाद पाया ।

चार कन्याओं के बाद प्रथम पुत्र के जन्म से सब खूब आनंदित हुए। दूर-दूर से लोग बालक को देखने आये एवं यथोचित भेंट देने लगे। उस दिन से एक माह तक रोज सबेरे से लेकर रात्रि के दो प्रहर तक नाम संकीर्तन एवं रोज महोत्सव होने लगा । सबेरे मैं जैसे ही चाय पीने बैठता वैसे ही श्यामाकान्त पंडित जी का भावावेश शुरू हो जाता, वे थर-थर काँपने लगते । उनका भावावेश देखकर कोई गाने लगता। उसे देखकर कोई झाँझ, कोई मृदंग आदि बजाने लगता। इस प्रकार एक महाशक्ति के द्वारा अखंड भाव से कीर्तन चलने लगता । कीर्तनियों में कोई आलस्य भाव नहीं दिखता, भूख, प्यास, क्रान्ति कुछ नहीं महसूस होता । अविश्रान्त भाव से संकीर्तन चलता रहता । किसी की इच्छा भी नहीं होती कि कीर्तन बंद हो । सब मधुर रूप से नृत्य करने लगते । भावावेश में सब कोई डूबे रहते । घर के अन्य कर्म प्राय: बन्द हो गये ।

उस समय दूर-दूर से विभिन्न संकीर्तन संप्रदाय आकर भगवान का लीला गान सुनाने लगे । वैष्णव मंडली का भी आगमन होने लगा । रोज महोत्सव, गगनभेदी मृदंग एवं झाँझ की आवाज एवं हुंकार ध्वनि से बोलपुर में हंगामा मच गया। मुन्सेफ श्री सितिकंठ मल्लिक ने सबसे पूछा- हरिदास बाबू क्या पागल हो गये हैं ? उनके घर में कीर्तन बंद ही नहीं होता ।

शिशु भूमिष्ठ होने के बाद, उसके जन्म उपलक्ष में तिनकड़ि चक्रवर्त्ती ने सुन्दर पद गान की रचना की । कीर्तनीया लोग उसे बड़े प्रेम से गाने लगे । सब अपने आप होने लगा । मैं द्रष्टा मात्र था ।

बोलपुर में पुत्र का जन्म हुआ । उधर ढाका में गोस्वामीजी ने इस घटना को अपने शिष्यगणों को बता दिया। यहाँ तक कि उसके पूर्वजन्म की वार्ता भी बता दी । ये सब बातें मुझे बाद में मालुम हुई । महापुरूषगण अपनी दिव्य दृष्टि से जब जान जाते हैं, उनके लिए यह कोई अनहोनी बात नहीं है ।

प्रथम धूलट (श्री अद्वैत प्रभु की जन्म तिथि पूजा) 1896 ई. में ढाका में अद्वैतप्रभु के जन्म उपलक्ष में गोस्वामीजी ने 'धूलट' उत्सव किया । हम लोगों ने भी बोलपुर में उसी समय जन्मोत्सव का आयोजन किया । हम लोगों को महोत्सव के नियम के संबंध में कोई नियम आदि की जानकारी न थी । ठाकुर जी की फोटो वगैरह लगाकर संकीर्तन प्रारंभ हो गया । पूजा, भोग, आरती का कोई आयोजन ही नहीं था । अविश्रान्त कीर्तन, गर्जन, नर्तन चलता रहता ।

कुछ दिन इस प्रकार बीतने के बाद वृद्ध वकील श्री यशोदानंद सिंह ने कहा कि संकीर्तन में भोग, आरति, पूजा का आयोजन जरूरी है। तब एक पात्र में कुछ फल वगैरह रखकर भोग रखा गया । आरती करना असंभव सा हो गया । पंडितजी भावावेश में प्रदीप लेकर काँपने लगे। उनके देह को संभालने के लिए दूसरे लोगों की सहायता जरूरी हो गयी।

एक दिन नगर संकीर्तन करने का विचार हुआ । रास्ते में संकीर्तन निकलने के साथ-साथ सैकड़ों व्यक्ति उसमें शामिल हो गए । पंडितजी के शरीर में अष्ट सात्विक विकार प्रकट होने लगे । अश्रु, कंप, पुलक

देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये । वे रास्ते में जिस जगह भावावेश में गिर जाते, कीर्तनिया लोग उन्हें घेरकर कीर्तन करने लगते। कुछ देर बाद उनका भावावेश कम होने पर फिर वे कीर्तन में आगे चलने लगते । उस समय लोगों की भीड़ उस जगह की मिट्टी लेने दौड़ पड़ती - धक्का-मुक्की होने लगती । कुछ लोग उस स्थान की मिट्टी अपने शरीर में मलने लगते। दुकानदार लोग मिठाई-बताशे, मिश्री, इलायची दाना वगैरह कीर्तन में बिखेरने (फेंकने) लगते । बच्चे, स्त्रियां आदि मिठाई वगैरह उठाकर खाने लगे तो शाम को बोलपुर बाजार में मिठाई मिलना मुश्किल हो गया। बच्चे तो हरिलूट बताशा वगैरह पेटभर खाये । करीब दोपहर डेढ बजे संकीर्तन घर वापस लौटा । हम लोगों के घर में उतने लोगों के भोजन की कोई व्यवस्था भी न थी । किन्तु नगर संकीर्तन में जाने के बाद पड़ौसी लोग अयाचित रूप से अनेक प्रकार की सब्जी व चावल दाल वगैरह हमारे घर में दे गए । बड़े उत्साह व आनन्द के साथ प्रसाद की व्यवस्था हुई एवं अनेक व्यक्तियों ने प्रसाद पाया ।

इस घटना के बाद बोलपुर के साधारण लोगों के बीच एक नूतन भाव का उदय हुआ । उनकी रूचि में परिवर्तन होने लगा, कई लोग भजन-साधन में मनोनिवेश करने लगे । कईं लोगों ने मांसाहार एवं मत्स्याहार का त्याग कर दिया । सभी लोगों के भीतर एक अद्‌भुत उत्साह आ गया। बच्चे भी सत्प्रसंग करने लगे । जगह-जगह हरिसभायें होने लगी। मुझे यह सब देखकर बड़ा आश्चर्य होता । पंडितजी जब आश्रम से मेरे घर में आते, तब लड़के उनकी पदधूलि ग्रहण करने के लिए लालायित रहते । लोगों के सम्मान के कारण उन्हें रास्ते में चलना मुश्किल सा हो गया इसलिए वे खेत से होकर छुपकर मेरे घर में आने लगे । बड़े रास्ते से उनके लिए चलना कठिन हो गया ।

श्यामाकांत पंडित जी का इतना सम्मान था। उनका शरीर भी स्वस्थ था। कोई अभाव भी नहीं था। धर्म जीवन में उन्नति भी हो रही थी। फिर भी वे मुझसे सदा बोलते थे -

पंडितजी - अंदर में जलन यंत्रणा हो रही है। इसे सहन करना कठिन लग रहा है ।

मैं - आपको किससे यंत्रणा हो रही है ? बताइये। आप सुखी रह सकें, इसके लिए मैं सब उपाय करने को राजी हूँ। मेरे पास अर्थबल, लोकबल दोनों हैं। पंडितजी - तुम मेरी यंत्रणा नहीं समझोगे। यह अहैतुकी है । मैं पंडितजी की व्यथा की वार्ता समझ न सका । बाद में गोस्वामीजी से इस विषय में पूछने पर उन्होंने कहा था -

गोस्वामीजी-साधन पथ में सभी साधकों को इस तरह की ज्वाला, यंत्रणा होती है । कोई भी इस यंत्रणा से नहीं बच सकता। वेद में इसे इन्द्रदेव का अत्याचार कहा गया है । ईसाई लोगों की प्रिलग्रिम्स प्रोसेस (यात्रिक की गति) नामक किताब में इसका वर्णन है । प्रहलाद आग में जलकर, विषपान कर, अस्त्राघात से क्षतविक्षत होकर समुद्रजल में डूबकर भगवान को प्राप्त किये थे । मैंने भी यंत्रणा असह्य होने के कारण तीन बार आत्महत्या करने की कोशिश की थी। गुरुदेव ने मेरी रक्षा की ।

मैं - **क्या यह यंत्रणा हम सबको भोग करनी पड़ेगी ?**

गोस्वामीजी - **अवश्य, कोई इससे बच नहीं सकता ।**

मैं - **इस कष्ट का कारण क्या है ?**

गोस्वामीजी - **अनेक जन्मों से किए गए अपराधों का क्या कोई दण्ड भोग नहीं करना पड़ेगा ?** जिन की यंत्रणा आरंभ नहीं हुई है, समझना होगा कि भविष्य में उनको यह सब भोगनी पड़ेगी ।

मैं - गोस्वामीजी, आपने तो यह बड़ी कष्टदायक बात कही ।

गोस्वामीजी - यंत्रणा भोग के बिना जीवन तैयार नहीं होता। दुस्तर रिपुगण, वासना-कामनायें नष्ट नहीं होती ।

मैं - यह तो बड़ी मुश्किल बात है, उन यंत्रणाओं को कैसे सहन करूँगा ?

गोस्वामीजी - **तुम लोगों का जो प्रारब्ध है, वह यदि पूरा भोगना पड़ता तो शायद ही कोई भोग पाता। मैं थोड़ी सी आँच मात्र देता हूँ। उतना सा सहन न करने से कैसे चलेगा ? यंत्रणा के समय एकमात्र भगवान के नाम का ही भरोसा है । श्वाँस-प्रश्वाँस में नाम करते रहना। नाम को कभी भी त्याग मत करना । नाम के बिना स्वस्थ**

होने (भगवत्-प्राप्ति) का कोई दूसरा उपाय नहीं है । ज्वलंत दावानल के बीच से ही तुम लोगों का पथ है ।

गोस्वामीजी की इन सब बातों को उस समय ठीक से हृदयंगम नहीं कर सका - बाद में अपने जीवन में इसका कटु अनुभव हुआ था ।

पट्टडोरी प्रदान

गोस्वामीजी ने कहा था, सत्य को दस बार ठोक-पीट कर बजाकर ग्रहण करना । (अंधानुसरण मत करना) अभी वर्तमान में चैतन्य महाप्रभु के नाम एवं चरितामृत ग्रंथ के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गई है तथापि मूर्तिपूजा में मेरा विश्वास नहीं जन्मा । मैं विचार करने लगा कि जब तक प्रत्यक्ष दर्शन न हो, तब तक विश्वास नहीं करूंगा । यह भाव कुछ दिन बाद चला गया। मन में सोचा कि मैंने ऐसी कौनसी तपस्या की है कि भगवान के मुझे प्रत्यक्ष दर्शन होंगे ? मैंने राधा-कृष्ण की निंदा ही की है। मेरे लिए तो एक अलग नरक की व्यवस्था होना जरूरी है । कितने ऋषि-मुनि गण कितनी कठोर तपस्या करके भी उनके दर्शन न कर पाये। मैं तो महापातकी, पाषंडी हूँ । श्री गुरु के प्रत्यक्ष आदेश का भी पुनः-पुनः लंघन किया है। उनके साथ दुर्वाक्य का भी प्रयोग किया है । श्रीगुरु के सामने भगवत्-निन्दा भी कर चुका हूँ । पट्टडोरी न देने के कारण महाप्रभु के आदेश की भी अवहेलना हो रही है । उन्होंने मेरे पूर्वज सत्यराज खान एवं उनके पुत्र रामानंद बसु को हर साल पट्टडोरी लाने का आदेश दिया था ।

कुलीन ग्राम वासी रामानन्द, सत्यराज खान ।
उनको आज्ञा दी उन्होंने, किया सम्मान ॥
इस पट्टडोरी के तुम हो जाओ यजमान ।
प्रति वर्ष आना, डोरी करके निर्माण ॥
यह कहकर उन्हें दिया, पुरानी फटी पट्टडोरी ।
इसे देखकर नया बनाना, अति दृढ़ करि ॥
इस पट्टडोरी में होता है शेष (नाग) का अधिष्ठान ।
वे दशमूर्त्ति धर के करते सेवा, सेव्य भगवान ॥

भाग्यवान सत्यराज, बसु रामानंद ।
सेवा आज्ञा पाकर, उन्हें हुआ आनंद ॥
प्रति वर्ष 'गुण्डिचा' में भक्तगणों के संग ।
पट्टडोरी साथ ले आते, करते हुड़दंग ॥

श्री चैतन्य चरितामृत (मध्यलीला परिच्छेद)

श्री महाप्रभु के आदेश एवं गुरुवाक्य की अवहेलना के लिए मेरे मन में बड़ा संताप हुआ । मैं अपने को शत-शत धिक्कार देने लगा । मेरे मन में अत्यन्त ग्लानि उपस्थित हुई । मैं और देरी न करके पट्टडोरी बनाने के लिए रेशम का संग्रह करने की चेष्टा करने लगा ।

'पट्टडोरी' क्या वस्तु है ? मैं पाठकगण को संक्षेप में बताता हूँ । यह काले रेशम की बनी एक मोटी चैन या रस्सी होती है । सफेद, काले, लाल एवं पीले रंग के रेशम से यह बनाई जाती है। यह देखने में बहुत सुंदर होती है । हर साल 'दो बड़ी रस्सी' भेजनी पड़ती हैं। इसकी लंबाई करीब 24 हाथ (11 मीटर) होती है । यह रस्सी काफी सुदृढ़ होती है।

श्री जगन्नाथजी की विश्वंभर मूर्त्ति है । इस कारण चंदनयात्रा, होली वगैरह 'प्रतिनिधि मूर्त्ति' (छोटी) के द्वारा संपन्न होती है। केवल 'रथयात्रा' एवं 'स्नान यात्रा' वगैरह में स्वयं जगन्नाथदेव की यात्रा (विजय) होती है । रथयात्रा के समय रत्नवेदी से ठाकुरजी को जब उतारते हैं, तब पण्डे 'पट्टडोरी' की सहायता से उनको खींचकर मंदिर के बाहर रथ में चढाते हैं । रथ में चढाने के बाद पट्टडोरी से रथ के ऊपर ठाकुरजी गिर न जायें, इसलिए उस पट्टडोरी को खंभे से बांध कर रखा जाता है । जब मंदिर में जगन्नाथजी रहते हैं, तब भी समय-समय में पट्टडोरी, मालारूप में उन्हें पहनायी जाती है, जो कि अत्यन्त सुंदर दिखती है । गुण्डिचा मंदिर में भी या स्नान बेदी में भी ठाकुरजी को पट्टडोरी से बंधन किया जाता है।

हम लोग पट्टडोरी के सेवायत थे इसलिए रत्नवेदी से ठाकुरजी को स्थानांतरित करने के समय चिरप्रथानुसार हम लोगों के किसी वंशज को उपस्थित रहकर ठाकुरजी को बंधन करने की इजाजत देनी पड़ती

थी। चूंकि हम लोग बहुत दूर (पुरी से बंगाल) रहते थे एवं रास्ता भी भयावह था। अतः प्रत्येक विजय यात्रा के समय हम लोगों का वहाँ जाना संभव नहीं था। इसलिए पूर्वजों ने हम लोगों के प्रतिनिधि रूप में एक पंडाजी को नियुक्त कर दिया था। उन्हें इस कार्य के लिए राजा की तरफ से कुछ आर्थिक सहायता दी जाती थी । इस समय वृद्ध भुवन मिश्र जी हमारे प्रतिनिधि पंडा थे ।

मैं अनुतप्त हृदय से पट्टडोरी बनाने की योजना के बारे में विचार कर रहा था। उसी समय एक दिन संध्या के समय मेरे घर के पास की सड़क में खड़े होकर एक वृद्ध व्यक्ति ने मुझसे कहा -

वृद्धव्यक्ति - श्री हरिदास बाबू वकील का घर कौन सा है ? किस पथ में जाने से उनका घर मिलेगा ? उस वृद्ध ब्राह्मण को साधू वेश में देखकर मैं उन्हे प्रणाम करके बोला -

मैं - आप कौन हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ?

वृद्धव्यक्ति - मैं जगन्नाथदेव जी का पंडा हूँ, पुरी से आ रहा हूँ, क्या आप ही हरिदास बाबू हैं ?

मैं - मैं बाबू नहीं हूँ, महापातकी हूँ, मेरा नाम हरिदास वसु है। पंडे ने रास्ते में खड़े होकर मुझसे काफी देर तक बातचीत की । उन्होंने कहा- मेरा नाम जयकृष्ण पंडा है। मैं आपके वंश से पिछले 70 साल के करीब पट्टडोरी ले जाता था । करीब 10-12 साल से पट्टडोरी नहीं जा रही है। अभी तक जो पुरानी पट्टडोरी थी, उससे काम चल रहा था। राजा ने कहा है कि किसी भी प्रकार से इस बार पट्टडोरी लानी ही पड़ेगी। यदि कुलीन ग्रामवासी वसु परिवार वाले गरीब हो गये हैं तो उन लोगों को रूपया देकर, जिससे पट्टडोरी तैयार हो सके, उसकी चेष्टा करना। पट्टडोरी के लिए जितने रूपये की आवश्यकता हो, राजा देने को तैयार है। मुझे करीब महीना भर हो गया। कुलीन ग्राम में आया था पर पट्टडोरी की कोई व्यवस्था न हो सकी। वहाँ से 'जौग्राम' गया वहाँ भी कुछ व्यवस्था न हो सकी । वहाँ पर एक व्यक्ति ने आपका नाम व पता दिया है। इसलिए मैं यहाँ आया हूँ । पट्टडोरी के अभाव में शालवृक्ष के छिलके के द्वारा ठाकुरजी को बन्धन करके रखा जाता है एवं बड़ी

मुश्किल से (पौहुंडी) यात्रा कार्य संपन्न हो रहा है। आप को कुछ न कुछ उपाय करना ही होगा।

मेरा मन पहले ही से प्रस्तुत था। पंडे की बात सुनकर मन और द्रवीभूत हो गया । मैं मन ही मन जगन्नाथदेव को प्रणाम करके बोला - हे प्रभु ! इस प्रकार से दया नहीं करते तो इस महापातकी (पापी) का उद्धार किस प्रकार होता ? तुम धन्य हो, तुम्हारी दया अपरम्पार है ।

मैंने पंडाजी को साथ में घर ले जाकर आहार आदि करवाकर कहा-

मैं - इस बार 'पट्टडोरी' अवश्य ही यहाँ से भेजी जायेगी, आप निश्चिंत रहें ।

पंडा - कितना रुपया लगेगा ?

मैं - रुपये की कोई जरूरत नहीं है। यह मेरी पैतृक सेवा है। मैं सेवा चलाऊंगा ।

पंडाजी मेरे यहाँ एक दिन रहकर चले गये। यथा समय मैंने पट्टडोरी बनाकर पुरीधाम भेज दी। मैं पट्टडोरी ठीक तरह से बनाना नहीं जानता था । खैर, उस साल तो उसी से काम चला । उसके अगले साल में पुरी से 'पट्टडोरी' का नमूना मंगवाया गया । मैंने कई जगह से कारीगर लाकर, पट्टडोरी का नमूना दिखाकर उसे बनवाने को कहा। परन्तु कोई भी ठीक तरह से उसे न बना सका । बाद में पता चला कि पहले पट्टडोरी 'बाँकुड़ा' का एक व्यक्ति बनाता था । मैं उसे 'बाँकुडा' से बुलाकर, उसके हाथ से पट्टडोरी बनवाकर हर साल जगन्नाथपुरी भेजने लगा । बाद में मैं स्वयं उससे बनाना सीख कर, अपने हाथ से बनी पट्टडोरी भेजने लगा ।

कालाचाँद

बोलपुर में जब हरिनाम संकीर्तन की बाढ़ शुरु हुई तब कहीं से एक काला कुत्ता मेरे घर में आकर उपस्थित हुआ । यह कुत्ता दूसरे कुत्तों के समान लड़ाई-झगड़ा नहीं करता था । भोजन देने से यदि दूसरा कुत्ता आकर उसे खाने लगता तो वह वहाँ से हट जाता। वह उसे नहीं खाता

था । संकीर्तन के समय बाहर कहीं भी नहीं जाता था । संकीर्तन श्रवण करता था एवं संकीर्तन दल की परिक्रमा भी करता था । जीभ बढ़ाकर भक्तगणों की पदधूलि ग्रहण करता था। हरिलूट के बताशे को खाता था । नगर संकीर्तन में भी साथ-साथ जाता था । पंडितजी ने उसका प्रेम से ''कालाचाँद'' नाम रखा । वे ''कालाचाँद'' बोलकर कुत्ते को पुकारते थे। धीरे-धीरे ''कालाचाँद'' भी संकीर्तन पार्टी का एक सदस्य हो गया। जब सब कोई प्रसाद पाने बैठते, कालाचाँद के लिए भी एक स्वतंत्र पत्तल की व्यवस्था की जाती थी । वह अपनी पत्तल पर ही आहार करता था ।

कुछ दिन बाद ''कालाचाँद'' के अंदर सात्विक लक्षण प्रकाशित होने लगे । संकीर्तन के समय उसके शरीर में कंपन, पुलक, एवं आँखों से झर-झर कर अश्रुपात होने लगता। वह समाधिस्थ भी होने लगा। उसे बाहर का कुछ भी होश नहीं रहता था । कुल साल यहाँ रहने के बाद अचानक वह कहीं चला गया, मैंने ग्रामान्तर में उसकी खोज की थी परन्तु उसका कोई भी पता न चला । इसके बारे में गोस्वामीजी से मुलाकात होने पर मैंने पूछा था -

गोस्वामीजी - वह कुत्ता काफी भागयवान था । वह गत जन्म में एक साधू था । अपराधवश कुत्ते की योनि में जन्म हुआ था । ढाका, गैंडारिया आश्रम में इसी तरह का एक कुत्ता था ।

मैं - क्या कुत्ते आदि जानवरों में भी आत्मा होती है ?

गोस्वामीजी - हाँ, जानवरों एवं वृक्षादि की भी आत्मा होती है । अनेक महात्मा वृक्षदेह धारण करके श्रीवृन्दावन धाम में वास करते हैं ।

मैं - सुना हूँ, वृन्दावन में शिरोमणि जी के आश्रम में एक वृक्ष आप लोगों का कीर्तन सुनकर नृत्य किया करता था ।

गोस्वामीजी - हाँ, खूब नृत्य किया करता था ।

मैं - वृक्ष किस प्रकार से नृत्य कर सकता है ?

गोस्वामीजी - उस समय हवा नहीं चल रही थी। फिर भी संकीर्तन के समय उसकी डालियाँ एवं पत्ते इस प्रकार हिलने लगते जिससे साफ पता चलता कि वृक्ष नृत्य कर रहा है ।

मैं - वृक्ष में क्या ज्ञान, बुद्धि होती है ?

गोस्वामीजी - ज्ञानमय देवता सर्वभूत में विराजमान हैं। वृक्ष को ज्ञान नहीं होता- कौन कहता है ?

बड़े पुत्र का अन्नप्राशन

साधन करते-करते मुझे देवदर्शन* भी होने लगे । फिर एक एक करके योगांग ** की भी अनुभूति होने लगी । परलोकवासी आत्मा ने कहा था ''योग शिक्षा ग्रहण करने के लिए''। यह बात अब सत्य मालूम होने लगी । भगवत् 'नाम' द्वारा जो प्राणायाम अपने आप होता है, वैसा प्राणायाम हजार चेष्टा करने पर भी नहीं होता । असल एवं नकल का अन्तर मुझे मालुम होने लगा ।

मैंने कलकत्ता जाकर गोस्वामीजी से पूछा - यह सब क्या हो रहा है ? गुरु प्रदत्त नाम से ऐसा क्यों होता है ? गोस्वामीजी ने कहा कि योग साधारणतः दो प्रकार के होते हैं, (1) हठयोग (2) राजयोग । हठयोग के योगी को गुरु के पास रहकर विविध शारीरिक क्रियाओं की शिक्षा लेनी पड़ती है वे योगसिद्ध हो सकते हैं इनमें 'अष्टसिद्धि'* प्रमुख हैं। वे लोग जल के ऊपर से पैदल जा सकते हैं। दिवाल भेद करके घर के बाहर जा सकते हैं, जल के नीचे या भूमि के अंदर रह सकते हैं इत्यादि। इस योग से दीर्घ जीवन एवं स्वस्थ शरीर की भी प्राप्ति होती है।

परन्तु इस प्रकार के योग से, वास्तविक धर्म का कोई संबंध नहीं है। इसमें भगवत् प्राप्ति नहीं होती। कर्म भी क्षय नहीं होता । प्रवृत्ति का दमन नहीं होता । **तुम लोगों का जो साधन है, वह राजयोग है। इसमें अविश्रान्त नामजप करना पड़ता है । मन में थोड़ा भी अहंकार या अभिमान आ जाए तो मुश्किल है। सबके पदावनत एवं अदोषदर्शी होकर नाम करना पड़ता है । नाम करते-करते समस्त देह नाममय हो**

---

* 1. यह मायिक दर्शन है, भगवत दर्शन और ऊँची अवस्था होती है ।
2. यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि

** अष्टसिद्धि-अनिमा, लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व एवं कामवसायिता ।

जाता है एवं भागवती तनु लाभ होता है। पंचम पुरुषार्थ-कृष्णप्रेम इस साधन को करने से ही प्राप्त होता है। भक्तलोग यौगेश्वर्य नहीं चाहते तथापि उन्हे सब प्रकार के यौगेश्वर्य, सिद्धि वगैरह की प्राप्ति हो जाती है।

ये सब भक्तिदेवी की दासी हैं । भक्तिदेवी जहाँ जाती हैं, वे उनका अनुगमन करती हैं ।

हरिभक्ति महादेव्याः सर्वामुक्तादि सिद्धयः ।

भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्या श्चेटिका वदनुगताः ॥ नारद पांचरात्र

हठयोगी गोरखनाथ ने अपना यौगेश्वर्य दिखाने के लिए नानकजी को कहा कि चलो हम लोग सिंहल द्वीप घूम कर आते हैं । नानकजी ने कहा - मैं जा नहीं सकता, आप जाइये । गोरखनाथ सशिष्य सिंहलद्वीप में उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने देखा कि नानकजी वहाँ बैठे हैं । नानकजी से जब पूछा गया, तब उन्होंने कहा - मैं कुछ नहीं जानता, अचानक यहाँ आ गया । इस प्रकार कई योग विभूति गोरखनाथ ने दिखाई परन्तु नानकजी को परास्त न कर सके । नानकजी ने प्रभु की भक्ति के बल पर सर्वत्र विजय लाभ किया ।

भगवान सर्वशक्तिमान हैं, सर्वज्ञ हैं, वे इच्छा करने से सब कुछ कर सकते हैं परन्तु उन्होंने ही नियम बनाये हैं। इसलिए उसी अनुसार चलना पड़ता है । आम खाने के लिए आम के वृक्ष से आम लेना पड़ेगा, कटहल के वृक्ष में आम नहीं होता । भगवान को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु के पास गुरुशक्ति प्राप्त करनी पड़ेगी। यह ईश्वर का विधान है । यह नियम सब समय से चला आ रहा है ।

आदि गुरु नारायण से गुरुशक्ति शिष्य परंपरा से चली आ रही है । ईश्वर पुरी ने माघवेन्द्र के पास से यह शक्ति प्राप्त की थी । श्री चैतन्य महाप्रभु ने ईश्वर पुरी से यह शक्ति प्राप्त की थी । देश की अत्यन्त दुरावस्था देखकर इस समय गोस्वामीजी ईश्वर की प्रेरणा से गृहस्थ एवं उदासीन लोगों को यह गुरुशक्ति वितरण कर रहे हैं ।

ई. 1896 के मई के महीने में बड़े पुत्र का अन्नप्राशन हुआ । वैदिक क्रिया आदि की व्यवस्था बड़े भाई ने की थी । मैंने

नित्यानन्दवंशीय व अन्य वैष्णव एवं भक्तगृहस्थों को निमंत्रण करके पंचतत्व की पूजा एवं भोग लगाकर संकीर्तन के साथ महोत्सव किया । संकीर्तन में आचार्यवंश के एक भक्त ब्राह्मण (श्री माघवेन्द्र चट्टराज जी) मेरे लड़के को गोद में लेकर आये । बालक उनकी गोद में इतनी तेजी से नाचने लगा कि वे बालक को गोद में रख न सके। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा कि यह लड़का सामान्य नहीं है। इस शिशु का कीर्तन में इतना अनुराग देखकर आश्चर्य लग रहा है ।

महोत्सव समाप्त हुआ । भक्तगण अपने-अपने घर चले गये । मैं पंडितजी के साथ साधन-भजन एवं नाम संकीर्तन करते हुए जीवन-यापन करने लगा ।

गुरुदर्शन के लिए कलकत्ता गमन

अगस्त के महीने में कलकत्ते से एक पत्र आया जिसमें गोस्वामीजी ने कहला भेजा था कि हरिदास बाबू अपने पुत्र के साथ कलकत्ते आयें । मैं यह पत्र पाकर जन्माष्टमी के दिन सपरिवार कलकत्ता रवाना हुआ। उस समय गोस्वामीजी 45 नं. हैरिसन रोड़ में स्थित बंगले में रहते थे । मैंने जाकर गोस्वामीजी को प्रणाम किया । उनके कमरे में स्त्रियों का प्रवेश निषेध था इसलिए मेरी पत्नी ने दरवाजे की चौखट के बाहर से प्रणाम किया । गोस्वामीजी हम लोगों को देखकर हँसने लगे एवं बोले -

गोस्वामीजी - क्या, पुत्र हुआ है ?

मैं - हाँ, बड़ी उम्र में पुत्र हुआ है। कुछ काम नहीं आयेगा । धर्मपत्नी को देखकर गोस्वामीजी ने कहा कि बालक को गोद से उतार दो । पत्नी ने दरवाजे के पास बालक को गोद से उतार दिया । बालक घुटनों के बल तेजी से चलता हुआ गोस्वामीजी के पास चला गया एवं उनका गैरिक वसन हाथ के द्वारा खींचने लगा । थोड़ी देर बार फिर घुटने के बल चलता हुआ गोस्वामीजी के दाहिनी ओर भागवत एवं अन्य भक्ति ग्रंथों के ऊपर अपना दाहिना हाथ रखा। फिर अपनी माँ की गोद में चढ़ बैठा । गोस्वामीजी ने कहा -

गोस्वामीजी - आपके पुत्र ने क्या कहा ? कुछ समझा है या नहीं ?

मैं - मेरा पुत्र तो कोई बात नहीं बोला। अभी तो वह बात भी नहीं बोल पाता ।

गोस्वामीजी - तुम्हारे पुत्र ने दो बातें कही । मेरा गेरुआ कपड़ा स्पर्श करके कहा - ''वैराग्य'' एवं भक्ति ग्रंथों में हाथ रखके कहा- ''भक्ति'' । **इस जगत में वैराग्य एवं भक्ति ये दो वस्तुएँ ही सार हैं, ऐसा इसने इंगित किया ।**

मैं - यह पुत्र इतने दिनों तक जन्म क्यों नहीं लिया ?

गोस्वामीजी - पहले पुत्र जन्म होने से क्या तुम इसकी मर्यादा रख सकते थे ?

मैं - इसे कौन से कर्मफल भोग करने के लिए जन्मग्रहण करना पड़ा ?

गोस्वामीजी - नहीं, इसे कोई कर्मफल भोग नहीं करना पड़ेगा ।

मैं - क्या ये नियति (प्रारब्ध) के अधीन है ?

गोस्वामीजी - नहीं, ये अपनी इच्छा से आये हैं। ठीक से रख सको तो रहेंगे, नहीं तो वन पक्षी के समान किसी भी समय उड़कर चले जा सकते हैं ।

मैं - यदि यह कोई प्रारब्ध कर्म वगैरह भोग करने के लिए नहीं आया है तो फिर इस कष्टमय पृथ्वी में क्यों इसने जन्म ग्रहण किया ?

गोस्वामीजी - वंश को उज्ज्वल करने के लिए ।

इस वार्तालाप के बाद मैंने और कोई प्रश्न नहीं किया । गोस्वामीजी के शिष्यगणों ने बाद में मुझसे कहा कि गोस्वामीजी ने बालक का परिचय पहले ही हम लोगों को दिया था। वे आपके पूर्वज सत्यराज (लक्ष्मीकान्त वसु) हैं । गोस्वामीजी ने बालक का नाम प्यार से ''गोपीजन वल्लभ'' रखा ।

इस बार सुना कि गोस्वामीजी के बैठने के आसन में देवमूर्ति एवं हरिनाम के छाप दिखते हैं । एक दिन वे आसन से उठकर शौच में गये। **मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा कि अति सुन्दर चित्र आसन पर अंकित हुआ है ।** एक शिवमंदिर, मंदिर के भीतर शिवलिंग, शिवलिंग के

ऊपर बिल्व पत्र, मंदिर के ऊपर त्रिशूल, वादक गण ढोलक वगैरह बजा रहे हैं, कोई-कोई दर्शक शिव पूजा देख रहे हैं । मैं स्थिर भाव से चित्र को देखने लगा। एक अति सुनिपुण चित्रकार के बिना यह चित्र कोई अंकित नहीं कर सकता। प्रायः आधा घन्टे तक आसन पर यह चित्र रहा, फिर धीरे-धीरे अदृश्य हो गया। और एक दिन ध्वजा, वज्र, अंकुश चिन्हित भगवान के पाद पद्म, आसन पर दिखाई दिये। प्रायः एक घंटे तक दोनों चरण दिखे, फिर धीरे-धीरे अदृश्य हो गये ।

उस समय एक और आश्चर्यजनक चीज देखने में आई। रोज गोस्वामीजी के पास भगवद् गीता, महाभारत, श्रीमद्भागवत वगैरह भक्ति-शास्त्र पाठ होता था। जब भगवत् गीता का पाठ होता, तब अर्जुन के रथ के ऊपर श्रीकृष्ण घोड़े की लगाम लेकर बैठे हैं, ऐसा चित्र आसन में दिखाई पड़ता था। महाभारत का कोई युद्ध विवरण पाठ होता, तब कौरवों, पाडंवों की सेना का युद्ध संबंधी चित्र आसन में दिखता । सबसे आश्चर्य की बात है कि जब युद्ध वर्णना में सेनापति के मस्तक छेदन का पाठ समाप्त होता तो चित्र में सेनापति का सिर दिखाई नहीं देता । कभी-कभी श्री चैतन्य चरितामृत पाठ के समय महाप्रभु का संकीर्तन एवं नृत्य का दृश्य भक्तगणों सहित आसन पर अंकित हो जाता था। यह सब बातें मेरी क्षुद्र बुद्धि में कुछ प्रवेश नहीं करती थी। मैं सिर्फ सोचता रह जाता था।

महाभारत का पाठ मुझे अच्छा नहीं लगता था। इसलिये महाभारत पाठ के समय मैं अधिकतर अनुपस्थित रहता । एक दिन महाभारत पाठ के बाद गोस्वामीजी ने मुझे कहा -

गोस्वामीजी - सुना आपने ? द्रौपदी - युधिष्ठिर संवाद कितना मधुर है ! कितना सारगर्भ उपदेश उन्होंने दिया ?

मैं - आप यह क्या बोल रहे हैं ? द्रौपदी-युधिष्ठिर संवाद कोई पढ़ने या सुनने की बात है । इसमें ऐसी क्या अच्छी बात बताई गई है ? द्रौपदी राज्य से निष्कासित होकर व अपमानित होकर दुःख के विषय में बोल रही है और युधिष्ठिर कह रहे हैं कि धर्म का अवलंबन करके रहे। परिणाम में मंगल होगा। जय की प्राप्ति होगी। शत्रुगण पराजित एवं नष्ट हो जायेंगे। नष्टराज्य पुनः प्राप्त हो जायेगा। सांसारिक लाभ-नुकसान के लिए

अनुष्ठान ! युधिष्ठिर यह तो बोल न सके कि राज्य गया तो क्या नुकसान हुआ ? बल्कि अच्छा ही हुआ । उनकी राज्य भोग की लालसा थी इसलिए धर्म का अवलंबन करने को कह रहे हैं । इस तरह धर्म का पालन करना न करना दोनों समान है। ....इत्यादि कहकर मैंने एक खूब बड़ा प्रवचन झाड़ दिया ।

गोस्वामीजी - (हँसते हुए) हाँ, ये सब बातें तुम्हें अच्छी नहीं लगेंगी । जो लोग निवृति मार्ग के लोग हैं, प्रेमभक्ति लाभ करना चाहते हैं, उन्हें प्रवृति मार्ग से धर्म अनुसरण से तृप्ति नहीं मिल सकती ।

मैं - प्रवृत्ति मार्ग का धर्म क्या है ?

गोस्वामीजी - सकाम धर्म । स्वर्ग की कामना करके या कोई राज्य या ऐश्वर्य प्राप्ति या सिद्धिलाभ के लिए जो धर्मानुष्ठान किया जाता है - उसे प्रवृत्ति मार्ग का धर्म कहते हैं । इससे साधक अभिलाषित वस्तु प्राप्त करके भोगान्त में जन्म-मरण रूपी दु:ख समुद्र में पतित होता है ।

मैं - निवृत्ति मार्ग का धर्म क्या है ?

गोस्वामीजी - निष्काम धर्म में भगवान को प्राप्त करने के अलावा साधक की कोई कामना नहीं रहती । जिनको भगवान की प्राप्ति हो जाती है, उन्हें जन्म-मरण रूपी अशेष क्लेश से छुटकारा मिल जाता है। वे लोग भगवान की नित्य लीला में प्रवेश कर, अनन्त काल भगवत् प्रेमरस का आस्वादन करते हैं ।

नन्द-महोत्सव के दिन कुछ भिक्षुक, ग्वाले का स्वांग लेकर कंधे में मटकी लेकर गोस्वामीजी के पास उपस्थित होकर नंदोत्सव के भजन गाने लगे । वे लोग ठीक से गा भी नहीं सकते थे। ताल, स्वर का भी विशेष ज्ञान उन्हें नहीं था। उसके बावजूद गोस्वामीजी उन भजनों को सुनकर खूब नृत्य (भावावेश में) करने लगे एवं प्रत्येक को कपड़े एवं रूपये देकर विदा किया । गोस्वामीजी के आश्रम में प्राय: रूपयों का अभाव ही रहता था, उधार करके उन लोगों को कपड़े एवं रूपये दिये गये। मैंने उनसे पूछा कि उधार करने की क्या जरूरत थी ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि इन लोगों ने जो दिव्य दृश्य मुझे दिखलाया; उसकी तुलना में मैंने उन्हें कुछ भी नहीं दिया ।

एक दिन गोस्वामीजी शिष्यगणों के प्रति जरा रूष्ट होकर बोले कि यदि बोलता हूँ कि जरा प्राणायाम करो, तो बोलते हो कि प्राणायाम करना मुश्किल है । यदि बोलता हूँ नाम करो तो बोलते हो कि नाम करना कष्टकर है। धर्म क्या ऐसे ही प्राप्त हो जायेगा ? जन्म-जन्मान्तर में कितने अपराध किए हो, उसका भोग क्या भोगना नहीं पड़ेगा ? ऐसे ही सब हो जायेगा ? मेरे पैर दबाकर, मुझे पंखे झलकर हवा करने से, मेरे पावों में तेल-मालिश करके यदि कोई सोचे कि सब प्राप्ति हो जायेगी, तो वह ठीक नहीं होगा ।

गोस्वामीजी की भर्त्सना सुनकर सब कोई चुप रह गए । मैंने तब कहा-

मैं - आप क्यों इतना तिरस्कार कर रहे हैं ? गुरु यदि कृपा करके नाम न करायें तो किसकी ताकत है कि नाम कर सके ?

गोस्वामीजी - यह ठीक-ठीक कोई समझ तो ले ।*

मैं - सुना है, अन्य साधन मार्ग में साध्य वस्तु प्राप्त करने के लिए साधन-भजन की जरूरत पड़ती है। साधन न करने से साध्य वस्तु कदापि प्राप्त नहीं हो सकती । इस साधन मार्ग में एकमात्र गुरुकृपा से साध्य वस्तु की प्राप्ति हो सकती है - क्या यह बात सत्य है ?

गोस्वामीजी - **हाँ, यह बात संपूर्ण सत्य है ।**

मैं - **तब तो कृपा करके अवस्था को खोल दिया जा सकता है ।**

गोस्वामीजी - **कच्चा आम पकाने से सड़ जाता है । बालक के हाथ में मोती देने से वह फेंक देता है। उसका मूल्य वह नहीं समझता।**

मैं - **नाम करना बहुत कठिन है । आप कृपा करके नाम करवा तो सकते हैं।**

---

* पौरुष (स्वयं की चेष्टा) रहते गुरुकृपा समझ में नहीं आती है । साधक जब साधन करते-करते हैरान हो जाता है, थक जाता है, आत्मशक्ति समाप्त होने लगती है, तब वह ठीक-ठीक समझता है कि बिना गुरु कृपा के कुछ प्राप्त करना असंभव है ।
यथाहि पुरूषो........शोकमोहा: ।। 33-40 ।।
- श्रीमद्भागवत - 4/29

गोस्वामीजी - **मुँह में अन्न दे देने से भी उसे गटकना पड़ता है। खाना न खाना भक्षण करने वाले के ऊपर निर्भर है ।**

मैं - **साधन मार्ग में बड़ा क्लेश है - धर्म प्राप्ति करने के लिए इतना क्लेश क्यों भोगना पड़ता है ?**

गोस्वामीजी - **अनायास प्राप्त वस्तु की मर्यादा नहीं होती । बहुत कष्ट से धर्म प्राप्ति होती है, इसलिए धर्म की इतनी मर्यादा, इज्जत है ।**

मैं - यदि भजन साधन न करूँ तो क्या होगा ?

गोस्वामीजी - **जैसे थे, वैसे ही रहोगे ।**

मैंने इतने दिन तक माला-तिलक धारण नहीं किया था। अब उसके लिए मन के अन्दर अत्यन्त चाहत होने लगी। व्याकुलता बढ़ने लगी। तब एक गुरुभाई ने मुझे माला पहना दी। मैंने माला तिलक यथाविधि धारण कर लिया । इसे धारण करने से गुरुशक्ति और जाग्रत होने लगी ।

गुरुशक्ति के प्रभाव से मैं दिन-दिन वैष्णव भावापन्न होने लगा । मेरा ब्राह्मभाव समाप्त होने लगा । श्रीकृष्ण कथा, कृष्णलीला एवं चैतन्य लीला मुझे अति मधुर लगने लगी । वैष्णव देखने से मन पुलकित हो उठता । गोस्वामीजी मुझे देखकर मन्द-मन्द मुस्काते थे और मैं अपनी पूर्वावस्था स्मरण कर लज्जित होता था।

गोस्वामीजी के ब्राह्मसमाज का परित्याग करने के बाद वहाँ के ब्राह्मगण उनके विद्वेषी बन गये थे । धीरे-धीरे गोस्वामीजी के शिष्यगणों की संख्या बढने लगी । वे लोग अफसोस करके कहते कि कितनी मुश्किल से एक व्यक्ति को हम लोग ब्राह्म बनाते हैं, पर वह गोस्वामीजी का संग करने मात्र से हिन्दू हो जाता है। जब तक गोस्वामीजी जिन्दा रहेंगे, तब तक ऐसा होता ही रहेगा । श्यामाकान्त पंडित एक बुद्धिमान, प्रतिभाशाली व्यक्ति था। गोस्वामीजी के चक्कर में आकर पूरा वैष्णव बाबाजी बन गया ।

मैं - ब्राह्म लोग आपकी मृत्यु चिन्ता करते हैं। कहते हैं कि वे सब ब्राह्मों को अपनी ओर खींच लेते हैं ।

गोस्वामीजी - मेरे मरने से क्या होगा ? मैं जो बीज रखकर जा रहा हूँ - कालान्तर में उनके द्वारा कार्य चलता ही रहेगा, बन्द नहीं होगा।

मैं - आपके बाद इस साधन को देने का अधिकारी कौन होगा ?

गोस्वामीजी - जो व्यक्ति मेरे समान एकनिष्ठ होकर अविश्रान्त नाम स्मरण कर सकेगा ।

मैं - मैं देख रहा हूँ कि जो लोग यह दीक्षा पा रहे हैं, धीरे-धीरे उनके अंदर वैष्णव के संस्कार आ रहे हैं ।

गोस्वामीजी - **इसलिए तो इस प्रणाली की व्यवस्था की गई है । धर्म के छैः स्तर हैं । प्रथम-नीति धर्म । अनेक जन्म इस धर्म का पालन करने पर पंच-उपासना का अधिकारी होता है । अनेक जन्म पंच उपासना करने पर ब्रह्मज्ञान का अधिकारी होता है । ब्रह्मज्ञान भेद करने पर ''परमात्मा तत्व'' भेद करने से ''राधाकृष्ण तत्व'' प्राप्त होता है - इसके बाद ''श्री गौरांग तत्व'' की अनुभूति होती है । तुम लोगों को बोलने से तो कुछ करोगे नहीं इसलिए तुम लोगों को शक्ति संचारित करके ''नाम'' दे दिया गया है। इसी से धीरे-धीरे सब उपलब्धि होगी ।**

मैं - इस अविश्वासी युग में केवल मुँह से कही बातों पर मनुष्य विश्वास नहीं कर सकता ।

गोस्वामीजी - हाँ, मुँह की बातों से कुछ नहीं होता । सब अवस्थाओं के भीतर से नहीं जाने से धर्म असंपूर्ण रह जाता है । विश्वास दृढ़ नहीं होता ।

मैं - ब्राह्मलोग अभी धर्म के किस स्तर पर हैं ?

गोस्वामीजी - वे लोग अभी नीति धर्म के प्रतिपालन करने की चेष्टा कर रहे हैं ।

मैं - ब्राह्मगण अभी पाश्चात्य जाति के अनुसरण से जिस प्रकार समाज का गठन कर रहे हैं, उससे लगता है वे लोग ''नीति धर्म'' का ठीक-ठीक प्रतिपालन भी न कर सकेंगे ।

गोस्वामीजी - हाँ, नीति धर्म रक्षा करना कठिन है ।

उसी समय श्री मनोरंजन गुहठाकुरता* के पुत्र के अन्नप्राशन के

* वे गोस्वामीजी के शिष्य थे । उनकी धर्मपत्नी मनोरमादेवी को 36 घंटे तक समाधि लग जाती थी । ये बरिशाल जिला के वासी थे । गोस्वामीजी ने इन्हे ''आकाशवृत्ति'' का व्रत दिया था ।

उपलक्ष में गोस्वामीजी उनके घर में गये । उस समय एक वामाचारी साधू के वहाँ उपस्थित होकर शराब मांगने से गोस्वामीजी ने मंगवा दी । कुछ लोग इस कार्य की निंदा करने लगे, उससे मैंने मन में व्यथित होकर, गोस्वामीजी से पूछा ।

मैं - आपने शराबी को मद्य लाकर दिया, इससे कई लोग, कई तरह की बातें कह रहे हैं ।

गोस्वामीजी - अतिथि उपस्थित होने से उसका जो प्रयोजन हो, उसे देना चाहिए । खुद की रुचि के अनुसार अतिथि सेवा करना कर्तव्य नहीं है । अतिथि को नित्य पूजा के लिए मद्य की आवश्यकता होने के कारण मैंने मंगवा दिया । सब साधक की भजन प्रणाली एक समान नहीं होती । जो जिस पथ का पथिक है, उसे उसी प्रणाली अनुसार चलना चाहिये । दूसरों का अनुकरण नहीं करना चाहिए । उनके पथ में मद्य की व्यवस्था जरूरी है। इसलिए मद्य लाया गया था। अतिथि की प्रार्थनानुसार मद्य का शोधन भी किया गया ।

मैं - नशेबाज व्यक्ति नशा की वस्तु मांगे, तो उसे देना चाहिए या नहीं ?

गोस्वामीजी - जो लोग नशेबाज हैं, वे नशे की चीज न पाने से अत्यन्त कष्ट भोग करते हैं। यदि उन्हें वह चीज न दी जाय तो वे लोग चोरी तक करते हैं। बिना नशे की वस्तु पाये उनका बचना मुश्किल है । एक सच्ची घटना सुनो । एक सन्यासी अफीम एवं गाँजा पीता था । वह काफी समय तक गाँजा व अफीम न पाने से कष्ट से अधीर होकर एक तार के खंभे में आसन से आघात करने लगा और जोर-जोर से बोलने लगा-बेटी, तेरे सिर के बालों को खींचकर तेरी पिटाई करूंगा, यदि तू मुझे गाँजा नहीं देगी तो पीने का अभ्यास क्यों कराया ? उसी समय एक पुलिस एक चोर को पकड़कर ले जा रही थी। उसके पास से अवैध गाँजा एवं अफीम पाया गया था, अचानक पुलिस कर्मचारियों को शौच लगी, वे थोड़ी दूर में शौच करने चले गये । तब उस चोर ने साधू को कहा कि यहाँ मेरे पास काफी गाँजा एवं अफीम है। आप ले जाइये । साधू गाँजा पाकर बोला - बेटी, इतनी देर तक नहीं दिया तूने, अब मार खाने के डर से जल्दी दे दिया ।

मैं - अतिथि किसे कहते हैं ?

गोस्वामीजी - जो किसी भी दिन घर में नहीं आये हैं एवं क्षुधार्त हैं। भूख के समय संशोधन करने की चेष्टा करना निष्ठुरता है ।

गोस्वामीजी - जो केवल नशे के लिए मादक द्रव्य सेवन करता है, उसको मादक द्रव्य देना जरूरी नहीं है । मनुष्य बाहर का कार्य देखता है, भगवान अन्तर्दर्शी हैं, वे अन्तर का उद्देश्य देखते हैं । चोरी को लोग पाप कहते हैं, यह चोरी भी कई जगह में ईश्वर की दृष्टि से पुण्य के समान है ।

मैं - आपकी निन्दा सुनने से मन में खूब कष्ट होता है ।

गोस्वामीजी - जब कोई निन्दा सुननी पड़े तो उस स्थान को त्याग कर चले जाना, प्रतिवाद करने की जरूरत नहीं है । अहंकार, अभिमान अच्छी वस्तु नहीं है, इससे समस्त धर्म नष्ट हो जाता है । परनिन्दा करनी भी नहीं चाहिए, सुननी भी नहीं चाहिए ।

मैं - अहंकार, अभिमान कैसे दूर होता है ?

गोस्वामीजी - श्वाँस-प्रश्वाँस में नाम करना । जीवों की सेवा करना । पशु, पक्षी, कीट, पतंगों के चरणों में भी मन से नमस्कार करना। किसी को भी घृणा मत करना । अहंकार होने से सिद्ध योगी लोगों का भी पतन हो जाता है । गया धाम में एक बाबाजी थे। वे अति शक्तिशाली व्यक्ति थे । आकाश के पक्षीगण उनके आदेश से चोंच से जटा या कान साफ कर देते थे । रात्रि के समय शेर भी उनके पास नि:संकोच आते थे । विषधर सर्प भी चारों ओर घूमते थे । असमय में 200/300 अतिथि उपस्थित होने से वे बिना आसन से उठकर उन लोगों को पूड़ी, मिठाई इत्यादि भोजन करवा सकते थे । मैं उनके पास था इसलिए सब आँखों से देखा है ।

पानी की कमी होने से पहाड़ पर एक निर्दिष्ट स्थान मे उन्होंने दण्ड से आघात किया जिससे एक झरना प्रवाहित होने लगा । बाबाजी अपनी शक्तियों से अत्यन्त अहंकारी हो गए । वे दूसरे लोगों को तुच्छ समझने लगे ।

बाबाजी पहाड़ में अकेले रहते थे । बाबाजी के एक गुरुभाई ने अपनी मृत्यु के समय उनको कहा कि मैं शरीर त्याग कर रहा हूँ, मेरी पत्नी की तुम देख-रेख करना । बाबाजी उनकी विधवा पत्नी को अपने आश्रम में ले आये । लोगों ने प्रतिवाद किया । अहंकार-वंश वे अपने को माया-मोह के अतीत समझते थे। बाद में उनका पतन होने से सारी शक्तियाँ नष्ट हो गई। एक मुट्ठी अन्न के लिए लोगों के द्वार में भिक्षा तक मांगनी पड़ी । बाद में उस स्त्री का देहांत हो जाने से उनका मोह भंग हुआ एवं अनुताप करने लगे एवं फिर पुनः तीव्र तपस्या के लिए निःसंग निकल पड़े ।

मैं गोस्वामीजी के मुख से इन सब बातों को सुनकर अत्यन्त भयभीत हो गया एवं बोला, मैं अत्यन्त अपराधी एवं उच्छृंखल हूँ, आपने मेरी अनेक आपदाओं से रक्षा की है, आप मेरे प्रति कृपा दृष्टि रखें ....इत्यादि। गोस्वामीजी ने कहा कि तुम्हें कुछ भी बोलने की जरूरत नहीं है। जितना हो सके, भजन साधन करते रहो । मैं कुछ दिन गोस्वामीजी के पास रहकर सपरिवार बोलपुर लौट आया ।

सरलनाथ का आगमन

श्रीसरलनाथ गुह बरिशाल जिला के अन्तर्गत बानरीपाड़ा के वासी थे। वे मनोरंजन गुह के नजदीक के संबंधी थे । पाठ्यावस्था में इन्होंने ब्राह्मधर्म का अवलंबन किया था। बाद में इन्होंने गोस्वामीजी से दीक्षा ग्रहण की थी । ये शरीर से कमजोर थे, पढ़ाई लिखाई भी विशेष नहीं की थी एवं विवेक बुद्धि भी कम थी । उन्होंने कुछ दिन डाकघर में नौकरी की थी। गोस्वामीजी ने कहा था - तुम ठीक से हिसाब करना नहीं जानते, सरकारी काम करके जेल जाने की इच्छा है क्या ? नौकरी छोड़ दो ।

सरलनाथ नौकरी छोड़कर गोस्वामीजी के पास ही रहने लगे । बाजार या अन्य कोई काम करने की उनकी कोई क्षमता नहीं थी । गोसाँईजी के शौचालय में पानी वगैरह भर देते थे । वहाँ जाने के रास्ते को किसी के भी कपड़े को लेकर साफ कर देते । दूसरे के कपड़े इस तरह बिना पूछे नहीं लेना चाहिए - यह विवेकबुद्धि उनमें नहीं थी ।

सरलनाथ भजन साधन कर नहीं सकते थे । जब अपने आप भीतर से नाम होता, तब उनका भजन होता । बैठकर आसन में नाम करना उनकी क्षमता के बाहर की चीज थी ।

कलकत्ते में गुरुभाई के साथ रहने में अशान्ति होने से वे बोलपुर चले आये । पंडित जी के आश्रम के बाजू में एक अलग कमरे में सरलनाथ रहने लगे । दोनों ही भिक्षा करके अपने-अपने कमरे में रसोई बनाकर प्रसाद पाते थे । बीच-बीच में चावल, दाल बनाते समय जल जाता था, इसलिए पंडितजी सहायता करते थे ।

सरलनाथ नाम संकीर्तन अच्छा कर लेते थे । उनके आने से नाम संकीर्तन खूब जोर-शोर से होने लगा । सरलनाथ को भी खूब भावावेश होता था । सरलनाथ के दोनों हाथ पीछे घूमकर पक्षियों के पंखों के समान हो जाते थे एवं वे विचित्र गति से आवाज करते हुए आगे पीछे चलते । पंडितजी का शरीर एक नाव के समान तीव्र वेग से बैठक घर के एक छोर तक बार-बार दौड़ने लगता । पंडितजी का पीठ का हिस्सा भूमि में संलग्न हो जाता था। हाथ पाँव उपर की तरफ मुड़कर शरीर एक नाव का आकार धारण करता । शरीर की इस प्रकार की गति संपूर्ण असंभव है । परन्तु भाव की विचित्र गति होती है - **जो व्यक्ति स्वयं अपनी आँख से इन दृश्यों को नहीं देखा है, वह इसे समझ या विश्वास नहीं कर सकता ।** कितने प्रकार की अंग चेष्टाएँ होती थी? उनको लिखकर समझाना कठिन है । बालक-बालिका गण अज्ञान होकर दिवाल टेककर मूर्त्तिवत् खड़े रहते। ऐसा लगता था कि उन्हें बोल्ट से कस दिया गया है। पुकारने पर भी कोई उत्तर नहीं देते थे। हाथ से हिलाने पर भी चेतना नहीं आती थी । बाजू की कोठी में स्त्रियों के रोने की आवाज आती । मैं इन सब घटनाओं को देखता और भक्तवृन्दों की यथोचित सेवा सुश्रुषा करता ।

उस समय मैं प्रायः आश्रम में रहकर भजन-साधन करता । जागतिक कार्य कम हो गया था। दिन भर वहाँ रहकर सब कोई शाम को घर में आते एवं कीर्तन शुरु हो जाता ।

सरलनाथ दोपहर में मूलूक ग्राम में मृदंग बजाने की शिक्षा लेने जाते। शाम को संकीर्तन में आते । बोलपुर के जन साधारण लोग

सरलनाथ को अत्यन्त श्रद्धा करते । उनका तीव्र वैराग्य एवं विशुद्ध चरित्र देखकर कोई मोहित हो जाते । सरलनाथ की संकीर्तन में भावावेश की बात गोस्वामीजी को बताने से उन्होंने कहा था ''सरलनाथ के शरीर में गरुड़जी का आवेश होता है''। उस समय मैं उन सब भक्तों के साथ बड़े ही आनन्द में था - मन में सदा शान्ति एवं उमंग विराजमान रहती।

आसन प्राप्ति

दुर्गा-पूजा की छुट्टी में गोस्वामीजी के दर्शन के लिए कलकत्ता गया। बोलपुर के कीर्तन की सब घटनाओं को उन्होंने सुना । मैंने पूछा-

मैं - बोलपुर में इतना कीर्तन होता है, सब लोग भाव में गद्गद् हो जाते हैं। अदीक्षित लोग भी बेहोश हो जाते हैं। मैं शुष्क लकड़ी के समान नीरस खड़ा होकर देखता रहता हूँ । ऐसा क्यों होता है ? मुझे संकीर्तन-झाँझ, मृदंग की ध्वनि में भी मिठास अनुभव नहीं होता ।

गोस्वामीजी - कोई मधुमक्खी के छत्ते में छेद कर दे तो यदि छत्ते में मधु हो तो, मधु प्राप्त होता है, और यदि छत्ते में मधु न हो तो केवल मधुमक्खी के काटने की जलन का अनुभव उसे होगा । मैं समझ गया, कि मेरा अन्तर (हृदय) शुष्क है, इसलिए मेरी ऐसी दुरावस्था है । जिस कीर्तन को पाषन्डी (पापी) व्यक्ति भी सुनकर मोहित हो जाता है, मेरे दुष्ट मन में उसका कोई प्रभाव नहीं होता । मैंने फिर पूछा -

मैं - यह दुरावस्था कैसे दूर होगी ? मधु संचय कैसे हो सकता है ?

गोस्वामीजी - **श्वाँस-प्रश्वाँस में अविश्रान्त (अविराम) नाम करते रहो। नाम के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है। नाम से सब दुरावस्था दूर हो जायेगी ।**

गोस्वामीजी के आसन के लिए एक मोटा कम्बल चार तह करके बिछाया जाता था। उसके ऊपर एक गेरुआ कपड़ा बिछाया जाता था । इस आसन के ऊपर वे दिवारात्रि रहते थे ।

एक दिन 'भक्तमाल' की चर्चा हुई। भक्तों के प्रसंग होने लगे । मैंने कहा - भक्त तो हनुमानजी हैं जो छाती चीरकर 'राम' नाम दिखलाये थे।

तब गोस्वामीजी ने कहा - छाती को चीरने की आवश्यकता है ? ऐसे ही दिखता है । उसके थोड़ी देर बाद उन्होंने निकट बुलाया, मैं उनके पास जा बैठा, उन्होंने आसन की ओर देखने के लिए कहा । मैंने देखा आसन में ''कृ'' के दाहिने ओर थोड़ा ''उभार'' (उठा हुआ) सा दिखा। मैंने पूछा - यह क्या है ? उन्होंने कहा शायद ''कृष्ण'' हो जायेगा। देखते-देखते वह ''ष्ण'' युक्त होकर ''कृष्ण'' शब्द बन गया । मैं देखकर आश्चर्यचकित हो गया । थोड़ी देर बाद आसन में राधाकृष्ण की एक सुन्दर छवि दिखी । एक डंडी से युक्त कमल के फूल के ऊपर राधाकृष्ण के युगल विग्रह की छवि दिखी । एक ही वंशी दोनों ने धारण की है, किसी चित्रकार की क्षमता नहीं है कि इतना सुन्दर चित्र बना सके ? मैंने कहा - मैंने सुना है कि आपके शरीर में भी देवमूर्त्ति के चित्र दिखते हैं । उन्होंने कहा कि हाँ, पहले मैं यह सब कुछ नहीं समझता था। अब देख रहा हूँ कि सब सत्य है । यह बात कहते कहते देखा कि राधाकृष्ण का एक सुन्दर चित्र गोस्वामीजी के दाहिने घुटने में दिखा। फिर थोड़ी देर बाद नित्यानंद एवं चैतन्य महाप्रभु की छवि आसन पर दिखाई दी। मैंने गोस्वामीजी से पूछा -

मैं - यह सब क्या हो रहा है ? कुछ समझ में नही आ रहा है ?

गोस्वामीजी - यह सब भगवत नाम की महिमा है । भगवत् भक्त के रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा सबमें भगवत् नाम अंकित हो जाता है । भगवत् भक्त जो वस्त्रादि धारण करता है, वह भी नामांकित हो जाता है, जिस वृक्ष की डाली, पीड़, पत्ते में तथा जिस गृह में भक्त भजन करता है उसके दिवाल व अन्य जगहों में भी भगवत्नाम हो जाता है । श्री वृन्दावन धाम में एक वैष्णव की एक अस्थि मिली थी, जिसमें 'हरे कृष्ण' नाम खुदा हुआ था ।

गोस्वामीजी- जिस घर में रहते थे, उस घर में दिवाल में एक चित्रपट लगा हुआ था । इन सब कथोपकथन के बाद गोस्वामीजी ने उस चित्र पट को देखने के लिए कहा । उस चित्रपट में एक वैष्णव महात्मा का चित्र था जिनकी पहनी हुई अलफी में छोटे-छोटे देवमूर्त्ति के चित्र थे । मैंने गोस्वामीजी से इन महात्मा का परिचय पूछा । उन्होंने कहा कि वृन्दावन में ''नागाजी'' नाम के एक वैष्णव रहते थे। वे

प्रतिदिन वृन्दावन परिक्रमा करते थे। एक दिन परिक्रमा के समय उनकी जटा एक वृक्ष की डाली में अटक जाने से वे आगे नहीं जा सके, तब वे स्थिर होकर जप करते हुए वहीं खड़े हो गए। उन्होंने सोचा कि जिन्होंने इस जटा को यहाँ फँसा दिया है, यदि वे आकर खोलें, तभी आगे बढ़ूंगा । तीन दिन बाद ग्वाल बाल के रूप में स्वयं श्रीकृष्ण ने आकर उनकी जटा खोलना शुरु किया । तब वे उन्हें पहचान कर कहने लगे - अरे लाला, तेरा मुकुट कहाँ, तेरी वंशी कहाँ ? तेरा नूपुर कहाँ ? तब भगवान् ने उन्हें अपने निज स्वरूप में दर्शन दिया।

गोस्वामीजी ने पहले ही मुझे कहा था कि श्री वृन्दावनधाम अप्राकृत स्थान है। यहाँ के वृक्षों में भी भगवत् नाम लिखा हुआ है । मुझे इन बातों पर तनिक भी विश्वास न था । मैं माया बद्ध जीव हूँ। अध्यात्म राज्य की घटनाओं को मैं अपनी क्षुद्र बुद्धि, विचार से कैसे जान सकता हूँ? मैं स्वयं को बड़ा बुद्धिमान समझता था और अपनी निर्बुद्धिता के कारण गोस्वामीजी के ऊपर कटाक्ष करता था। उनके द्वारा किये गए कार्यों एवं बोले गये वाक्यों में हर समय गल्तियाँ ढूँढने की चेष्टा करता । गोस्वामीजी के शरीर, आसन, वस्त्र में भगवान के नाम व चित्र अंकित देखकर वृन्दावनधाम के वृक्षों में भगवत् नाम का होना, सत्य प्रतीत होने लगा । इस बात की मुझे यथार्थ प्रतीति हुई कि जिन लोगों की दिव्य दृष्टि है, वे ही अलौकिक वस्तुओं को देखने के अधिकारी हैं। जिनका सौभाग्य है, जिन पर भगवान की कृपा है, वे ही इन सब बातों को हृदयंगम कर सकते हैं । कुछ लोग जगन्नाथपुरी जाकर जगन्नाथजी के दर्शन का आनन्द लेते हैं और कुछ लोग सैर, सपाटा, मौज मस्ती करके पुरी घूम आते हैं ।*

गोस्वामीजी को एक दिन मैंने कहा -

दुर्देव में सेवक यदि जाये अन्य जगह में ।

धन्य वह प्रभु जो बाल पकड़कर लाए सही स्थान में । (चै. चः)

---

* श्री लघुभागवतामृत में है -
वैश्लेषिक क्लमोद्रेक विवशी कृतचेतषाम् ।
प्रेष्ठानाम् सहैवाग्रे व्यग्रः प्रादूर्भवेदसौ ॥

गोस्वामीजी; मैं तो जहन्नुम में चला गया था। मैंने न जाने कितने अपराध किये हैं ? मेरा तो महारौरव नरक में स्थान होता । आप परम दयालु हैं, मेरे बालों को मुट्ठी में पकड़कर कृपा करके, अपने चरणों में मुझे स्थान दिया है । आप यदि मुझे न पकड़ते तो मेरी रक्षा होनी असंभव थी। आपको और मैं क्या बोलूँ ? आपने तो मेरा सब भार ग्रहण कर लिया है । अब आप मुझे कृपा करके कम से कम अपने नित्य व्यवहार की वस्तुओं में से कुछ प्रदान करें । गोस्वामीजी मेरी करुण प्रार्थना सुनकर अपने आसन से उठ गए एवं थोड़ी देर बाद आकर जिस गेरूए वस्त्र में भगवत् नाम एवं मूर्त्ति के चिन्ह उभरे थे, उस वस्त्र-खंड को अपने आसन से उठाकर मुझे प्रदान किया । मैंने उस वस्त्र खंड को अपने मस्तक में ग्रहण कर लिया एवं बोलपुर लाकर अब तक यत्नपूर्वक उसकी पूजा करता हूँ ।

चैतन्यचरितामृत में लिखा है -

लोग नहीं जाने, देखे शास्त्रों में न जाये सुनी ।

ऐसे सब भाव व्यक्त करते, गौरांग चूड़ामणि ॥

गोस्वामीजी जहाँ अपने चरण धोते थे, वहाँ पानी सूख जाने के बाद, कभी-कभी देवमूर्त्ति अंकित हो जाती थी । मैंने गोस्वामीजी से पूछा-

मैं - श्री चैतन्य चरितामृत में चैतन्य महाप्रभु के विविध प्रकार के भावों के विषय में पढ़ा हूँ। परन्तु यहाँ जो देख रहा हूँ, इस प्रकार का वर्णन तो वहाँ नहीं दिया गया है ।

गोस्वामीजी - भाव के विकारों का वर्णन करना असंभव है ।

इसमें शरीर में अंग-प्रत्यंग टूटकर अलग हो सकते हैं और फिर स्वस्थान में जुड़ सकते हैं । श्रीमन् महाप्रभु को इस प्रकार का भाव होता था, परन्तु वे अपने भावों को संवरण करके रखते थे । उसके बाद भी जो कुछ प्रकाशित होता था उससे ही भक्तगण शोक, दुःख से व्यथित हो जाते थे ।

मैं - हम लोगों में से किसी-किसी को खूब भावावेश होता है, और किसी को एकदम कुछ नहीं होता। ऐसा क्यों होता है ?

गोस्वामीजी - जिनके शरीर की संरचना अनुकूल होती है, प्रबल गुरुशक्ति के प्रभाव से उनको भावावेश होता है। जिनके शरीर की संरचना अनुकूल नहीं है एवं जिनके अन्दर गुरुशक्ति प्रबल नहीं हुई है - उनको भावावेश नहीं होता ।

मैं - विभिन्न लोगों को विभिन्न प्रकार का ''भाव'' होता है, ऐसा क्यो ?

गोस्वामीजी - **''भाव'' तीन प्रकार के होते हैं । सात्विक, राजसिक एवं तामसिक । सात्विक भाव मनोमुग्धकारी होता है। इसके दर्शन करने से भी उपकार होता है। राजसिक भाव उस प्रकार मनोमुग्धकारी नहीं होता, उससे कभी-कभी लोगों का उपकार होता है, कभी नहीं होता। इस भाव में मुख्यत: तेज की क्रिया ही दिखाई पड़ती है । तामसिक भाव उत्त्पातजनक है । तमोगुण के नृत्य अधिकतर बिना ताल के उछल-कूद सरीखे होते हैं । नृत्यकारी के पदाघात से घर के सामान वगैरह कभी टूट जाते हैं। दर्शकों के ऊपर गिर जाने से वे आघात पाते हैं । बालकगण भय पाकर चीत्कार करने लगते हैं ।**

मैं - स्वयं चेष्टा करके भाव लाना उचित है कि नहीं ।

गोस्वामीजी - कदापि नहीं ।

मैं - ''भाव'' प्रगट होने पर यथासाध्य संवरण करने की चेष्टा करना ही कर्तव्य है । जब क्षमता न रहे, तब उसे होने देना चाहिए । विरूद्धवादी लोगों के सामने यथासाध्य भाव को रोक लगाना ही उचित है।

मैं - भाव प्रगट होने से हम लोगों को किस प्रकार का आचरण करना उचित है ?

गोस्वामीजी - **भाव की मर्यादा रखना कर्तव्य है। भाव बड़ी कठिन वस्तु है । थोड़ा सा अनादर या अमर्यादा होने से यह चली जाती है। भाव सामान्य वस्तु नहीं है। यह सहज में प्राप्त नहीं होती । भक्ति रसामृतसिंधु ग्रन्थ में लिखित है -**

क्षातिर व्यर्थ कालत्वं विरकिनर्मान शून्यता
आशाबद्ध समुत्कंछा, नामगाने सदा रूचि: ।
आसक्तिनस्तदू पाख्यानें, प्रातिस्त वसती स्थले
इलादयोनुभाव: स्यु: जात भावांकुरे जंने ।

भाव का अंकुर मात्र जन्म होने से कई लक्षण प्रकाशित होते हैं, जैसे- वे क्षमाशील होते हैं अर्थात् निर्यातन या अपमान करने पर भी वे शक्ति रहने से भी प्रतिशोध नहीं लेते हैं । क्षोभ के कारण उपस्थित होने से भी शान्त रहते हैं । भगवत् संबंधित कार्य के बिना, वृथा कार्यो में समय नष्ट नहीं करते । उनके मन में वैराग्य का प्रकाश रहता है। संसारासक्ति नहीं रहती। स्वयं को दीन-हीन समझते हैं। भगवान् उन पर अवश्य कृपा करेंगे - इस उत्कंठा से वे जीवन-यापन करते हैं। सदा सर्वदा भगवान के नाम-गान में उनकी रुचि होती है। भगवान् के गुण व कीर्त्तन में आसक्ति होती है एवं उनकी भजन-स्थली में उनकी प्रीति उदय होती है ।

मैं - हम लोगों के बीच अनेकों के भीतर, ये सब लक्षण नहीं दिखते परन्तु संकीर्तन में उनका खूब ''भाव'' होता है, ऐसा क्यों ?

गोस्वामीजी - प्रबल गुरुशक्ति के प्रभाव से संकीर्तन में चित्त विचलित होकर इस प्रकार का भाव प्रगट होता है किन्तु परिपक्व नहीं होने से ये सब भाव स्थायी नहीं होते हैं । भजन न करने से या अपराध होने से गुरुशक्ति म्लान हो जाती है एवं भाव भी खत्म हो जाता है ।

मैं - ''भाव'' होने से कोई लाभ होता है ?

गोस्वामीजी - हाँ, इससे शरीर के गुणत्रय नष्ट होते हैं एवं आत्मा भी कामक्रोधादि अशेष बंधन से विमुक्त होती है ।

मैं - अनेक व्यक्ति भावावेश के प्रति अश्रद्धा रखते हैं । वे लोग बोलते हैं कि भावुकता से ही देश का सर्वनाश हो रहा है । इससे भारतवासी जड़ प्रकृति ग्रस्त हो रहे हैं । कर्म ही मनुष्य जीवन के महत्त्व का परिचायक है ।

गोस्वामीजी - जो लोग इस प्रकार की बातें बोलते हैं, उन्हें धर्म की कोई जिज्ञासा ही उत्पन्न नहीं हुई है । वे लोग नित्य-बद्ध जीवन में हैं, विभिन्न योनि भ्रमण करके, अशेष संसार यंत्रणा ही भोग करते हैं ।

मैं - तो क्या मनुष्य कर्म नहीं करेगा ?

गोस्वामीजी - मनुष्य कर्म के बिना रह ही नहीं सकता। भगवान जिसके द्वारा जो कार्य कराना चाहते हैं, वह काम उसे करना ही होगा ।

मैं - कर्म खत्म हो रहा है, कब जान सकेंगे ?

गोस्वामीजी - जब कामना वासनायें नहीं रहेंगी ।

मैं - कर्म के द्वारा कार्य समाप्त नहीं होता ?

गोस्वामीजी - कर्मद्वारा कर्मबंधन बढ़ जाता है । निष्काम कर्म के द्वारा कर्म समाप्त हो सकता है परन्तु वासना के रहते निष्काम कर्म करना कठिन है ।

मैं - वासना की निवृत्ति किससे होगी ?

गोस्वामीजी - श्वाँस-प्रश्वाँस में नाम के द्वारा ।

इसके बाद कुछ दिन आश्रम में आनन्द से बिताकर गोस्वामीजी के दिए हुए आसन के वस्त्र को सिर में बाँधकर उनकी अनुमति लेकर बोलपुर चला आया ।

श्री अद्वैत प्रभु के जन्मोत्सव करने की आदेश प्राप्ति

1896 के दिसम्बर में बड़े दिन की छुट्टी में, 45 नं. हैरिसन रोड़ स्थित घर में, कलकत्ते में उनसे मिलने गया । पहले जो सब बाह्य अवस्थायें उनकी अप्रकाशित थी, वे सब क्रम से दिखने लगी । वे सर्वदा महाभाव में विभोर होकर रहते थे । नाम समाधि पुनः-पुनः होने लगती । लोगों के साथ सब समय बातचीत नहीं कर पाते थे । दो-एक बात शिष्यों के साथ न करने से शिष्यगण दुःखी होंगे, इसलिए वे मुश्किल से इच्छा न होते हुए भी बात करते थे । भाव को रोकने की चेष्टा करने से उनका मुखमंडल एवं चक्षु लाल हो जाते थे । पुस्तक में पढ़ा था, जगाई-मधाई को कृपा करने से महाप्रभु का शरीर काला पड़ गया था । **गोस्वामीजी भी दीक्षा देने के बाद प्रायः अस्वस्थ हो जाते थे।** शिष्यों के पाप ताप सद्गुरु ग्रहण करते हैं ।

गोस्वामीजी रोज भक्ति-ग्रंथ, भावगत् आदि पाठ करते थे । वे बोलते थे ''शास्त्र अक्षर नहीं है, पुस्तक या श्लोक नहीं है। प्रत्येक शब्द या श्लोक का रूप है। वे सब जीवन्त हैं। मैं जब शास्त्र पाठ करता हूँ, तब पक्षियों के झुंडो की भांति श्लोक सब मुझसे अपना स्वरूप प्रकाशित करते हैं। काम, क्रोध आदि दुर्गुणों के भी रूप हैं।

सत्व, रज, तम गुणों के भी रूप हैं । इन्हें सब देख सकते हैं''। ये सब विषय साधारण ज्ञान-बुद्धि की समझ के परे हैं, परन्तु गोस्वामीजी के पास रहने से, उनकी सब अवस्थाओं को देखने से, इन सब बातों पर अविश्वास करना कठिन है।

एक दिन रात्रि के 3 बजे हैं, गोस्वामीजी योगासन पर बैठे हैं । हम लोग, कुछ गुरुभाई रजाई ओढ़कर उनके पास सोये हुए हैं, उसी समय वे हट जा चुड़ैल, भाग जा''इत्यादि उच्च स्वर में कहकर डाँटने लगे । मुझे लगा जैसे गोस्वामीजी स्वप्न देखकर इस प्रकार चीत्कार कर रहे हैं। परन्तु गोस्वामीजी तो निद्राजित हैं, वे तो निद्रा नहीं लेते। फिर इस प्रकार क्यों चीत्कार कर रहे हैं ? क्या वे आसन पर बैठकर निद्रा लेते हैं ? मन में सन्देह होने से मैंने पूछा -

मैं - आप तो किसी को अप्रिय वाक्य नहीं बोलते हैं, अभी आप किसको डाँट रहे थे ?

गोस्वामीजी - तुम सब लोगों को निद्रित देखकर एक प्रेत घर के अन्दर प्रवेश कर रहा था। उसने लक्ष्मी का रूप धारण किया था। मुझे शंका हुई कि अभी लक्ष्मीजी क्यों आ रही हैं ? बाद में पता चला कि वह प्रेत है । पहले उसे घर में आने के लिए बार-बार निषेध किया पर जब वह नहीं माना तब उसे डाँटकर भगा दिया ।

मैं - प्रेत घर के अन्दर क्यों आ रहा था ?

गोस्वामीजी - इस व्यक्ति का पहले धर्मभाव था। कुछ अपराध हो जाने से वह प्रेत योनि को प्राप्त हुआ है । प्रेतगण सदा ही कष्ट भोगते रहते हैं। यदि किसी भक्त के अन्दर प्रविष्ट होकर रह सके तो उसे आराम मिल सकता है। इसी कारण तुम लोगों को निद्रित देखकर तुम लोगों में से किसी के अंदर घुसने की इच्छा से वह आया था ।

मैं - जहाँ भगवत नाम सब समय चल रहा है, वहाँ प्रेत कैसे आकर किसी के अंदर घुस सकता है ?

गोस्वामीजी - जब तक नाम होता रहे, तब तक तो वह आ नहीं सकता परन्तु नाम के बंद होने से वह प्रविष्ट हो सकता है ।

मैं - प्रेत, देह के अंदर घुसने से क्या नुकसान होता है ?

गोस्वामीजी - जिसके अंदर प्रेत घुस जाता है, वह शरीर से कमजोर हो जाता है। वह भजन साधन ठीक से नहीं कर पाता है परन्तु प्रेत बड़े आराम से रहता है ।

मैं - प्रेत, लक्ष्मी के रूप में आया था, आपने किस प्रकार जाना?

गोस्वामीजी - प्रेतगण सभी देवताओं के रूप धारण कर सकते है परन्तु उनके 'चिन्ह' धारण नहीं कर सकते । लक्ष्मी के गले में पुष्पमाला मुरझायी हुई थी। इससे मैं समझ गया कि यह लक्ष्मी नहीं है, एक प्रेत है।

मैं - मैंने सुना है कि मनुष्य साधन बल से प्रेतसिद्ध हो सकता हैं। प्रेत उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करता है, क्या यह सत्य है ?

गोस्वामीजी - हाँ, सत्य है । वृन्दावन में एक प्रेतसिद्ध था। जिसका नाम नारायण स्वामी था। वह सबको 'नारायण' का दर्शन कराकर रुपया कमाता था। कई लोग उसके शिष्य भी हो गये थे । मैंने एक दिन 'नारायण' दर्शन करने की इच्छा प्रगट की। उन्होंने मुझे एक कमरे में ले जाकर 'नारायण' के दर्शन कराये । मैं समझ गया कि यह प्रेत है । मैं नाम जप करने लगा । प्रेत चिल्लाकर भागा कि तू मुझे क्यों भगवान के भक्त के पास लाया ? प्रेतसिद्ध जो होते हैं, वे सर्वदा अशुचि रहते हैं । मैंने नारायण स्वामी के कान में थोड़ी विष्ठा लगी देखी । मैंने उनसे कहा, आप क्यों लोगों को बेवकूफ बनाकर 'नारायण' दिखाने का काम करके अर्थ उपार्जन कर रहे हैं ? वह व्यक्ति मेरे पैर पकड़कर कहने लगा कि कृपया आप इस बात को प्रकाशित मत कीजिएगा । मैं जितने दिन वृन्दावन में था, किसी को नहीं बोला पर बाद में सब लोग जान गये थे।

मैं - मैंने सोचा था आप स्वप्नावस्था में चिल्ला रहे हैं । क्या आप बिल्कुल निद्रा नहीं लेते हैं ?

गोस्वामीजी - मैं बिल्कुल नींद नहीं लेता। स्वप्न भी नहीं देखता हूँ।

मैं - क्या निद्रा के अभाव में शरीर में कोई असुविधा नहीं होती ? हम लोग एक रात जगने से तीन दिन तक उसकी प्रतिक्रिया चलती रहती है।

गोस्वामीजी - मुझे कोई ग्लानि नहीं होती । जंभाई भी नहीं आती है ।

मैं - मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट यहाँ तक कि वृक्षलता भी सोते हैं। अभी तक किसी को न देखा, न सुना जो निद्रा न लेता हो । केवल रामायण में पढ़ा था कि लक्ष्मण बारह वर्ष तक निद्राजय किये थे ।

गोस्वामीजी - नामामृत पान करने से क्या आँखों में नींद आती है ? शरीर में क्या आलस्य आ सकता है ? नाम सर्वशक्ति समन्वित है- नाम के द्वारा ऐसी कुछ भी चीज नहीं है जो न हो सकती हो ।

मैं - 'नाम' करने का कोई विशेष समय है ?

गोस्वामीजी - **नहीं । अविश्रान्त नाम करो । पहले-पहले नाम करना कठिन मालुम पड़ता है । श्वाँस जैसे रुक जाती है, शरीर में जैसे काँटे चुभ रहे हों परन्तु नाम करते-करते सब ठीक हो जाता है। रात्रि डेढ़ से चार बजे तक महापुरुषगण सूक्ष्मदेह में विचरण करते हैं। उस समय नाम करने से उनकी सहायता प्राप्त होती है । निद्रा लेने या कुकर्म करने से वे चले जाते हैं ।**

मैं - महात्माओं का आगमन कैसे जाना जा सकता है ?

गोस्वामीजी - कभी-कभी फूल की सुगंध, कभी हवन की गंध, या कभी गाँजा की गंध विस्तार करके महापुरुषगण अपने आगमन का आभास देते हैं। साधन करते वक्त इस प्रकार गंध आने से समझना चाहिये कि महापुरुषगण आये हैं । आपने क्या ऐसी गंध का अनुभव नहीं किया है ?

मैं - मैंने कई बार ऐसी गंध का अनुभव किया है परन्तु वह महापुरुषों के आने का इंगित है, ऐसा मैं नहीं जानता था ।

गोस्वामीजी - नाम की कभी भी अवहेलना (अमर्यादा) नहीं करना चाहिए । ऐसी अवस्था आयेगी, जब नाम किये बिना रह नहीं सकेंगे ।

मैं - किससे नाम की कृपा होगी ?

गोस्वामीजी - श्रद्धापूर्वक नाम करते-करते नाम की कृपा होती है।

मैं - पर संशय तो जाता ही नहीं ।

गोस्वामीजी - **संशय आत्मा की एक अवस्था है। जैसे काम, क्रोध इत्यादि भीतर रहने से किसी भी प्रकार उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार संशय रहने से उसे नष्ट करना कठिन है एक मात्र श्वाँस प्रश्वाँस में नाम करने से संशयजनित पाप विनष्ट होंगे एवं अपने आप प्रेम, भक्ति, विश्वास, पवित्रता आयेगी । इसे छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है ।**

कुछ दिन और आनन्दपूर्वक छुट्टी बिताने के बाद मैंने बोलपुर जाने की अनुमति मांगी ।

गोस्वामीजी - जाइये, बोलपुर जाकर श्री अद्वैतप्रभु का जन्म महोत्सव कीजिए ।

मैं - मेरे पास विशेष रुपयों का जुगाड़ नहीं है, कैसे जन्मोत्सव करूंगा ?

गोस्वामीजी - किसी प्रकार व्यवस्था हो जायेगी, अधिक खर्च करने की आवश्यकता नहीं है । सामान्य भाव से उत्सव करने से ही होगा ।

मैं - मैं तंत्र, मंत्र, नियम, प्रणाली कुछ भी नहीं जानता हूँ। कैसे, क्या करना है, बताइये ?

गोस्वामीजी - अधिक कुछ करने की आवश्यकता नहीं है । तीन प्रभुजी (चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत) के आसन लगाकर उन आसनों के सम्मुख में भोग की थाली लगा देना । किवाड़ बन्द करके ''भोग आरती'' का गान करना । इतना ही पर्याप्त है ।

इस सब वार्तालाप के बाद मैं बोलपुर लौट आया ।

श्री अद्वैत प्रभु का जन्मोत्सव

बोलपुर लौटकर अपने भजन साधन का समय और बढ़ा दिया । सरलनाथ एवं पंडित श्यामाकान्तजी का संग मिलने से मुझे बहुत ही लाभ हुआ। गुरु की परीक्षा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति गुरु की परीक्षा करता है, गुरु भी उसकी विशेष परीक्षा करते हैं । एक बार पंडितजी ने आप बीती सुनाई थी - एकबार गोस्वामीजी वृन्दावन में थे । पंडितजी ढाका में थे। उनके पास रुपये पैसे नहीं थे। उन्होंने रुपया किसी से नहीं मांगा । एकाकी पैदल चलते। रास्ते में भिक्षावृत्ति से किसी न किसी

प्रकार से भोजन व रात्रिवास का स्थान भी मिल जाता था । एक दिन उन्होंने गुरु की परीक्षा करने की सोची । उन्होंने किसी से कुछ नहीं मांगा। सोचा, यदि गुरुजी स्वयं व्यवस्था करेंगे तो भोजन करेंगे । उस दिन उन्हें कहीं भी आहार नहीं मिला । रात्रि में एक कृषक के टूटे घर में रहने के लिए आश्रय लेने गये तो उसने भी उन्हें भगा दिया। पंडितजी रास्ते के किनारे पड़े रहे ।

प्रातः काल में उन्होंने फिर पैदल चलना शुरु किया। उस दिन भी दोपहर को कहीं आहार न मिला । शाम के समय क्लान्त एवं क्षुधा से ग्रस्त हो गये। बेहोशी सी आने लगी । वे एक दुकान से लाचार होकर एक मुट्ठी चिवड़ा मांगने गये। दुकानदार उन्हें लाठी मारने को दौड़ा। अंत में संध्या समय एक धर्मशाला में उपस्थित हुए। वहाँ कुछ साधू बैठे थे । पंडितजी ने उनसे कहा ।

पंडितजी - मुझे कुछ भोजन की व्यवस्था कर दीजिए ।

साधुगण - तुम कौन हो ?

पंडितजी - हम बंगाल के साधू हैं ।

साधुगुण - तुमने कुछ शास्त्र पाठ किया है ?

पंडितजी - हम बहुत भूखे हैं। मेरे प्राण निकल रहे हैं। कुछ भोजन दीजिए। बाद में जो पूछना है, पूछिये। बाद में पंडित जी समझ गए कि वे उन्हे जब तक साधू नहीं समझेंगे तब तक भोजन नहीं देंगे । तब -

पंडितजी - हमने बहुत शास्त्र पाठ किया है ।

साधूगण - गीता पाठ किया ?

पंडितजी - हाँ, पाठ किया ।

साधूगण - अच्छा, हमें गीता पाठ करके सुनाओ ?

अंत में पंडितजी को गीता के कुछ श्लोक सुनाने पड़े, तब जाकर साधुओं ने उन्हें आहार दिया । उससे पंडित जी के प्राणों की रक्षा हुई। गुरु की परीक्षा करने की जो इच्छा उनके मन में उदय हुई थी - वह खत्म हो गई, वे बड़े संतुष्ट हुए । उसके बाद कानपुर में पहुँचने से गुरुभाई मन्मथ बाबू ने उनको वृन्दावन ट्रेन से भेज दिया ।

एक कहावत है स्वभाव मरने से भी नहीं जाता और इच्छा धोने से नहीं जाती। यह मिथ्या नहीं है। मैं भी गुरु की परीक्षा करने के लिए कृत संकल्प हुआ । गोस्वामीजी ने उत्सव करने के लिए कहा परन्तु मैंने उसकी कोई चेष्टा नहीं की । कुछ गिरवी रखकर भी उत्सव को संपन्न कर सकता था। पर कुछ नहीं किया एवं अर्थ संग्रह की कोई चेष्टा भी नहीं की । उत्सव आरंभ होने के चार दिन पहले पलसा निवासी श्री अद्वैत चन्द्र राय ने नब्बे रुपये देकर मुझे कहा - आपके दिये कर्ज में से ये रुपये रखिये, बाकी बाद में चुका दूंगा । मुझे ये रुपये मिलने से बड़ा आनन्द हुआ। गुरु वाक्य की सत्यता की उपलब्धि हुई। मैं जल्दी-जल्दी उत्सव व संकीर्तन की व्यवस्था करने में लग गया । मेरे अन्तर की दुरावस्था जानकर गोस्वामीजी ने मेरी इस घृष्टता को क्षमा कर दिया ।

माघी सप्तमी, श्री अद्वैत प्रभु के जन्म दिवस के उपलक्ष में उत्सव प्रारंभ हुआ । भोग, पूजा, आरती सब की सामर्थ्यानुसार सुंदर व्यवस्था की गई । 7 दिन तक अद्भुत उत्सव हुआ । सुबह मंगल आरती व प्रभाती गायन, प्रातः बालभोग होकर संकीर्तन प्रारंभ, दोपहर को भोग एवं आरती गायन, प्रसाद वितरण व आहार की व्यवस्था । फिर शास्त्र पाठ, संध्या आरती के बाद संकीर्तन प्रारंभ, रात्रि के दो प्रहर के समय भोग फिर प्रसाद । उस समय व्यवसायिक लोगों को बुलाकर (रुपये देकर) कीर्तन गान नहीं कराया जाता था । केवल यहाँ के युवकगण संकीर्तन करते थे।

मेरे सहायक कर्मचारी राखाल चक्रवर्ती मृदंग के अद्वितीय वादक थे। उसके हाथ एवं अंगुलियाँ जैसे लोहे की बनी हुई थी - दीर्घ समय तक वे मृदंग बजा सकते थे, साथ में अन्य व्यक्तिगण भी थे । संकीर्तन केवल प्रसाद पाने के समय एवं शास्त्र पाठ के समय बंद रहता था । संकीर्तन में विचित्र प्रकार के भावावेश होते थे, उन्हें लिखकर समझाना कठिन है । माघ महीने की ठंड में गायक गण पसीने से तर हो जाते। हुंकार, गर्जन, नृत्य चलता ही रहता। दो बड़े पंखों के द्वारा संकीर्तन करने वालों को अविश्रान्त हवा देनी पड़ती । वादकों के हाथ फटकर खून निकल आते, खून से मृदंग भीग कर लाल हो जाता था, परन्तु किसी को भी कुछ होश नहीं है । गायक एवं वादकों में अद्भुत बल-

विक्रम का प्रकाश अनुभव होता । कोई संकीर्तन में लोट-पोट कर रहा है तो कोई अविश्रान्त नृत्य किए जा रहा है, रुकने का नाम नहीं ।

मैं ग्लीसरीन, बेल का गोंद, कपड़े वगैरह संग्रह करके रखता था । मृदंग वादकों के हाथ में ग्लीसरीन लगाकर, फटी-कटी अंगुलियों में बेल का गोंद लगाकर कपड़ों के द्वारा अच्छी तरह से बांध देता । कभी-कभी लगता जैसे संकीर्तन दल के व्यक्तियों को कोई तार से बाँधकर नचा रहा है । सब संज्ञाहीन हैं, आँखें बंद हैं, ताल-ताल में नाच रहे हैं, समभाव से सब आगे-पीछे जा रहे हैं । अंग प्रत्यंग भी समभाव से परिचालित हो रहे हैं। जिसने यह दृश्य नहीं देखा है, उसे विश्वास कराना कठिन है ।

संकीर्तन के समय स्त्रियाँ भी अपने कमरे में नृत्य, क्रंदन करती एवं भूमि में लौटने लगती इसलिए संकीर्तन सुनने के स्थान में जाने के पहले उनके गहने ठीक से खोलकर अलग रख दिये जाते थे एवं कपड़ों को अच्छी तरह से गाँठ बाँधकर पहना दिया जाता था । गहने पहनने से नृत्य के समय टूट जाने का डर था । कई तरह के भावावेश वहाँ भी होते थे । फर्श में गिरने से एवं धक्के लगने से काफी चोट भी लग जाती थी। परन्तु आश्चर्य की बात है कि किसी को कोई कष्ट महसूस नहीं होता था। सबमें स्फूर्ति बढ़ती जाती थी ।

अंतिम दिन नगर संकीर्तन की टोली निकली । कोई व्यक्ति एक छलांग लगाकर संकीर्तन से दूर जाकर भूमि में गिर जा रहा है और फिर कुछ देर बाद एक छलांग लगाकर संकीर्तन में उपस्थित होता जा रहा है। पंडितजी के शरीर की सुरक्षा के लिए कुछ लोगों ने आपस में हाथ पकड़ कर एक घेरा बना लिया था । वे कभी कीर्तन करते हैं तो कभी भूमि में गिर रहे हैं। कभी अचेतन हो जाते हैं। उनकी देह का किसी को भी स्पर्श नहीं करने दिया गया । जब वे आगे बढ़ जाते, तब उस स्थान की लोग धूलि लेने लगते, जिससे गड्ढा बन जाता । भक्तगणों के नृत्य से आकाश में धूल छा गयी। कई दर्शक लोग भी कीर्तन सुनकर बेहोश हो गए । एक जगह एक घोड़ा संकीर्तन के कोलाहल से कूदने लगा । पंडितजी ने हाथ उठाकर उसे स्थिर किया । काला चाँद (कुत्ता) बराबर संकीर्तन में साथ में था ।

रात्रि के समय अद्वैत प्रभु की जन्म तिथि के उपलक्ष में जितने लोग उपस्थित थे, उनकी एवं गरीब दुखियों के लिए भरपेट प्रसाद की व्यवस्था की गई । नरनारायण लोग भरपेट प्रसाद पाने के बाद साथ में बाँध के भी ले गये । इस प्रकार महोत्सव प्रभु की कृपा से बड़े ही आनंद से संपन्न हुआ ।

शिशु गोपीजनवल्लभ (मेरा पुत्र) अभी बात बोलना शुरु नहीं किया था, वह इस उत्सव में नौकर की गोद में चढ़कर, उसको पाँव से धक्का मारकर अपनी इच्छा व्यक्त करता था । इसी प्रकार वह मेरे कचहरी घर की प्रदक्षिणा करके सीढ़ी के पास आकर जल्दी से गोद से नीचे उतरकर प्रणाम कर, फिर गोदी में चढ़कर परिक्रमा एवं प्रणाम करता । एक दिन मैंने विचार करके समझा कि मेरे कचहरी-घर में ठाकुरजी का आसन संस्थापित है, इसलिए वह अब कचहरी कोठी न होकर, ठाकुर जी का घर है। वह चलना अभी सीखा नहीं है इसलिए गोद में चढ़कर प्रदक्षिणा करता है । बालक संकीर्तन दल की भी इस प्रकार परिक्रमा करता था ।

संकीर्तन के समय नौकर की गोद में रहकर ऐसे नृत्य करता कि नौकर उसको गोद में रख नहीं सकता था । इन सब चीजों को देखकर गोस्वामीजी ने बालक के संबंध में जो कहा था, उसमें संशय न रहा । बालक की माता उसे बड़े प्यार से लालन-पालन करने लगी । इसके बाद अनेक बार बालक की सुबुद्धि एवं धर्मभाव का यथेष्ट परिचय मिला था किन्तु वयोवृद्धि होने से उसकी सब अवस्थाओं का लोप हो गया। उसकी अभी की अवस्था देखने से वह एक साधारण मायामुग्ध बालक जैसा ही लगता है ।

उस समय कुलीन ग्राम एकदम भक्तिशून्य हो गया था । लोगों में अनेक प्रकार के अनाचार, आपस में द्वेष भाव, मुकद्दमा वगैरह होते थे। ग्राम के कल्याण के लिए, रोज नाम संकीर्तन चालू करने के लिए एक संकीर्तन दल को मृदंग, झाँझ आदि देकर भेज दिया । मेरे बड़े भाई भी संकीर्तन प्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने भी बोलपुर में संकीर्तन की धूम मचा दी। मैं बीच-बीच में कुलीन ग्राम जाकर संकीर्तन दल में अनेक प्रकार से

प्रोत्साहन दे आता । धीरे-धीरे संकीर्तन दल की पुष्टि होने लगी । कुलीन ग्राम में धर्म के उपदेश देकर उन लोगों की पूर्व स्मृति जगाने की कोशिश करने लगा। धीरे-धीरे ग्रामवासीगण मुकद्दमा, आपसी रंजिश परित्याग करके धर्म-कर्म की ओर झुकने लगे। हर मुहल्ले में नाम संकीर्तन आरंभ हो गया । ठाकुर सेवा भी चलने लगी । गाँव के लोग परमानंद से काल-यापन करने लगे। उन लोगों को जैसे नवजीवन मिल गया।

कन्याओं की दीक्षा के लिए कलकत्ता गमन

मार्च महीने में शिवरात्रि की छुट्टी में मैं अपनी द्वितीय कन्या सुभाषिनी, तृतीय कन्या नवनलिनी, ज्येष्ठ जामाता जगतप्रिय नंदी व सास को लेकर दीक्षा दिलवाने के लिए सपरिवार कलकत्ता रवाना हुआ । इस बार मेरे साथ मेरी बहन चम्पकलता दासी भी थी । हम लोग ट्रेन की टिकट खरीद कर गाड़ी की प्रतिक्षा कर रहे थे। उसी समय मेरा पड़ौसी योगेशचन्द्र चक्रवर्ती रोते-रोते दौड़ते हुए आया । मैंने देखा उसके शरीर में कंपन हो रहा है, मुँह से स्पष्ट बात निकल नहीं रही थी । मैंने उससे पूछा कि क्या बात है ? तुम इतना रो क्यों रहे हो ? योगेश ने कहा कि मुझे भी गोस्वामीजी के पास ले चलो, मैं भी उनके पास से दीक्षा ग्रहण करूंगा । मैंने पूछा कि तुम्हारी यह इच्छा अचानक कैसे हो गई ? उसने कहा कि कल शेष रात्रि में स्वप्न देखा कि गोस्वामीजी मेरे पास खड़े होकर बोल रहे हैं कि तू क्या कर रहा है ? मेरे पास आ जा, तुझे दीक्षा दूंगा। उनको देखकर मेरे शरीर में अभी तक कँपकँपी हो रही है, रूक नहीं रही है । मैंने अपने पिता-माता को स्वप्न की बात बोली तो उन्होंने मुझे अनुमति दे दी है। तब मैंने योगेश से पूछा कि तुमने गोस्वामीजी की पहचान कैसे की ? तब योगेश बोला कि आपके घर में उनका फोटो मैंने देखा था। यह सुनकर योगेश के लिए एक और टिकट खरीदकर उसको साथ लेकर हम कलकत्ते रवाना हुए ।

मेरे साथ काफी लोग थे। अतः गोसाँईजी के वासस्थान 45 नं. हैरिसन रोड़ स्थित घर के पास एक मेरे संबंधी उच्चपदस्थ राजकर्मचारी के घर रुका । तब वे भी सपरिवार वहाँ रह रहे थे।

वैसे उनका बाहरी व्यवहार तो ठीक था परन्तु वे धर्म के संपूर्ण विरोधी थे । वे पूर्णतः आधुनिक, अंग्रेजी भावापन्न व्यक्ति थे, बाद में समझा कि वे अन्दर ही अन्दर मेरे समान पुराने आध्यात्मिक विचारधारा वाले व्यक्ति के संग से दूर ही रहना चाहते हैं । मुझे बड़ी लज्जा हुई। एक बार ऐसा लगा कि यहाँ से सबको लेकर चला जाऊं । उनकी स्त्री की एकान्त इच्छा होने से अंततः वहाँ रह गया।

हम लोगों के आने के बाद वे अपने दोस्तों के साथ बैठक खाने में हंसी-मजाक, बातचीत करने लगे और हम लोगों को नासमझ एवं बेवकूफ समझने लगे । मेरी लड़की नलिनी की उम्र सात साल की है किन्तु देखने में पाँच साल सरीखी लगती है । इस लड़की की दीक्षा दिलवाने के लिए मैं यहाँ आया हूँ - यह उनकी हँसी का कारण था । अंत में एकदिन मुझे कह ही दिया कि इस पाँच साल की लड़की को दीक्षा दिलवायेंगे ?

मैं जानता था, यह आदमी जैसा है, वैसे उसके संगी भी होंगे। ऐसे धनगर्वित, पद व शिक्षाभिमानी, असंयत व्यक्तियों को शिक्षा न दी जाये तो ये लोग दिनोंदिन बड़ी-बड़ी बातें बोलते ही रहेंगे। यह सोचकर उनके चैतन्य सम्पादन के निमित्त मैंने जोशीली भाषा में एक प्रवचन झाड़ दिया ।

मै कहने लगा - पिता के ऊपर सन्तान का दायित्व है। सन्तान की सत्‌शिक्षा एवं उनके नैतिक जीवन की उन्नति का साधन करना पिता का ही कर्त्तव्य है । पिता यदि सोचे कि मेरे अर्थोपार्जन करके सन्तान के लिए प्रचुर अर्थ रखकर जाने से सन्तान सुख-स्वच्छंदता से जीवन-यात्रा निर्वाह करेगी, तो वह अत्यन्त भ्रान्त है। धन के उपार्जन में कष्ट, रक्षा में कष्ट और नाश में कष्ट होता है। धनी व्यक्ति अहंकार एवं अभिमान के कारण पृथ्वी को स्वर्ग समझता है। जिसकी अर्थासक्ति प्रबल है, वह कृपण होता है। जो खुद सांसारिक सुख की वृद्धि में तल्लीन होता है वह दरिद्र के दुःख को नहीं समझता । कृपण व्यक्ति परोपकार तो करता ही नहीं बल्कि खुद के परिवार की भी, रोगी होने से, सुचिकित्सा नहीं करवाता। दिन रात

अर्थ को बढ़ाने की चिन्ता में मग्न रहता है। अधिक रुपया मनुष्य को अमानुष बना देता है । सत् एवं साधू व्यक्तियों के संग से दूर रहता है । चाटुकार, खुशामद करने वाले व्यक्तियों के द्वारा घिरा रहता है। उसकी न्याय एवं सत्य के प्रति आस्था नहीं रहती ।

भले ही धनी व्यक्ति को जागतिक सुख-सुविधायें काफी मात्रा में प्राप्त होती हैं परन्तु मोह, माया से अन्धा होने के कारण आत्म-जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती । मैं कौन हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? त्रिताप ज्वाला में जल रहा हूँ, इसका कारण क्या है ? शान्ति का उपाय क्या है ? ये सब प्रश्न उसे नहीं भाते। केवल धन, मान, यश, प्रभुत्व, इन्द्रिय-भोग इत्यादि पाने से ही अपने को आप्तकाम समझता है। जीवन धन्य है, ऐसा सोचता है।

मनुष्य एवं पशुओं में आहार, निद्रा, मैथुन में समान सुख है । ठीक से विचार किया जाय तो आहार-निद्रा वगैरह पशुओं में नियंत्रित रहने से उनका शरीर स्वस्थ रहता है। मनुष्य अनियम करके पीड़ित हो जाता है, जिससे रोग-यंत्रणा भोग करनी पड़ती है । जिह्वा-लालसा में अत्यधिक सुखाद्य खाकर रोगी हो जाता है । धनी, बड़े लोगों की भोग- वासना प्रबल होती है परन्तु उसे चरितार्थ नहीं कर सकते, इससे मन ही मन दुःखी ही रहते हैं । कई धनी व्यक्ति अनिद्रा रोग से ग्रसित रहते हैं । न उनमें आहार का सुख है, न इन्द्रिय का सुख है और न निद्रा का सुख।

''चिता, चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता नाम गरीयसी ।

चिता दहति निर्जीवम्, चिन्ता दहति जीवितम् ॥''

मनुष्य सहस्त्र दुश्चिन्ताओं से जर्जरीभूत है । कोई सोच रहा है कि मेरा लड़का मूर्ख है, यह कैसे जिन्दगी बितायेगा ? लड़की विधवा हो गई है, इसकी क्या दशा होगी ? मालिक, नौकर को धमकी दे रहा है इत्यादि । पशु जीवन में यह सब चिन्ता नहीं है । गाय का बछड़ा थोड़ा बड़ा होने से गाय उसे लात मारकर भगा देती है, जिससे वह दूध न पी सके। मनुष्य लड़के के सुख, स्वाच्छन्द्य के लिये मृत्युकाल तक अविश्रान्त परिश्रम यहाँ तक कि असत् उपाय से

भी धन उपार्जन करते ही रहता है। **मृत्यु के बाद मेरी क्या दशा होगी ? एक क्षण के लिए भी वह इस बात को नहीं सोचता ।**

मैंने उन लोगों को समझाया कि संसार में रुपये की आवश्यकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है परन्तु अर्थ ही जीवन का उद्देश्य या लक्ष्य नहीं है। जीवन ठीक से निर्वाह हो जाये, इतना ही अर्थ पर्याप्त है । ज्यादा रुपया सन्तान के लिए रखने से वह अधिकतर स्वार्थपर, चरित्रहीन लोगों के द्वारा घिरा रहता है । पिता के द्वारा कष्टोपार्जित रुपया विलासिता में नष्ट करता है । अनैतिक कर्म, सुरापान इत्यादि का नशा लग जाने से अकाल ही मृत्युमुख में पतित होता है ।

जो पिता सन्तान को धर्म शिक्षा देते हैं, वही यथार्थ सन्तान का हित साधन करते हैं । मनुष्य अनादिकाल से नाना योनियों में भ्रमण कर रहा है। उसे पुनः-पुनः संसार-यातना भोग करनी पड़ रही है । मनुष्य जन्म सुदुर्लभ है। इसे छोड़ कर जन्म, मरण रुप इस विपद से निकलने का अन्य योनि में कोई उपाय नहीं है । केवल मात्र यदि मनुष्य भगवत् उपासना ठीक तरह से करे, तभी वह दुस्तर भवसमुद्र से उत्तीर्ण हो सकता है। ऐसा सुदुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी यदि कोई भगवत् उपासना न करे तो उसके समान आत्मघाती कौन है ? धर्म केवल परलोक सुधारने के लिए नहीं है, यह इहलोक में भी रसास्वादन की वस्तु है । इससे मनुष्य जीवन मधुमय होता है । दुष्प्रवृत्ति दूर होकर, सत्वृत्ति अंतःकरण में प्रकाशित होती है । ऋषिगण बोल गये हैं - ''भूमैव सुखम् नाल्पे सुखमस्ति'' उस भूमा परमेश्वर में ही सुख है, जो क्षुद्र है, जो अनित्य है उसमें सुख नहीं है । मनुष्य सुख की लालसा में मृग के समान मरीचिका में जल समझकर, संसार-दावानल में पतित होकर अहर्निशि दग्ध हो रहा है । इस भयावह संसार यातना से निवृत रहने के लिए ही मैं कन्याओं एवं आत्मीयों को भवरोग वैद्य सद्गुरु के पास लाया हूँ ।

मेरी सुदीर्घ वक्तृता को धैर्यपूर्वक उन्होंने सुना । वे लोग पढ़े-लिखे शिक्षित, बुद्धिमान, सभ्य व्यक्ति थे । अंत में उनमें से एक ने प्रश्न किया-

व्यक्ति - हम लोग आपकी बात सुनकर परितृप्त हुए हैं। पहले ऐसी बात हमने कभी नहीं सुनी है । अब एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ कि यह नितान्त छोटी बालिका, जो कि धर्म-अधर्म भी नहीं समझती, उसको इस उम्र में दीक्षा दिलवाने की क्या जरूरत है ?

मैं - जब अच्छे भव रोग वैद्य सद्गुरु मिल गये हैं, तो ज्यादा देरी करना भी तो ठीक नहीं है । उपयुक्त उपदेष्टा सब समय नहीं मिलते । सद्गुरु, आत्मा में शक्ति संचार करते हैं। वह शक्ति अनन्तकाल तक आत्मा के ऊपर क्रिया करेगी । नारदजी ने शुकदेव व प्रहलाद को गर्भावस्था में दीक्षा दी थी। जब मेरी कन्या बड़ी होगी, तब यह शक्ति अपने आप जाग उठेगी एवं गुरुशक्ति उसे साधन पथ पर परिचालित करेगी।

व्यक्ति - गुरु के द्वारा दिये गये नाम के अर्थ को भी तो समझना जरूरी है ।

मैं - गुरुप्रदत्त 'नाम' के अर्थ जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। 'नाम' शब्द नहीं है । शक्ति का गुण कैसे नष्ट होगा ? वस्तु शक्ति को ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती । जानकर या बिना जाने ही अग्नि में हाथ डालने से वह जलेगा ही । सद्गुरु के निकट सबका समान अधिकार है। वहाँ पंडित, मूर्ख, छोटे, बड़े का विचार नहीं है। देह नश्वर है। आत्मा-अजर, अमर, नित्य, शाश्वत है ।

व्यक्तिगण - हम लोगों ने कुलगुरु के निकट मंत्र ग्रहण किया है, उसकी शक्ति तो हम कुछ नहीं समझ सके ?

मैं - आप लोगों को जो दीक्षा मिली है, उससे आप लोगों ने कभी 'साधन' किया है? कार्य करने से उसका फल अवश्य प्राप्त होता है ।

व्यक्तिगण - शक्ति-संचार क्या होता है ?

मैं - ईश्वर की शक्ति सबके अंदर है। वह शक्ति सोई हुई रहती है। किसी महापुरुष की प्रबल शक्ति के द्वारा उस शक्ति (कुंडलिनी शक्ति) को जाग्रत करने को ही शक्ति-संचार कहते हैं ।

व्यक्तिगण - हम लोगों को आजकल के गुरु लोगों की दुरावस्था देखकर ही तो धर्म के प्रति अश्रद्धा हो गई है । जो खुद चरित्रहीन है, उसके द्वारा शिष्य का क्या उपकार होगा ?

मैं - आपकी बात काफी हद तक सच है । उपयुक्त आचार्य के अभाव से हमारे देश के लोगों में प्रकृत धर्म का अभाव होता जा रहा है। साथ ही साथ शिष्यों का भी दोष है । जैसे सद्गुरु दुर्लभ है, वैसे सत् शिष्य भी दुर्लभ हैं ।

इस तरह के वार्तालाप से, वे लोग बड़े संतुष्ट हुए एवं हम लोगों की आवभगत करने लगे । वे लोग मेरे प्रति इतने आकृष्ट हो गये कि मुझे क्षण भर के लिए छोड़ना नहीं चाहते । धीरे-धीरे सभी के साथ मैत्री का संबंध दृढ़ होता गया ।

मैं गोस्वामीजी के पास ज्यादा समय रहता था। जब उनके पास से लौटता, तब वे लोग मेरे आने के साथ-साथ मुझसे धर्म विषयक प्रसंग सुनते । अन्य वैषयिक बातें सब बन्द हो गई ।

एक कहावत है ''राम नाम से भूत भाग जाता है'' यह मिथ्या नहीं है । **जिस स्थान में भगवत् प्रसंग होता है, उस जगह में भगवत विमुख व्यक्ति अल्पकाल भी रह नहीं सकता । भगवत् संबंधी बातें बन्दूक की गोली के समान उनके हृदय में आघात करती हैं, मानो उनके कानों में विष डाल दिया हो ।**

इन लोगों से बातचीत करके इतना अनुभव हुआ कि इनका दल श्रद्धावान है। भगवत कथा में इनकी रूचि है, परन्तु **एक मात्र सत्संग के अभाव में ये लोग धर्महीन जीवन यापन कर रहे हैं ।** सत्संग या साधू संग प्राप्त होने से ये लोग धर्म जीवन प्राप्त कर सकते है । मैंने अपने जीवन मे अनेक व्यक्तियों का, जिनमें अनेक गुण हैं, संग किया है परन्तु एकमात्र सत्संग एवं सदालोचना के अभाव में उनके जीवन में धर्म भाव का विकास देख नहीं पाया ।

यथा समय मेरी कन्याओं एवं अन्य लोगों की दीक्षा हो गई ।

मेरी बड़ी बहन चम्पकलता दासी-विधवा, अपुत्रक, प्रौढ़ उम्र की थी। वह बचपन से ही बहुत धर्म-निष्ठ थी । पति की मृत्यु के बाद वह केवल साधन-भजन, नियम, उपवास एवं तीर्थ-पर्यटन में समय बिताती थी । उसके अन्दर प्रबल वैराग्य भावना थी । शरीर एवं संसार के प्रति उसकी कोई दृष्टि नहीं थी । रोग हो जाने पर भी दवाई नहीं खाती थी। केवल नारायण का चरणामृत पान करती थी । उसके पास जो कुछ भी अर्थ (रुपया-पैसा) था, वह सब देवकार्य एवं धर्म कार्य में व्यय करती थी। बहुत ही साधारण भाव से जीवन-यापन करती थी। अर्थ का अभाव होने पर भी तीर्थ-दर्शन की इच्छा होने से वह निकल पड़ती थी। भारत के सभी प्रमुख तीर्थों के वह दर्शन कर चुकी थी । कई बार अकेली अर्थहीन अवस्था में पुरीधाम एवं श्री वृन्दावन इत्यादि अनेक दूर के तीर्थों में पैदल चली जाती थी एवं भिक्षा या मधुकरी करके खाती थी। किसी के पास अर्थ भिक्षा नहीं करती थी । किसी दूर तीर्थ स्थान से यदि कोई परिचित व्यक्ति बड़ी बहन का संवाद देता तो मैं उनके पास रुपये भिजवा देता। तीर्थ दर्शन की इच्छा होने से वह बिना किसी को बोले ही चली जाती थी । एक बार श्रीवृन्दावन में राधारानी के मंदिर में पंखा झलने की सेवा करके कुछ महीने व्रत उपवास करके लौटी। उसके समान कष्ट-सहिष्णु एवं धर्म परायण महिला मुझे दिखाई नहीं पड़ती। रात्रि में जब सब लोग सो जाते तब वह माला लेकर सारी रात जप करती थी ।

सद्गुरु के पास दीक्षा ग्रहण के बिना प्रकृत अवस्था प्राप्त करना कठिन है, यह बात मैंने गोस्वामीजी से सुनी थी एवं स्वयं के जीवन में भी अनुभव की थी । यद्यपि किसी के धर्म विश्वास के ऊपर हस्तक्षेप करना कर्त्तव्य नहीं है, - तब भी बड़ी बहन को प्रेम से समझाता कि ''गोस्वामीजी सद्गुरु हैं, सब की दीक्षा हो गई है, तुम्हारी यदि दीक्षा हो जाती तो तुम्हें भी बहुत ही आत्मिक शान्ति प्राप्त होती। तुम यदि दीक्षा ग्रहण कर लो तो मुझे बहुत ही आनन्द प्राप्त होगा। तुम मेरी बहन हो, इसलिए बोल रहा हूँ। कोई दूसरा होता तो नहीं बोलता ।''

मेरी बड़ी बहन की साधन-भजन एवं स्वयं के कुलगुरु के प्रति तीव्र निष्ठा थी, अतः वह अन्यत्र दीक्षा लेने में सहमत नहीं हुई। इससे

नानी माँ और मैं दु:खी हो गये । मेरा मन दु:खी हो जाने के कारण, मेरे साथ में आये लोगों को बोलपुर भेजकर मैं अपने मित्र श्री केदारनाथ मुकर्जी के घर मंगलकाँथि ग्राम में चला गया । दो दिन बाद जब मैं वहाँ से लौटा, तब मेरी बड़ी बहन बोली -

बड़ी बहन - मैंने शिवरात्रि के समय गोस्वामीजी की पूजा की ।

मैं - तुम ने किस प्रकार उनकी पूजा की? उनके कमरे में तो स्त्रियाँ जाती ही नहीं हैं ।

बड़ी बहन - वह सब कुछ मैं नहीं जानती । एक दिन देखा कि गोस्वामीजी के कमरे में कोई नहीं है । गोस्वामीजी अकेले आसन में बैठे हैं । मैं यह सुअवसर पाकर बिल्वपत्र एवं फूल लेकर उनके चरणों में अर्पण करके प्रणाम कर आई ।

मैं - तुमने शिवरात्रि के दिन सद्गुरु रुपी शिवजी की पूजा की है, इससे तुम्हारा कल्याण होगा । तुम्हें भविष्य में अवश्य सद्गुरु की प्राप्ति होगी ।

बड़ी बहन की दीक्षा न होने से मन में जो दु:ख था, वह उनके चरणपूजा की बात सुनकर काफी कम हो गया । सोचा कि भविष्य में गोस्वामीजी अवश्य कृपा करेंगे ।

गोस्वामीजी निद्रा तो लेते ही नहीं थे, पूरा स्नान भी नहीं करते थे। साल में शारदीय पूजा के समय महाअष्टमी के समय स्नान करते थे । एक दिन गर्मी अधिक पड़ने पर मैंने उनसे पूछा -

मैं - आप अच्छी तरह नहाते क्यों नहीं हैं ? स्नान करने से शरीर स्निग्ध होता है । मैं तो एक दिन भी बिना स्नान के रह नहीं पाता ।

गोस्वामीजी - मुझे स्नान की जरूरत नहीं पड़ती ।

मैं - ऐसा क्यो ?

गोस्वामीजी - रोज सुधा का क्षरण होता है, इसलिए स्नान की आवश्यकता नहीं होती, शरीर सर्वदा स्निग्ध रहता है ।

मैं - ''सुधा'' क्या वस्तु है ?

गोस्वामीजी - **भक्ति की अधिकता में मस्तिष्क से जिह्वा में एक प्रकार का रस टपकता है, उसे ''सुधा'' कहते हैं । इस सुधा (अमृत)**

की ऐसी मादक शक्ति है कि एक बूँद खाने से, चार - पाँच बोतल ब्रान्डी (शराब) से ज्यादा नशा सा होता है । इसे पान करने से शरीर अचल सा हो जाता है परन्तु पूर्ण ज्ञान रहता है। अनेक दिन तक अनाहार में भी रहा जा सकता है। तन्त्र शास्त्र में इसे ही ''सुरा'' कहा गया है ।

मैं - यह सुधा मस्तिष्क से किस प्रकार जीभ में टपकता है ?

गोस्वामीजी - तालुदेश की अस्थियों के बीच अति क्षुद्र छिद्र हैं, उन छिद्रों में सुधा टपक कर जिह्वा में गिरता है ।

मैं - इस सुधा का स्वाद किस प्रकार का होता है ?

गोस्वामीजी - भक्ति के भाव के साथ इसका स्वाद बदलता है। कभी खारा, कभी खारा-मीठा, कभी कड़वा, कभी केवल मीठा होता है ।

मैं - इस सुधा में यदि मादक-शक्ति है तो क्या इससे शरीर में कोई अनिष्ट नहीं होता ?

गोस्वामीजी - नहीं, इससे शरीर में अनिष्ट तो होता ही नहीं है बल्कि शरीर स्वस्थ रहता है । भूख भी नहीं लगती एवं शरीर शीतल रहता है ।

मैं - इस ''सुधा पान'' करने का क्या उपाय है ?

गोस्वामीजी - केवल श्वाँस-प्रश्वाँस में नाम करना पड़ता है। इसे छोड़कर दूसरा कोई भी उपाय नहीं है ।

गोस्वामीजी ने मुझसे बोलपुर में हुए श्री अद्वैत प्रभु के उत्सव का संपूर्ण विवरण सुना । उसके बाद मैं सपरिवार बोलपुर लौट आया ।

कुलीन ग्राम गमन

कलकत्ते से आकर नये उत्साह के साथ साधन भजन करने लगा । धर्म गुरुभ्राता पंडितजी, सरलनाथ, नाजिर बाबू, हरिदास सिंह इत्यादि के साथ एक साथ साधन, भजन, धर्म आलोचना करते हुए अति आनन्द के साथ कालयापन करने लगा । संकीर्तन का श्रोत दिनों-दिन बढ़ने लगा। वकालती नाममात्र ही करता था । केवल कुछ समय के लिए एक बार अदालत जाता था ।

दीक्षा के बाद कालीकृष्ण भाई की पत्नी सुशीला देवी को मूर्च्छा एवं देवदर्शन होना प्रारंभ हुआ । इन सब गुरुशक्ति की क्रियाओं को साधारण व्यक्तियों के लिए समझना कठिन था । कालीकृष्ण भाई इसे रोग समझकर चिन्तित होने लगे ।

अघोरनाथ चटर्जी की बात पहले ही लिख चुका हूँ । वे शान्ति निकेतन में मैनेजर के पद पर प्रतिष्ठित थे । वे मेरे निकटतम मित्रों में से एक थे । उन्हीं की सत्त्यनिष्ठा एवं धर्मानुराग से मुग्ध होकर मैंने पहले ब्राह्मधर्म ग्रहण किया था । शान्ति निकेतन में ''ठाकुर'' परिवार के लोग ज्यादा नहीं आते थे। केवल पूस माह में उत्सव के समय वहाँ जाते थे ।

धीरे-धीरे शान्ति निकेतन में धनी ठाकुर परिवार के लोग ज्यादा आने एवं रहने लगे । उन लोगों के संसर्ग में आकर अघोर-बाबू का धर्मभाव धीरे-धीरे कम होने लगा । मैं यह देखकर अत्यन्त दु:खित हुआ। वैषयिक चर्चाएं वहाँ ज्यादा होने लगी । बड़े लोग अपने मन मुताबिक लोगों को ज्यादा चाहते हैं । धर्मप्राण, स्वाधीन चिन्तन, चरित्रवान व्यक्ति, धनी बड़े लोगों को अच्छा नहीं लगता । जो लोग सब समय उनकी खुशामद करेंगे, अन्याय कार्यों का प्रतिवाद नहीं करेंगे, धनी लोग ऐसे ही व्यक्तियों को प्रेम करते हैं अत: शान्ति निकेतन में अघोरबाबू की जगह न रह सकी । अघोर बाबू ने पदत्त्याग कर दिया ।

अघोरबाबू के पदत्याग की बात सुनकर श्यामाकान्त पंडितजी बड़े खुश हुए । वे भगवान को साष्टांग प्रणाम करके अघोरबाबू के प्रति कहने लगे - ''मेरा मनोरथ आज पूर्ण हुआ, भगवान ने आपको आत्मसात् करने के लिए वहाँ से हटा लिया । आज आपका शुभ दिन है। शान्तिनिकेतन की नौकरी आपके धर्म-प्राप्ति की प्रमुख बाधा थी । नौकरी चली गई। अच्छा ही हुआ। आप बिल्कुल दु:खी या चिन्तित मत होइये।'' अघोरबाबू काफी चिन्तित थे। उनकी बातों को सुनकर उन्हें सांत्वना मिली ।

गोस्वामीजी के प्रति अघोरबाबू की पहले से ही श्रद्धा भक्ति थी। वे दीक्षा लेने के इच्छुक थे। उनकी दीक्षा के संबंध में गोस्वामीजी से पूछने पर उन्होंने कहा कि अभी उनका समय नहीं हुआ है अत: दीक्षा नहीं होगी ।

शान्तिनिकेतन से पदत्याग करने पर उन्हें आर्थिक कष्ट का सामना करना पड़ रहा था। उस विषय में गोस्वामीजी से पूछने पर उन्होंने कहा था कि ईश्वर इच्छा से उनके परिवार का प्रतिपालन हो जायेगा। शान्ति निकेतन में उन्हें कार्य करने की अब आवश्यकता नहीं है । अघोर बाबू के समान विद्वान, कार्यकुशल एवं विश्वासी व्यक्ति के हट जाने से ठाकुर परिवार के कार्य में असुविधा होने लगी एवं खर्च भी बहुत ज्यादा बढ़ गया। उन लोगों ने अपने कार्य में हानि होने के कारण अघोर बाबू को कुछ ज्यादा वेतन देकर रखने की इच्छा व्यक्त की परन्तु गोस्वामीजी के निषेध के कारण अघोर बाबू ने पुन: कार्य करने में अपनी असहमति जतायी ।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मेरे पूर्वज-लक्ष्मीकांत वसु को हर साल जगन्नाथपुरी में पट्टडोरी भिजवाने के लिए आदेश दिया था । पुरी का रास्ता उस समय पैदल तय करना पड़ता था। रास्ता भी कष्टकर एवं भयावह था। हिन्दू-मुसलमानों का कलह भी प्राय: चलता था इसलिए वे प्रतिवर्ष पुरी नहीं जा पाते थे। अत: उन्होंने अपने आदि वासस्थान कुलीन ग्राम (वर्द्धवान के पास) में श्री श्रीजगन्नाथ जी की सेवा की स्थापना की । जिस वर्ष वे जगन्नाथपुरी नहीं जा पाते, उस समय अन्य व्यक्ति के द्वारा पट्टडोरी वहाँ भिजवा देते एवं स्वयं कुलीन ग्राम जाकर रथयात्रा का उत्सव करते थे ।

कुलीन ग्राम में रथ टूट जाने से सन् 1897 में नया रथ तैयार किया गया । मैं भी बोलपुर से संकीर्तन दल को लेकर जगन्नाथ जी को नये रथ में चढाने के लिए कुलीन ग्राम के लिए रवाना हुआ । दोपहर तीन बजे हम लोग ट्रेन में चढ़े । पंडितजी और मैं, इंजिन के निकट एक डब्बे में चढ़े और युवकगण ब्रेकवैन के निकट एक डब्बे में चढ़ गये । ट्रेन के अंदर कीर्तन करने का मैंने संपूर्ण निषेध कर दिया था क्योंकि यदि भावावेश शुरू हो गया तो असुविधा हो सकती है परन्तु युवक लोगों ने पहले से ही आपस में परामर्श करके, मेरे डब्बे से दूर में रहने का प्रोग्राम बना लिया था। ट्रेन चलने के साथ ही साथ उन्होंने संकीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया ।

संकीर्तन प्रारंभ करने से भावावेश में उन्होंने हुंकार, गर्जन, कूदना आदि शुरु कर दिया जिससे किसी को सिर में चोट लगी तो किसी के पाँव में। डब्बे के अंदर हो हल्ला मच गया। भावावेश में कुछ तो मूर्छित भी हो गये । ट्रेन जिस स्टेशन में रुकती, प्लेटफार्म में भीड़ जम जाती। खैर, किसी प्रकार से संध्या के समय 'देवीपुर' स्टेशन पहुंचने पर सब लोग उतर गये। मेरा जामाता जगतप्रिय एकदम चेतनाशून्य हो गया था। युवक दल ने उसको बेहोश अवस्था में गाड़ी से खींचकर नीचे प्लेटफार्म में उतारा।

गर्मी का दिन था, भयानक गर्मी पड़ रही थी । जगतप्रिय की उस अवस्था को देखकर स्टेशन के साहब लोग ''बीमार हुआ, बीमार हुआ'' कहकर चिल्लाने लगे । रेलकर्मी लोग पानी वगैरह की व्यवस्था करने लगे। मुझे समाचार मिला। मैंने उन लोगों से कहा कि इस आदमी को 'मूर्च्छा' होने का रोग है। अभी ठीक हो जायेगा। पानी सिर में डालने की जरुरत नहीं है । इस बात को सुनकर साहब लोग चले गये । हम लोगों को स्टेशन में ही काफी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। बाद में जगतप्रिय को चेतना हुई परन्तु उसके पैर में चलने की शक्ति न रहने के कारण वह खड़ा नहीं हो पा रहा था। तब दो व्यक्तियों ने उसे कंधे में सहारा दिया एवं धीरे-धीरे सब कुलीन ग्राम की ओर चलने लगे ।

कुलीन ग्राम 'देवीपुर' से ढाई कोस (आठ कि.मी.) दूर है । वहाँ करीब 3 साल से अच्छी तरह से वर्षा नहीं हुई थी । तालाब, नदी-कहीं भी पानी का नामोनिशान न था । रास्ते में प्यास के कारण हम लोगों की छाती फटने लगी । कोई-कोई प्यास के कारण बेहोश से होने लगे । शाम को चाय भी नहीं पिये थे, फिर उसके ऊपर पानी की प्यास से पैदल चलना हम लोंगों के लिए कठिन हो गया । थोड़ी दूर जाते; फिर बैठ जाते। रात्रि के करीब 10 बजे हम लोग एक ग्राम के किनारे पहुँचे। तब पंडितजी ने मुझसे कहा -

पंडितजी - क्या यहाँ से कुलीन ग्राम की सीमा प्रारंभ होती है ?

मैं - आप यह प्रश्न क्यों कर रहे हैं ?

पंडितजी - मेरे शरीर की सब क्लान्ति, अवसाद खत्म हो गये हैं। शरीर में बल का संचार हो रहा है। देह-मन आनन्द से पूर्ण हो रहा है ।

मैं - हाँ, यहीं से कुलीन ग्राम प्रारंभ होता है ।

यह बात सुनकर पंडितजी कुलीन ग्राम को साष्टांग प्रणाम कर, खूब उत्साह के सहित कूद-कूद कर चलने लगे । ग्राम में प्रवेश कर पूर्वजों के द्वारा प्रतिष्ठित शिवानी देवी को प्रणाम एवं स्त्रोत्र पाठ करके सब कोई घर की ओर चले ।

मेरे पूर्वज लक्ष्मीकांत वसु (सत्यराज) एवं अन्य कुलीन ग्राम वासी-हरिदास ठाकुर के कृपापात्र थे। चैतन्य चरितामृत के भक्ति कल्पतरु शाखा वर्णन में आदि लीला - दशम परिच्छेद में इस प्रकार लिखा हुआ है -

हरिदास ठाकुर शाखा का, अद्भुत चरित ।
तीन लाख नाम वे जपते, अपतित ॥
उनके अनंत गुण थे, कहूँ किंचित मात्र ।
अद्वैत आचार्य जी ने दिया, जिन्हे श्राद्ध पात्र ॥
प्रहलाद के सम, उनके गुणों को न जाय कहा ।
यवनों के द्वारा दी गयी, यातनाओं को सहा ॥
देहान्त के समय, उनके शरीर को लेकर ।
कीर्त्तन किया, चैतन्य प्रभु ने, हर्षित होकर ॥
उनकी उपशाखा सब, कुलीन ग्रामी जन ।
सत्यराज आदि सब उनके कृपा-भाजन ।

हरिदास ठाकुर* ने कुलीन ग्राम में कई वर्षों तक तपस्या की थी। वहाँ ग्राम में उनकी दारु (लकड़ी) निर्मित एक प्रतिमा है । रोज वहाँ भोग लगाया जाता है । वे ग्राम के किनारे निर्जन स्थान में तपस्या करते थे । उस जगह के संरक्षण के लिए वहाँ एक मंदिर बनाया गया है एवं उसमें चैतन्य महाप्रभु, श्यामसुंदर एवं हरिदास ठाकुर की सेवा स्थापित की गई है। यह स्थान अत्यन्त रमणीय है। इसे हरिदास ठाकुर का अखाड़ा कहते हैं ।

---

* इन्हें ''यवन हरिदास'' भी कहा जाता था । पुरी में समुद्र किनारे इनका समाधि स्थान दर्शन योग्य है ।

हम लोगों के घर की पूर्व दिशा में, उस समय एक परम भक्त ब्राह्मण वास करते थे। वे रोज एक लाख नाम जप करते थे। इस जगह के संरक्षण के लिए चारों तरफ दीवाल बनाकर, एक दरवाजा बना दिया गया था। इसे ''हरिदास ठाकुर का पाट'' कहते हैं । प्रति वर्ष भाद्र महीने की शुक्ला चतुर्दशी तिथि में यहाँ हरिदास ठाकुर की पुण्यतिथि मनाई जाती थी । पहले रास्ता अच्छा नहीं था। वर्षा ऋतु के समय असुविधा होती थी इसलिए अगहन महीने की पूर्णिमा तिथि में यह उत्सव मनाया जाता है । दूर-दूर से वैष्णवगण इस संकीर्तन महोत्सव में सम्मिलित होते हैं ।

हम लोगों के घर में प्रवेश करने के लिए हरिदास ठाकुर के आंगन से होकर आना पड़ता है । भूख-प्यास से पीड़ित, शुष्क कंठ एवं चाय पान के अभाव में मृतप्राय: भक्तगणों ने ज्यों ही हरिदास ठाकुर के आंगन में प्रवेश किया, अचानक एक महाशक्ति का प्रादुर्भाव हुआ । उन लोगों की भूख-प्यास, आलस्य सब मिट गई। शरीर थर-थर काँपने लगा। हुंकार, गर्जन शुरु हो गया, महा संकीर्तन प्रारंभ हो गया । हरिदास ठाकुर का आंगन साफ सुथरा नहीं था । ईंट वगैरह के टुकड़े यहाँ-वहाँ पड़े हुए थे। संकीर्तन दल के युवक कीर्तन करते-करते गिर पड़ते। ईंटों के टुकड़े उनके दबाव से चूर्ण बन जाते, परन्तु किसी को इसकी परवाह तक न थी। एक प्रबल शक्ति के प्रभाव से वे अविराम नृत्य करने लगे । कुलीन ग्राम वासी भी कुछ लोग भावावेश में मग्न हो गये ।

हम लोगों की अगवानी करने के लिए मेरे बड़े भ्राता श्री राधागोविन्द बसु अपने संकीर्तन दल के साथ हम लोगों के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे, अचानक इस प्रकार के विचित्र भावावेश का दर्शन करके वे लोग आश्चर्यचकित हो गए । घर की स्त्रियाँ वगैरह खिड़की से झाँककर यह अद्‌भुत दृश्य देखने लगी । रात्रि का 1 बज गया किन्तु कीर्तन समाप्त होता नजर नहीं आया । अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर कीर्तन बंद किया गया । कीर्तन समाप्त होने के बाद, मेरे बड़े भाई अपना संकीर्तन दल लेकर आये और स्वरचित पदगान करने लगे । गाने का प्रथम चरण इस प्रकार था **''अविराम हरिनाम बोलो प्राण मन से, कुलीन ग्राम धन्य हुआ भक्त आगमन से''**। जैसे ही गायन आरंभ हुआ,

फिर से हम लोगों का संकीर्तन दल पूर्ण उत्साह के साथ उन लोगों के साथ नृत्य करने लगा । दोनों दल एक साथ होने से जोर-शोर से संकीर्तन होने लगा । शरीर के प्रति किसी की दृष्टि नहीं थी । भूख-प्यास सब गायब हो गई थी। शरीर में पूर्ण उत्साह आ गया । रात्रि के ढाई बज गये। अनेक प्रकार से समझाबुझा कर कीर्तन समाप्त किया गया। फिर सब लोगों ने थोड़ा जलपान आदि करके शयन किया।

उसके दूसरे दिन जगन्नाथ जी की रथयात्रा थी । चारों तरफ प्रचार हो गया था । काफी भीड़ हो गई । खूब जोर-शोर से संकीर्तन एवं नृत्य होने लगा। यात्री एवं दुकानदार लोग दुकान की खरीददारी बंद कर संकीर्तन दर्शन व श्रवण करने लगे । वे लोग ''जय जगन्नाथ-जय जगन्नाथ'' कहकर हाथ उठाकर जगन्नाथजी की पुनः-पुनः वंदना एवं प्रणाम करने लगे । सर्वत्र पताकाएँ फहराने लगी। घंटे, घड़ियाल, मृदंग की गगनभेदी आवाज आने लगी ।

रथ को खींचना मुश्किल हो गया । बोलपुर के संकीर्तनकारी व्यक्तिगण अधिकांश रथ के आगे मूर्च्छित पड़े थे । ग्रामवासी एवं यात्रीगण सब कोई रस्सी पकड़कर खड़े थे । बिहारी दास की मूर्च्छा भंग नहीं हुई। वह रथ के आगे चेतनहीन अवस्था में पड़ा रहा। बाकी लोग धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हुए । रथयात्रा में देरी होने लगी । कुछ लोगों ने सोचा कि यह आदमी जान-बूझकर रथ के सामने पड़ा हुआ है । रथयात्रा शुरु करने से भाग जायेगा। यह सोचकर कुछ व्यक्तियों ने ''जय जगन्नाथ-जय जगन्नाथ'' करके रथ को रस्सी द्वारा खींचना शुरू कर दिया। रथ चलने लगा । बिहारीदास की खोज-खबर किसी ने न ली। उसे उठाकर किसी दूसरी जगह भी नहीं ले जाया गया । जगन्नाथ जी का रथ, बिहारीदास के पास पहुंचकर, अचानक विचित्र शब्द करता हुआ बिहारीदास के पास से घूमकर आगे निकल गया। उसके अंग को बिल्कुल स्पर्श नहीं किया । इस आश्चर्यजनक घटना को देखकर लोग विस्मित हो गये ।

अबतक जो लोग जगन्नाथजी के दर्शन कर रहे थे, वे लोग अब बिहारीदास को देखने के लिए आने लगे । रथ के पास भयानक भीड़, धक्का-मुक्की होने लगी । धीरे-धीरे बिहारीदास को चेतना हुई एवं वह

संकीर्तन में पुनः शामिल हो गया । **जिस जगह में बिहारीदास अज्ञान अवस्था में गिरा हुआ था, उस स्थान की धूलि लेते लेते वहाँ बड़ा गड्ढ़ा सा बन गया ।**

कुलीन ग्राम भक्तिप्रधान जगह है। वे लोग भक्त का सम्मान करना जानते हैं । मुहल्लों के सब घरों में बोलपुर के संकीर्तन दल की महिमा प्रचार होने लगी । सब जगह केवल संकीर्तन के प्रसंग की चर्चा होने लगी । इस संकीर्तन से कुलीन ग्राम एवं आसपास के ग्रामों के वातावरण में परिवर्तन हो गया । लोगों के मन में धर्मानुराग एवं वैराग्य का उदय होने लगा ।

अगले दिन नगर संकीर्तन में भी उसी प्रकार का भावावेश भक्तों को होने लगा । संकीर्तन दल जगन्नाथ जी के मंदिर में जब पहुँचा, तब श्यामाकान्त पंडितजी चारों ओर जगन्नाथजी के ही दर्शन करने लगे । संकीर्तन दल जब मदनगोपाल जी के मन्दिर के प्रांगण में पहुँचा, तब पंडितजी ने मदनगोपाल जी को सखीगणों के साथ नृत्य करते हुए देखा । **सब कोई भावोन्मत्त हो गये। केवल मात्र मैं ही शुष्क पाषाण की तरह खड़ा हुआ भयभीत होकर आत्मरक्षा का प्रयास करने लगा ।** जब लोग भावावेश में अचानक गिर जाते, मैं वहाँ से बचकर निकल जाता जिससे मुझे चोट न लगे । महासंकीर्तन के प्रभाव से सब नर-नारी झूम रहे थे। मैं ही केवल चुपचाप देखता जा रहा था । मुझमें साहस नहीं था कि संकीर्तन में प्रवेश करूँ या कोई जब गिर रहा है, उसे पकड़ूँ । यद्यपि चोट लगने के डर से बचने की पूरी कोशिश करता रहा तथापि बिहारी दास भावावेश में अचानक मेरे पैर के उपर धड़ाम से गिर पड़ा, उससे मेरा पाँव फूल गया एवं करीब 15 दिन तक दर्द बना रहा ।

मदनगोपाल के मंदिर से संकीर्तन हंडीपारा होकर मित्र पाड़ा में पहुँचा । उस समय हरिजन का एक लड़का जिसका नाम हरिदास था, उसे प्रबल भावावेश का संचार हुआ। ऐसा लगा, जैसे उसकी अभी मृत्यु हो जायेगी । उसे देखकर संकीर्तन की भीड़ डर गई। लोग हा-हाकार करने लगे । कुछ लोग पुलिस आने के डर से भाग गये। कोई डाक्टर लाकर चिकित्सा करवाने के लिए कहने लगे । मुझे भी थोड़ा डर सा लगा किन्तु उन्मत्त कीर्तन दल में इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे लोग

पूर्ववत् पूर्ण उत्साह के साथ संकीर्तन करने लगे । उस समय पंडितजी ने ग्रामवासियों को समझाकर शान्त किया । करीब दोपहर के ढाई बजे कीर्तन को जबरदस्ती बंद किया गया ।

हरिदास के कान में महामंत्र का उच्चारण बारंबार करने से धीरे-धीरे उसकी चेतना वापिस लौटी। उसे पकड़कर घर में भेज दिया गया। कालीकृष्ण भाई के मुँह से अविराम लार गिरने लगी । संध्या के समय आहार आदि पाकर सब लोगों ने विश्राम किया ।

उसके दूसरे दिन योगेश, नृपेन्द्र, कालीकृष्ण भाई किसी को कुछ भी न बोलकर कुलीन ग्राम के अन्य विग्रहों के दर्शन के लिए सुबह ही निकल पड़े । दोपहर 10 बजने तक जब वे न लौटे, तब मैं उनको खोजने निकल पड़ा - सोचा कि कल से वे विशेष कुछ खाये-पीये नहीं हैं। शरीर भी क्लान्त है। उनको लाकर जल्दी भोजन आदि करवा दूँ । सब मंदिरों में घूमता रहा, परन्तु उन लोगों का कोई संवाद मुझे नहीं मिला। अंत में हरिदास ठाकुर के अखाड़े में जाकर देखा कि वे तीनों लोग महाप्रभु के मंदिर के सामने बेहोश पड़े हैं । अखाड़े के महन्त एवं दो एक वैष्णव वहाँ निकट में खड़े हैं । मैं वहाँ पहुँचकर उनकी चेतना लौटाने के लिए क्रमानुसार प्रत्येक के कान में तारक ब्रह्म नाम जोर-जोर से सुनाने लगा । एक की जब चेतना लौट आती तो उसे प्रमुख दरवाजे के पास बिठाकर दूसरे के कान में मंत्र सुनाता। तब वह व्यक्ति तो चेतना लाभ करता, परन्तु जिसे प्रमुख दरवाजे पर बैठा करके आया था, वह उस नाम को सुनकर पुनः अचैतन्य हो जाता । मैं बड़े ही झमेले में पड़ गया । इन लोगों को घर तक लाना मेरे लिए असंभव सा जान पड़ा। इधर काफी देर भी हो गई थी। भयानक गर्मी भी पड़ रही थी ।

अंत में मैंने एक युक्ति की । 'नाम' करते-करते जब एक की चेतना लौट आती तो उसे पकड़कर काफी दूर जहाँ से वह 'नाम' न सुन सके, एक वृक्ष के नीचे उसे बिठा आता । इस प्रकार प्रत्येक को 'नाम' सुनाकर, प्रकृतिस्थ करके तीनों को लेकर वापस घर लौटा । वे लोग चुपचाप चले आ रहे थे । शराबी की तरह गिरते-पड़ते बहुत देर बाद घर में लौटे। उस दिन वे नहा भी न सके। कुछ भोजन वगैरह करके विश्राम किया ।

उसके दूसरे दिन सबको लेकर मैं बोलपुर लौटा । आते समय देवीपुर तक पहुँचने में हमें ज्यादा समय नहीं लगा । कुलीन ग्राम आने के समय लग रहा था कि 20 कोस चलना पड़ा था ।

गुरु दर्शन के लिए कलकत्ता गमन

समय के प्रभाव से कुलीनग्रामवासी गण बहिर्मुख हो गए थे परन्तु उनके अन्दर धर्मानुराग था । इस घटना के बाद लोगों में धर्मभाव का विशेष जागरण हुआ। रोज नाम संकीर्तन होने लगा । आपस में लड़ाई, झगड़ा, विद्वेष, मुकदमा सब भूलकर वे सब धर्म कार्यों में मनोनिवेश करने लगे। मैं भी उन लोगों को गुरुजी के पास ले जाकर दीक्षा दिलवाने की चेष्टा करने लगा । **कुलगुरु का परित्याग, उच्छिष्ट का त्याग, श्राद्ध व अन्य घरों में निमंत्रण का त्याग, सदाचार का पालन, उन लोगों के लिए एक बड़ी समस्या हो गई ।**

कुलीन ग्राम के युवकगण गोस्वामीजी के पास दीक्षा लेने के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं, यह संवाद सारे आसपास के ग्रामों में प्रचार हो गया । जो लोग संसारासक्त, मायामुग्ध थे, वे लोग सोचने लगे कि यदि उनके लड़के गोसाँई जी के पास दीक्षा ग्रहण कर लेंगे तो उनकी सांसारिक रूप से क्षति हो जायेगी और सांसारिक कार्यों में रुचि नहीं रहेगी। अत: वे लोग अपनी संतानों को दीक्षा न लेने के लिए समझाने लगे । कुछ व्यक्ति जिनका पिता के प्रति आदरभाव था, उन लोगों ने बाध्य होकर दीक्षा लेने का संकल्प त्याग दिया। परन्तु जो लोग अशिष्ट, उद्दण्ड, कठोर प्रकृति के थे वे लोग दीक्षा लेने की प्रस्तुति करने लगे। उन लोगों ने अपने अभिभावकों की बातों को टाल दिया । ग्राम के अंदर एक विलक्षण आन्दोलन चलने लगा ।

मेरे बड़े भैया ने पूर्व में अनेक आपराधिक कार्य किये थे। सद्गुरु के आश्रय के बिना उनका उद्धार होना कठिन है, यह जानकर मैं उन्हें दीक्षा लेने के लिए जिद करने लगा परन्तु वे बारंबार दीक्षा लेने में असहमति जताने लगे ।

दुर्गापूजा की छुट्टी में, मैं गोस्वामीजी के दर्शन के लिए कलकत्ता

गया। साथ में कुछ कमल के फूल और दो छोटे - छोटे कच्चे आम ले गया । कलकत्ता पहुंचकर उनको प्रणाम करके वे फूल एवं दो आम उनके चरणों में अर्पण किये । उन्होंने वे वस्तुएँ देखकर आनंदित होकर मुझसे कुशल वार्ता पूछकर एक बड़े पीतल के गमले में जल भरकर कमल के फूलों को अपने पास रखने के लिए कहा एवं दोनो कच्चे आमों (केरी) को छोटे-छोटे टुकड़े करके उसमें नमक मिलाकर लाने के लिए कहा । आम के टुकड़ों को शिष्यों को एक-एक करके बाँट दिया एवं स्वयं भी उन्होंने एक टुकड़ा ग्रहण किया ।

शिष्यगण आम का एक टुकड़ा खाकर आ:, ऊ: करते-करते एवं हँसते हुए मुझसे कहने लगे कि भैया, ऐसा आम लाये हो कि हम ८० व्यक्ति भी इसको खा नहीं सकेंगे। यह इतना खट्टा है कि एक टुकड़ा चबा सकना भी हम लोगों के लिए असंभव है। हम लोग तुमसे हार गए। मैंने कहा कि हमारे बोलपुर के आम ऐसे ही स्वादिष्ट होते हैं, समझे ? इसलिए तो मैं गोस्वामीजी के लिए लाया हूँ, इस आम की कितनी कदर उन्होंने की ? तुम लोगों को इस प्रकार आम खाने की याद बहुत दिनों तक याद रहेगी।

श्री जगन्नाथजी की रथयात्रा का संपूर्ण विवरण गोस्वामीजी को मैंने कहा । संकीर्तन दल की क्षुधा, तृष्णा अचानक कैसे दूर हो गई ? इस विषय पर उनसे मैंने पूछा -

मैं - क्षुधा, तृष्णा से मृतप्राय एवं चाय के अभाव में अवसाद ग्रस्त संकीर्तन का दल जब हरिदास ठाकुर के आंगन में उपस्थित हुआ, तब वे संपूर्ण स्वस्थ होकर, पूर्ण उत्साहित होकर कैसे कीर्तन करने लगे ?

गोस्वामीजी - कुलीन ग्राम के सब देवता जाग्रत हैं। तुम लोगों को पाकर वे बड़े आनन्दित हुए, एवं उनकी कृपा से ही तुम्हें नवजीवन प्राप्त हुआ ।

मैं - काली, दुर्गा, शिव आदि हिन्दूओं के देव-देवी-ये सब क्या चीज हैं ?

गोस्वामीजी - ये सब सत्य हैं। भगवान के ही रूप हैं। ईश्वर के अनन्त भाव हैं ।

मैं - साधनप्राप्त व्यक्तिगणों में कोई अनेक प्रकार के देवी-देवताओं के दर्शन करता है, और कोई बिल्कुल नहीं करता, इसका क्या कारण है ?

गोस्वामीजी - पिछले जन्मों में जिसकी जैसी तपस्या है, जिसको देव दर्शन की प्रबल इच्छा है, उन्हें देव दर्शन होते हैं। जिसकी इच्छा नहीं होती, उन्हें नहीं होते । जो व्यक्ति जिस देवता को चाहता है, उसके सामने वही देवता प्रकाशित होता है। सबका पथ भी एक प्रकार का नहीं होता । कोई-कोई देवदर्शन के बदले जितेन्द्रिय होना ज्यादा आवश्यक समझते हैं ।

मैं - हम लोगों के बीच कईयों को काफी देवदर्शन होते हैं, किन्तु उस दर्शन से उनकी ''हृदय ग्रन्थियों'' का छिन्न होना, प्रतीत नहीं होता। शास्त्र में लिखा हुआ है ''भिद्यते हृदय ग्रंथि द्दिद्यन्ते सर्व संशया:। क्षीयंते चास्य कर्माणि मयि द्दष्टेऽखिलात्मनि ।'' (भागवत् 11-14 -30) **जिनको देव दर्शन होते हैं उनकी आसक्ति या संशय तो दूर होता हुआ मालूम नहीं पड़ता, कर्मक्षय होना भी नहीं दिखता ।**

गोस्वामीजी - देवदर्शन होने से संशय नाश या आसक्ति दूर नहीं होती, कर्म क्षय भी नहीं होता । जबतक उन सच्चिदानन्द विग्रह के दर्शन नहीं होते तब तक ये सब विद्यमान रहते हैं ।

मैं - किस समय सच्चिदानन्द विग्रह के दर्शन होते हैं ?

गोस्वामीजी - माया के रहते सच्चिदानन्द विग्रह के दर्शन नहीं होते।

मैं - यदि देवदर्शन से आसक्ति, संशय नाश या कर्मक्षय नहीं होता तो इस प्रकार के दर्शन से क्या लाभ होता है ?

गोस्वामीजी - देव दर्शन से साधन भजन में निष्ठा आती है। नाम में रुचि होती है, और भी कई लाभ हैं परन्तु यदि अहंकार हो जाये तो मुश्किल है ।

मैं - जीव क्या 'पंचकोष' में आबद्ध है ?

गोस्वामीजी - हाँ, साधन भजन के द्वारा 'पंचकोष' भेद करना पड़ता है ।

मैं - ये पंचकोष कौन-कौन से हैं ? इनके कार्य क्या हैं ?

गोस्वामीजी - 1) अन्नमय, 2) प्राणमय, 3) मनोमय, 4) विज्ञानमय, 5) आनन्दमय, ये पांच कोष है । अन्नमय कोष में आहार की परितृप्ति, प्राणमय कोष में इन्द्रिय चांचल्य, मनोमय कोष में वासना, कामना, संकल्प-विकल्प, विज्ञानमय कोष में, मैं कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? इन सब प्रश्नों का उदय होता है। आनन्दमय कोष में पार्थिव आनन्द भोग होता है। यहाँ तक जीव की बद्धावस्था कहलाती है। आत्मा जब तक पंचकोष में आबद्ध है तब तक जीवात्मा कहलाती है। उस अवस्था तक उसे सुख या दुख का बोध होता है । पंचकोष भेद होने पर वह आत्मा कहलाती है। इसके बाद भी वासना रहती है। कोई स्थूल देह धारण कर वासना क्षय करता है, कोई सूक्ष्म देह धारण करके। कोई कारण देह धारण कर वासना क्षय करता है।

मैं - पंचकोष भेद होने के क्या-क्या लक्षण हैं ?

गोस्वामीजी - पार्थिव (जागतिक) भोगों में अनासक्ति होने से समझना होगा, अन्नमय कोष भेद हो गया है। इन्द्रिय चांचल्य समाप्त होने से प्राणमय कोष भेद, संकल्प विकल्प दूर होने से मनोमय कोष भेद, संशय नष्ट होने से विज्ञानमय कोष एवं जागतिक सब प्रकार के सुख में मन यदि सुखानुभव न करे तो आनन्दमय कोष भेद हो जाता है।

मैं - पंचकोष भेद होने से निरापद अवस्था प्राप्त हो जाती है ?

गोस्वामीजी - नहीं, तब भी वासना रहती है । स्थूल देह क्षय होने पर भी सूक्ष्म एवं कारण देह रहता है । सूक्ष्म देह जिस वासना से उत्पन्न होता है, उसके लय होने पर भी कारण देह रहता है। समस्त वासनाओं की आत्यन्तिक निवृत्ति न होने तक मनुष्य संपूर्ण निश्चिन्त अवस्था में नहीं पहुँच सकता । छोटी-छोटी वासना से भी धीरे-धीरे स्थूल देह जन्म ग्रहण कर सकता है । पूर्ण मुक्त होने से वह सर्वदा सच्चिदानन्द के आनन्द सागर में निमग्न रहता है । वहाँ उसे सर्वदा ही भगवान की लीला के दर्शन होते रहते हैं ।

मैं - जो लोग भगवान को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें आहार का नियम मानना जरुरी है क्या ? कुछ लोग कहते हैं कि आहार के साथ धर्म का संबंध नहीं है ?

गोस्वामीजी - आहार के साथ धर्म का घनिष्ठ संबंध है । राजसिक एवं तामसिक आहार ग्रहण करने से शरीर में रजोगुण एवं तमोगुण की वृद्धि होती है, इससे उसके द्वारा भजन साधन करना कठिन हो जाता है । अत: सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए ।

मैं - सात्विक आहार में मुख्य-मुख्य कौन सी वस्तुएँ हैं ?

गोस्वामीजी - अरवा चावल, घी, दुग्ध, आटा, मूंग की दाल इत्यादि वस्तुएँ जिसको खाने से पेट में विकार पैदा न हो ।

मैं - हम लोगों को मांस आदि खाना निषिद्ध क्यों है ?

गोस्वामीजी - इससे अत्यन्त तमोगुण की वृद्धि होती है। दया, क्षमा आदि वृत्तियों का विकास नहीं हो पाता ।

मैं - मछली खाना भी दोष-युक्त है ?

गोस्वामीजी - जो लोग नये-नये साधन भजन में प्रवृत्त होते हैं, उनको उतनी क्षति नहीं होती, परन्तु साधन में उन्नति के साथ क्षति होने लगती है । सूक्ष्म देह में भ्रमण के समय कष्ट होता है । दया वृत्ति का नाश होता है । बौद्ध एवं मुसलमान (सूफी) योगीगण भी मत्स्य, माँस का आहार उन्नत अवस्था प्राप्त होने पर छोड़ देते हैं। आहार सात्विक होने से मन भी सात्विक होता है । इसलिए आहार के विषय में सावधान होना साधक के लिए आवश्यक है ।

मैं - आहार द्रव्य कोई स्पर्श करे तो क्या क्षति होती है ?

गोस्वामीजी - हाँ, उसमें भी क्षति होने की संभावना रहती है । किसी को यदि कोई रोग हो तो वह रोग संक्रमण होने की संभावना रहती है । उसके सब गुण-अवगुण तुम्हारे मन बुद्धि पर प्रभाव डालेंगे ।

गोस्वामीजी के साथ इस प्रकार विभिन्न कथोपकथन के पश्चात् मैंने पंडित जी की देवदुर्लभ अवस्था का वर्णन किया । उसको सुनकर गोस्वामीजी ने कहा -

गोस्वामीजी - पंडित जी की आध्यात्मिक अवस्था काफी अच्छी है किन्तु वे एक 'ग्रन्थि' में अटके हुए हैं । (उस ग्रन्थि के विषय में मैंने उनसे नहीं पूछा - मैं समझ गया कि वे 'अभिमान' में अटके हुए हैं।)

मैं - किस प्रकार वे उस 'ग्रन्थि' से छुटकारा पा सकते हैं ?

गोस्वामीजी - **उन्हें साधू-सन्तों की सेवा करनी पड़ेगी ।**

मैं - आपने तो कहा था कि एक मात्र नाम करने से सब अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं। फिर आप साधू-सेवा के लिए क्यों बोल रहे हैं ?

गोस्वामीजी - 'नाम' कर सकने पर और कुछ करने की जरुरत नहीं होती किन्तु सब समय 'नाम' करना साधक के लिए कठिन है । कर्म के रहते साधक 'नाम' नहीं कर सकता, **कर्म के द्वारा कर्मक्षय सहज होता है ।**

मैं - आप साधू सेवा करने के लिए कह रहे हैं, साधू असाधू किस प्रकार से जाना जा सकता है ? पंडितजी किस प्रकार के साधू की सेवा करेंगे ?

गोस्वामीजी - जो व्यक्ति अपना कर्म सुचारु रूप से संपन्न करता है, जो दिन में एक बार भी भगवान का नाम उच्चारण करता है, वह साधू है ।

मैं - पंडित जी बोलपुर में रहते हैं, लोग उनको परम साधू समझते हैं, उनकी सेवा कौन लेगा ?

गोस्वामीजी - किसी नयी जगह में जाकर लोगों की सेवा करें ।

मैं - जन-सेवा के लिए वे कौन सा कार्य कर सकते हैं ?

गोस्वामीजी - अधिक क्या कहूँ ? गाय की सेवा कर सकते हैं। चारा वगैरह काट कर भी सेवा कर सकते हैं ।

मैं - आपने जो साधन प्रणाली हम लोगों को प्रदान की है, उससे मनुष्य को क्या प्राप्त हो सकता है ?

गोस्वामीजी - इस पृथ्वी में जितने प्रकार की साधन प्रणाली वर्तमान हैं; उनमें मनुष्य जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वह तो उसे प्राप्त होगा ही, साथ ही साथ ''प्रेमभक्ति'' की प्राप्ति भी होगी ।

मैं - प्रेमभक्ति किसको कहते हैं ?

गोस्वामीजी - भक्ति साधारणत: तीन भागों में विभक्त है । सात्विक, राजसिक एवं तामसिक । भगवान के प्रति जो अहैतुकी (निष्काम) भक्ति होती है, उसे प्रेमभक्ति कहते हैं । भक्ति-शास्त्र पाठ करने से भक्ति के संबंध में विशेष रुप से जान सकते हो ।

मैं - इस साधन द्वारा आपको क्या प्राप्त हुआ है ?

गोस्वामीजी - मनुष्य जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वह मुझे पूर्णरुप से प्राप्त हो गया है। मुझे और कुछ अवस्था प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है ।

पंडितजी बोलपुर में भिक्षा करके स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाकर पाते थे। गोस्वामीजी ने एक दिन उनकी भिक्षा के संबंध में पूछा। मैंने कहा -

मैं - पंडितजी को दो घर में भी भिक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती । जिस घर में जाते हैं, वे लोग ''सीधा सामान'' (चावल, दाल सब्जी आदि) उनको दे देते हैं । पंडितजी अपने प्रयोजनानुसार 2/3 मुट्ठी चावल एवं थोड़ी सब्जी, नमक, दाल, तेल, घी, मसाले, दूध वगैरह ले लेते हैं । बाकी वस्तु वापस लौटा देते हैं । एक समय के अतिरिक्त भोजन नहीं करते हैं । विधर्मियों के यहाँ भिक्षा ग्रहण नहीं करते । यदि किसी दिन उस घर में भिक्षा का सामान नहीं मिलता, तब वे लोग सामान खरीदने के लिए 'रुपये' दे देते हैं। पंडितजी उन रुपयों से बाजार में जाकर आवश्यक सामान खरीद लेते हैं। नित्य भिक्षा करते हैं ।

गोस्वामीजी - अरे ! पंडितजी 'रुपया' भिक्षा करते हैं ? उनको कह देना ''रुपया लेना'' भिक्षा नहीं कहलाता, वे रुपया भिक्षा में न लें।

पंडितजी को बाद में इन सब बातों को मैंने कहा, तब से वे किसी के पास से भी रुपया नहीं लेते । साधू-सेवा की आज्ञा का पालन करने के लिए वे कुछ दिन हम लोगों की गौ के लिए चारा वगैरह काटते थे। कभी-कभी महाप्रभु के अखाड़े में जाकर गो सेवा करते । मैंने पंडितजी के शरीर में जिस प्रकार के सात्विक लक्षण दर्शन किये हैं, वैसे लक्षण मुझे अन्यत्र नहीं दिखे । उनका स्वभाव भी बड़ा चित्ताकर्षक था । सबके प्रति उनका प्रेमभाव था ।

पंडित जी का कुलीन ग्राम गमन

भक्त गुरुभाई **श्रीधर घोष** कुलीन ग्राम की अद्‌भुतवार्ता सुनकर कुलीन ग्राम जाने के लिए व्यग्र हो उठा इसलिए कलकत्ते में ज्यादा दिन रह न सका । मैं गोस्वामीजी की अनुमति लेकर पंडितजी, भक्त श्रीधर एवं नानीमाँ को साथ लेकर कुलीन ग्राम रवाना हुआ । **भक्त श्रीधर की गुरुनिष्ठा अति तीव्र थी, वे गोस्वामीजी को छोड़कर थोड़ी देर भी नहीं रह सकते थे** परन्तु कुलीन ग्राम दर्शन की तीव्र इच्छा होने से अपने मन को अनेक प्रकार से समझाकर, हम लोगों के साथ चल पड़े ।

हम लोग संध्या के समय देवीपुर स्टेशन पहुँचकर वहाँ से बैलगाड़ी से कुलीन ग्राम की ओर रवाना हुए । बीच के एक ग्राम में पहुँचते-पहुँचते आठ बज गए । गाड़ीवान ने कहा कि सामने नदी है, रात्रि में पार करना दुष्कर है । हम लोगों ने उसकी बात मानकर, एक ब्राह्मण के घर में रात्रि यापन किया । ब्राह्मण ने हम लोगों की यथेष्ट आवभगत की । आहार एवं रहने का सु-बन्दोबस्त कर दिया । **गुरु विरह में श्रीधर अत्यन्त अधीर हो गये। वे हम लोगों के साथ कुलीन ग्राम न जा सके। सबेरे उठकर उसको देवीपुर स्टेशन वापस भिजवा दिया गया।** फिर हम लोग कुलीन ग्राम में उपस्थित हुए । साल भर से कुलीन ग्राम में नित्य नाम-संकीर्तन आरंभ हो गया था । हम लोगों को देखकर वहाँ के संकीर्तन दल के लोग खूब आनन्दित हुए एवं संकीर्तन का आयोजन करने लगे ।

उसके अगले दिन हरिदास ठाकुर के पाट के आंगन में संकीर्तन प्रांरभ हुआ । संकीर्तन की गगनभेदी ध्वनि सुनकर भक्तों में भावावेश का संचार होने लगा । एक-एक व्यक्ति आठ-दस हाथ दूर कूदकर नीचे गिर पड़ते। नीचे जमीन पर काँटें, पत्थर वगैरह थे परन्तु उनकी ओर दृष्टि नहीं थी। फिर वहाँ से कूदकर पुन: कीर्तनदल में सम्मिलित हो जाते। सब कोई कीर्तन के नशे में मस्त थे। शरीर के प्रति किसी को परवाह नहीं थी। शरीर में सिंह के समान बल प्रतीत होता था। क्लान्ति, अवसाद कुछ नहीं दिखता था । ऐसा अद्‌भुत संकीर्तन (कुलीन ग्रामवासियों का) मैंने पहले कभी नहीं देखा था ।

इस संकीर्तन में ग्रामवासी बूढ़े, बच्चे, स्त्रियाँ, सज्जन, दुर्जन सब आकर उपस्थित होने लगे । शक्ति की प्रतिक्रिया की तरंग प्रबल रुप से बहने लगी । करीब 20/25 स्त्रियाँ एवं 7/8 व्यक्ति एकदम अचैतन्य होकर धराशायी हो गये । कुछ पथिक लोग भी बेहोश हो गये । गायक एवं वादक उन्मत्त हो गये, किसी को कोई होश नहीं । वे सब के सब नृत्य करने लगे। नृत्य बंद ही नहीं होता था ।

उस समय अनेकों को देवदर्शन होने लगा । एक ब्राह्मण शिशु पिता की गोद में बैठकर बोलने लगा -

शिशु - पिताजी देखो वह कौन हैं ? कौन हैं ?

पिता - कहाँ देखूँ ?

शिशु - पिताजी, आप देख नहीं सक रहे हैं । कितना सुन्दर देखने में है ? चार हाथ हैं, सिर पर मुकुट है, कैसे हँस रहा है ? वे कौन हैं पिताजी ?

पिता - कहाँ पर, ठीक से बता ?

शिशु - (आकाश की ओर देखकर) वो तो खड़े हैं । पिताजी, तुम देख नहीं सकते हो ? शिशु की बात सुनकर उसके पिता एवं अन्य लोग आश्चर्यचकित हो गये । शिशु को पुन: पुन: पूछने पर नारायण के रूप का वर्णन करने लगा । इधर मेरे बड़े भैया को दर्शन मिला कि एक भयानक देवी, दशभुजा मूर्ति, जिसकी देह आकाश को छू रही है, साथ में सिंह एवं असुर भी है, असुर के शरीर से रक्त की नदी सी प्रवाहित हो रही है । बाद में देखा कि काली माता की विशाल विकराल मूर्त्ति, शिवजी के विशाल देह पर नृत्य कर रही है, गले में मुण्डमाला व एक हाथ में खड्ग लिये हुए है, एक हाथ में असुर के मुण्ड का चर्बन कर रही है, जिह्वा से रक्त धारा बह रही है ।

इस प्रकार की भीषण मूर्ति के दर्शन कर बड़े भैया कम्पित देह से, आँख मूंदकर ''भोग लगाओ, देवी को भोग लगाओ'' कहकर चिल्लाने लगे। दर्शन की संपूर्ण बातें उन्होंने बाद में बताई थी । उनकी बात सुनकर मैंने तत्क्षण देवी के लिए भोग का आयोजन किया । देर तक

रात्रि में कीर्तन होने के पश्चात् हरिलूट* प्रसाद वितरण के समय भजन गायन शुरु हुआ । ''ठाकुर हरिदास खजांची बनकर नगर में हरिलूट प्रसाद वितरण कर रहे हैं,'' इस भावार्थ का भजन होने लगा । पंडितजी ने दर्शन किया कि एक महापुरूष थाली में बताशा लेकर हरिदास पाट से निकल रहे हैं । वे महापुरुष दीर्घकाय थे एवं उनके गले में खूब बड़े दाने से निर्मित तुलसी की माला थी ।

''हरिलूट'' प्रसाद लेकर संकीर्तन बंद होने से श्रोतागण अपने घर चले गए । जो लोग अचेत हो गए थे, उनको चैतन्य किया गया परन्तु संकीर्तन के लोगों की चेतना नहीं लौटी । वे लोग आँखें मूंदकर बेहोश अवस्था में नृत्य करते ही रहे । कीर्तन, भजन, मृदंग-वादन सब बंद होने के बावजूद उनका नृत्य थमता ही नहीं था । रात्रि भी काफी हो गई थी । बाद में बाध्य होकर मैंने अंत में 4/5 लोगों को पकड़ने के लिए स्पर्श किया, उसी समय वे लोग जमीन पर गिर गये एवं छटपटाने लगे । यह दृश्य देखकर मुझे उनके भाव में व्यवधान करने के कारण बहुत ही दु:ख हुआ ।

एक व्यक्ति को तो अंत तक होश ही नहीं आया । चार-पाँच लोग उसे उठाकर उसके घर में रख आये । इसके बाद पंडितजी एवं नानीमाँ चार-पाँच दिन तक कुलीन ग्राम एवं उसके आस-पास के ग्राम के विग्रहों के दर्शन करने लगे । उसके बाद मैं उनको लेकर बोलपुर लौट आया ।

पुन: गुरु दर्शन के लिए कलकत्ता गमन

बड़े दिन की छुट्टी में 1896 ई में. मैं पुन: गुरु दर्शन के निमित्त कलकत्ता पहुंचा । साथ में मेरा रसोईया गोविन्द एवं नौकरानी युगल मोहिनीदासी को दीक्षा दिलवाने के लिए ले चला । नौकर, रसोईया वगैरह मेरी सेवा करते हैं। इनका उपकार करना भी मेरा कर्त्तव्य जान पड़ा। पर मैं उनका क्या कल्याण कर सकता हूँ ? जिससे वे दुस्तर

---

* संकीर्तन के अंत में बताशे वगैरह एक थाली में रखकर कुछ समय भजन गायन एवं स्तोत्र पाठ कर उसे श्रोताओं में वितरण करना या लुटाना। बंगाल में इसकी प्रथा आज भी है, इसे ''हरिलूट'' कहते हैं । सम्पादक

भव-यंत्रणा से मुक्त हो सकें इसलिए उन्हें गोस्वामीजी के चरणों में अर्पण करने की मुझे इच्छा हुई । साथ में पंडितजी, मेरे संबंधी काली-कृष्ण सरकार एवं पड़ौसी नृपेन्द्र नाथ चक्रवर्तीजी भी गये । गोस्वामीजी को प्रणाम करने से उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर हम लोगों की कुशलवार्ता पूछी ।

मेरे मित्र अघोरनाथ चटर्जी को शान्ति निकेतन में पुनः लौटाने की चेष्टा की वार्ता मैंने गोस्वामीजी से कही । उन्होंने कहा - ''यदि अघोरबाबू'' ने पुनः शान्ति निकेतन में कार्यग्रहण किया तो इस बार उन्हें अपमान पूर्वक वहाँ से हटा दिया जायेगा । बाद में कहा कि उन्हें चिन्ता करने को मना करना। भगवान् उनकी घर-गृहस्थी चलाने की व्यवस्था* इस प्रकार से कर देंगे कि वे समझ भी नहीं सकेंगे । दीक्षा की बात पुनः पूछने पर उन्होंने कहा कि अभी उनका समय नहीं हुआ है ।

श्रीवृन्दावन धाम के परम भक्त श्री गौर शिरोमणि जी से गोस्वामीजी की अंतरंग मित्रता थी । उनके पुत्र श्री रासवल्लभ भक्तिभूषण एवं पौत्र शचीनन्दन बीच-बीच में मेरे घर में आते रहते थे । गौर शिरोमणि जी के संबंध में गोस्वामीजी कहते थे कि उनके समान परम वैष्णव विरले ही हैं। रास्ते में जाते समय यदि बीच में कुत्ता सोता मिल जाये तो वे उसे हाथ जोड़ करके कहते थे कि आप जरा हट जाइये, मैं जाऊंगा । मेहतर, भंगी शब्द न कहकर कहते थे कि जो मेरे घर को साफ करते हैं । घर में कोई उत्सव वगैरह होने से मेहतर को पहले प्रसाद देकर उनके घर के लिए खाने की वस्तु देते थे। वे किसी का कोई भी दोष नहीं देखते थे।

एक बार कुछ लोग गौरशिरोमणि जी के पास आकर बोले कि वृन्दावन में आपको सब मानते हैं । एक वैष्णव यहाँ व्यभिचारी है। उसको शासन करना है जिससे वह भविष्य में गलत कार्य न करे । उसी समय वह व्यक्ति वहाँ उपस्थित हुआ । शिरोमणिजी ने उनको प्रणाम करके आसन दिया । कुछ देर बाद वह चला गया । तब उन लोगों ने शिरोमणि जी को कहा कि आप तो दुर्नीति को बढ़ावा दे रहे हैं । शिरोमणि जी ने कहा -

* अघोरबाबू बाद में औषध विक्रय का व्यवसाय करने लगे थे जिससे उनकी आर्थिक अवस्था काफी उन्नत हो गई थी ।

शिरोमणि - वे तो मेरे गुरु हैं, उनको आसन देकर प्रणाम करना मेरा कर्त्तव्य है ।

व्यक्तिगण - (आश्चर्य से) ये आपके गुरु कैसे हो गए ? आपने तो किसी अन्य जगह से दीक्षा ली है ।

शिरोमणि - ये मेरे शिक्षा गुरु हैं । वैष्णव यदि व्यभिचारी हो जाये तो समाज में उसे किस प्रकार से निंदा एवं अपमान सहन करना पड़ता है ? वे अपने जीवन में आचरण करके शिक्षा दे रहे हैं ।

व्यक्तिगण चुप रह गए । वह वैष्णव उनकी यह बात दूसरों के पास से सुनकर गौरशिरोमणि जी के पास आकर क्षमा प्रार्थना करने लगा एवं उसके बाद से उसका चरित्र सुधर गया ।

गौरशिरोमणि जी के देहान्त के बाद गोस्वामीजी की आँखों में आँसू आ गये थे । उनके किसी शिष्य ने उनसे कहा था कि एक व्यक्ति की मृत्यु से आप इतना व्यथित कैसे हो गए ? तब गोस्वामीजी ने कहा था कि **''भक्त-विरह'' क्या होता है ? यह बात तुम लोग समझ नहीं सकते !** उनके मृत्यु वृतांत के संबंध में सुनने की इच्छा से मैंने गोस्वामीजी से पूछा तो उन्होंने कहा -

गोस्वामीजी - शिरोमणिजी ने गोपीदेह प्राप्त किया । मृत्यु के बाद देह से निकलकर गोपीदेह में मेरे पास आकर प्रणाम करके हाथ जोड़कर उन्होने कहा ''दासी हाजिर है, जब जो आज्ञा हो, दीजिएगा''।

मैं - उनकी आकृति एवं रूप किस प्रकार का था ?

गोस्वामीजी - ठीक व्रजगोपियों की तरह, अति उज्ज्वल गौरांगी ।

मैं - उनका परिधेय वस्त्र क्या था ?

गोस्वामीजी - श्वेत-वर्ण घाघरा एवं ओढ़ना आदि । उसमें सोने के फूल कढ़े हुए थे ।

मैं - उनकी उम्र कितनी थी ?

गोस्वामीजी - प्रथम यौवन ।

कुलीन ग्राम में ठाकुर सेवा की त्रुटियों की बात गोस्वामीजी को कहने से उन्होंने कहा कि आजकल अधिकतर पुजारी चरित्रहीन हैं।

उनके द्वारा सेवापूजा कठिन है । शान्तिपुर में श्यामसुन्दर के पुजारी को भी पूजा के समय खोजना पड़ता है । एक दिन श्यामसुन्दर ने आकर मुझको कहा था कि तुमने मुझे प्रतिष्ठा करवाकर खोज खबर नहीं ली । कई दिन मुझे स्नान नहीं करवाया गया । मैंने कहा कि प्रभु, मुझे क्यों दोष दे रहे हो ? इस जगत में कौन ऐसा है जो तुमको पकड़ कर रख सकता है ? तुम अपनी इच्छा से आये हो और अपनी इच्छा से रह रहे हो ।

इस घटना के बाद जिससे श्यामसुन्दरजी की ठीक से सेवा हो, इसके लिए उन्होंने शान्तिपुर में खबर भिजवाई । गोस्वामीजी ने फिर कहा कि आजकल दंड देकर या डाँटकर शासन करने से कार्य कराना कठिन है। उन लोगों को संतुष्ट करके सेवा चलानी पड़ेगी । पुजारियों के साथ मेलजोल करके काम करवाना पड़ेगा। विरोध करने से असुविधा होगी। बीच-बीच में सब्जी व अन्य सेवा की वस्तुएँ अपनी ओर से भिजवा देना ।

45 नंबर, हैरिसन रोड़ कलकत्ता में 100 रु. प्रतिमाह किराया देकर घर की व्यवस्था की गई थी । उस समय गोस्वामीजी के अनेक शिष्यगण वहाँ उनके साथ रहते थे । सब का खर्च उन्हें ही चलाना पड़ता था।

रोजाना प्रयोजनीय वस्तुयें दुकान से लाई जाती थी। रुपये का जुगाड़ होने पर दुकानदार को दे दिया जाता था । योगजीवन के द्वारा यह सब कार्य किया जाता था । गोस्वामीजी इसकी कोई खोज खबर नहीं लेते थे। किसी चीज का कोई हिसाब नहीं था । दुकानदार जितना बोलता था, उसे दे दिया जाता था । कभी-कभी योगजीवन को रुपये के लिए बड़ी ही असुविधा भोगनी पड़ती थी ।

एक दिन सबेरे एक अपरिचित व्यक्ति गोस्वामीजी के पास आकर कहने लगा -

अपरिचित व्यक्ति - महोदय, आपके बक्से में जो कुछ रुपये हैं, वह मुझे दीजिये ?

गोस्वामीजी - मेरा कोई बक्सा नहीं है ।

अपरिचित व्यक्ति - बाजू के घर में आपका बक्सा है ।

यह बात सुनकर गोस्वामीजी ने योगजीवन को बुलाकर बक्से के बारे में पूछा ।

योगजीवन - क्या करूँ ? रुपया-पैसा आने से उसे कहाँ रखूँ? यह सोचकर एक टिन का बक्सा मैंने संग्रह किया था ।

गोस्वामीजी - उस बक्से में जो कुछ भी हो, उस व्यक्ति को लाकर दे दो ।

इस बात को सुनकर योगजीवन चिन्तित हो उठे। उन्होंने सोचा कि तिमंजले मकान में हम लोग रहते हैं। शायद यह व्यक्ति हमें अमीर सोचकर भिक्षा के लिए यहाँ आया है। यह व्यक्ति तो नहीं जानता कि हम लोगों का रोज का खर्च किस प्रकार चलता है ? इसलिए इसे वास्तविक बात बता देना ठीक रहेगा जिससे वह पुनः प्रार्थना न करे । यह सोचकर-

योगजीवन - घर का किराया पाँच महीने का बाकी था इसलिए एक व्यक्ति के पास से 200 रुपये ब्याज में लाया हूँ । मकान मालिक का आदमी कल आयेगा उसे खाली हाथ लौटाना मुश्किल है फिर ब्याज में रुपया मिलना भी कठिन है ।

इस बात को सुनकर वह व्यक्ति चुप रहा । गोस्वामीजी ने कहा कि बक्से को यहाँ ले आओ एवं उसमें जो कुछ रुपये हों, इसे दे दो ।

तब योगजीवन ने बाध्य होकर बक्सा लाकर उसके सामने खोलकर रख दिया । आगन्तुक व्यक्ति रुपयों को लेकर अपनी धोती की गाँठ में बाँधकर चला गया। जाने के समय गोस्वामीजी को बोलकर गया कि मैं आज यहाँ आकर भोजन करूंगा ।

वह व्यक्ति चला गया। योगजीवन एवं उपस्थित शिष्य-वृन्द दुःखी हो गये। दोपहर के बारह बज गये, भोजन का समय हो गया पर वह अपरिचित व्यक्ति नहीं आया । गोस्वामीजी ने भोजन नहीं किया । अस्वस्थ देह में अनाहार के कारण सिर दर्द शुरु हो गया। आँख एवं मुखमंडल लाल हो गया । एक कपड़ा जोर से माथे में बाँधकर चुपचाप उस व्यक्ति के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे । अर्थ तो गया ही परन्तु

इस पर भी गोस्वामीजी का क्लेश देखकर शिष्यगण अधीर हो उठे उन्होंने गोस्वामीजी को आहार करने के लिए कहा ।

गोस्वामीजी ने कहा - जब वह व्यक्ति आहार करने के लिए आने की बात बोलकर गया है, तब वह अतिथि है। अतिथि को बिना आहार कराये, मैं भोजन किस प्रकार कर सकता हूँ ? मैं अनुमति देता हूँ, तुम लोग सब प्रसाद पाओ । क्षुधा से ग्रस्त शिष्यगण गोस्वामीजी की आज्ञानुसार भोजन करने चले गये । गोस्वामीजी आसन पर उपवासी होकर सिरदर्द भोग करते हुए बैठे रहे ।

रात्रि के 8 बजे वह व्यक्ति आकर उपस्थित हुआ । गोस्वामीजी ने उसे प्रेमपूर्वक पास में बिठाकर विविध व्यंजनों से भोजन कराकर विदा किया । शरीर अस्वस्थ हो जाने के कारण गोस्वामीजी ने थोड़ा जलपान ग्रहण किया, पूर्ण भोजन ग्रहण न कर सके ।

गोस्वामीजी का अहंकार विनष्ट हो गया था । उन्होंने भगवान के ऊपर संपूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया था । इस जगत में उनके लिए ''अदेय'' कुछ भी न था । तुच्छ अर्थ की तो बात ही क्या ? जीवन दान करने से भी यदि कोई सुखी हो तो भी वे प्रस्तुत थे । उनके पास शत्रु-मित्र, अपना-पराया कोई नहीं था । वे सबके अंदर ईश्वर का दर्शन करते थे । एक कुत्ते का भी अनादर नहीं करते थे ।

धर्म संस्थापन के लिए व जीव-शिक्षा के लिए उनका आगमन हुआ था । किस प्रकार से अतिथि की सेवा करनी चाहिए ? उनकी मर्यादा की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिए ? किस प्रकार धैर्यवान होना चाहिए? यह सब खुद के आचरण द्वारा शिष्य -भक्त गणों को शिक्षा दे गये हैं ।

श्री उमाचरण दास गोस्वामीजी के अनुगत शिष्य थे । वे पोस्ट आफिस के डिप्टी कंट्रोलर जनरल थे। काफी वेतन उन्हें मिलता था। उनकी कोई सन्तान वगैरह नहीं थी । कलकत्ते में किराये का घर लेकर गोस्वामीजी रहते हैं, यह जानकर उन्होंने एक दिन गोस्वामीजी को कहा-

उमाचरण - मेरी इच्छा है कि मैं आपके लिए एक आश्रम यहाँ बना दूँ जिससे आप एवं सब गुरुभाई मिलकर यहाँ रहकर भजन कर सकें ।

गोस्वामीजी - मैं घर लेकर क्या करूँगा ? मुझे क्या इस तिमंजिले मकान में रहना चाहिये ? मुझे तो पहाड़-पर्वत की किसी एकान्त गुफा में या जंगल में रहना उचित है किन्तु गुरुजी की आज्ञा से यहाँ कलकत्ते में वास कर रहा हूँ। कुछ लोगों को दीक्षा मिलेगी, उन लोगों का समय अभी थोड़ा बाकी है, उनके लिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ, यदि घर बनाने की इच्छा हो तो एक संत निवास बना दो, जिसमें साधू, सन्तगण आसानी से रहकर भजन कर सकें ।

इस बात को सुनकर उमाचरण बाबू चुप रहे, कुछ कह न सके। एक दिन उमाचरण बाबू ने गोस्वामीजी को कहा कि वे एक दिन स्वप्न में एक रूप लावण्यमयी देवी का दर्शन पाये थे। वे देवी कौन थी ? गोस्वामीजी ने कहा कि श्रीकृष्ण की सखी ललिताजी ने तुम्हें कृपा करके दर्शन दिया था। उमाचरणजी ने कहा कि फिर तो दुबारा उनका दर्शन नहीं मिला। गोस्वामीजी ने कहा कि जिनके पास इतने रूपये हैं, उन्हें एक बार दर्शन मिल गया, इतना ही यथेष्ट है, यह कहकर वे हँस दिये।

श्री मोहिनीमोहन राय पहले ब्राह्म थे। उन्होंने बाद में गोस्वामीजी के पास दीक्षा प्राप्त की थी । ब्राह्म समाज में उनका विशेष प्रभाव था। अनेक ब्राह्म उनको श्रद्धा-भक्ति करते थे। वे भी धार्मिक एवं पवित्र जीवन यापन करते थे। वहाँ उनकी धर्म पिपासा न मिटने के कारण उन्होंने गोस्वामीजी से दीक्षा प्राप्त की थी। दीक्षा ग्रहण करने के बाद उनकी आध्यात्मिक उन्नति द्रुतगति से होने लगी । एक दिन उन्होंने गोस्वामीजी से पूछा-

मोहिनी बाबू - इस साधन को प्राप्त कर मुझे अचानक क्या हो गया ? इतने वर्ष तक अपने जिन ब्राह्म मित्रों के साथ उपासना करता था, अब जब वहाँ जाता हूँ तो ''नाम'' बन्द हो जाता है। नाम करना कष्टकर प्रतीत होता है ।

गोस्वामीजी - जो लोग भगवत् विद्वेषी हैं, उनके पास ''नाम'' चलना कठिन है ।

मोहिनी बाबू - ब्राह्मगण तो उपासना करते हैं, वे भगवत् द्वेषी कैसे हो सकते हैं ?

गोस्वामीजी - जो लोग, साधू, सन्यासी, भक्तगणों से द्वेष करते हैं, वहाँ भगवत् नाम स्मरण करना कष्टप्रद होगा बल्कि जो लोग अपवित्र, कुकार्य करते हैं, चरित्रहीन हैं परन्तु अपने को हीन समझकर भगवान् एवं भगवत् भक्तों को श्रद्धा-भक्ति करते हैं, वहाँ ''नाम'' करना सहज होता है ।

गोस्वामीजी की बात सुनकर मोहिनी बाबू सतर्क हो गये । भगवान के विद्वेषी लोगों का संग उन्होंने त्याग दिया ।

काँचड़ापाड़ा के पास कुलिया ग्राम में देवानन्द ठाकुर की तपस्या की जगह है। उस स्थान में महाप्रभु द्वारा ''गोपाल चापाल'' की अपराध भंजन लीला हुई थी । ठाकुर देवानन्दजी के निर्वाण दिवस पर प्रति पूष कृष्णा एकादशी को उस जगह महोत्सव होता है । वहाँ विभिन्न स्थानों से वैष्णवगण पधारते हैं । उस जगह गौर-निताई की सेवा होती है । मेरी बड़ी बहिन (जिनकी बातें पहले लिखी जा चुकी हैं) चम्पकलता दासी-उस उत्सव के दर्शन के लिए ''अपराध भंजनपाट'' दर्शन करने के लिए ''कुलिया'' ग्राम गई । जब वह गंगा में नहा रही थी, उसी समय गोस्वामीजी ने वहाँ प्रगट होकर उससे कहा कि तू क्या कर रही है ? मेरे पास आ, मैं तुझे दीक्षा दूंगा ।'' इस प्रकार दर्शन कर मेरी बड़ी बहिन एक प्रकार पागल की तरह, भीगे वस्त्रों में गोस्वामीजी के पास वहाँ से दौड़ते हुए चली आई । गोस्वामीजी ने उसे दीक्षा दी । दीक्षा के बाद कुछ दिन तक उसे कोई बाह्य ज्ञान न था, ठीक पगली जैसे हो गई थी। अविरल दर्शन आदि होते रहते थे ।

मेरे साथ आये नृपेन्द्र चक्रवर्ती, गोविन्द सरकार (रसोइया), युगल मोहनी (नौकरानी) - सब को दीक्षा मिल गई । मेरे संबंधी कालीकृष्ण सरकार ने गोस्वामीजी से पूछा - इस बार भी क्या अद्वैत प्रभु का उत्सव करना पड़ेगा ? गोस्वामीजी ने कहा कि यह क्या पूछने की बात है ? धर्म प्राप्ति के लिये यह सब करना अच्छा है । मैंने एक दिन गोस्वामीजी से पूछा -

मैं - साधन भजन चल रहा है। उससे धर्म प्राप्ति हो रही है; यह किस प्रकार समझा जा सकता है ?

गोस्वामीजी - धर्म प्राप्ति आरंभ होने से नित्य परिवर्तन एवं परिवर्धन परिलक्षित होगा । आज जो है वह कल नहीं रहेगा, यदि भजन साधन करके जीवन का कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ तो समझना होगा कि कहीं गलती हो रही है ।

मैं - परमेश्वर को क्या सचमुच देखा जा सकता है ?

गोस्वामीजी - **हाँ, उनको देखा जा सकता है।** उनके साथ बातचीत हो सकती है। उनका सब प्रकार से रसास्वादन किया जा सकता है। परमेश्वर से भिन्न कोई भी सत्य वस्तु नहीं है ।

मैं - उनका क्या रूप है ?

गोस्वामीजी - हाँ, **उनका रूप अप्राकृत है।** उस रूप का दर्शन करने से आँख अन्य रूप नहीं देखना चाहती। उनके मुख की वाणी सुनने से अन्य वार्ता सुनने की इच्छा नहीं होती। उनकी अंग-गंध सूँघने से नासिका अन्य गंध सूंघना नहीं चाहती। उनका स्पर्श पाने से अन्य किसी के स्पर्श की आकांक्षा नहीं होती ।

मैं - साधन पथ पर इतना क्लेश क्यों होता है ?

गोस्वामीजी - क्लेश (कष्ट) के बिना जीवन तैयार नहीं होता । भगवान् जिसको कृपा करते हैं, उसको रोग, शोक, अपमान, द्ररिद्रता, निर्यातन सहन करना पड़ता है। जीवन गठन के लिए इन सबकी जरूरत पड़ती है। यह सब न होने से जीवनमुक्त नहीं होता है । जीवनमुक्त न होने से कृपा का अनुभव नहीं होता है ।

मैं - काम, क्रोधादि रिपुगणों का अत्याचार और सहन नहीं होता ।

गोस्वामीजी - ये ही फिर बाद में परममित्र बन जाते हैं। इनके द्वारा भगवत सेवा होती है । रिपुगण के अव्यवहार से ही ये लोग शत्रु हो गये हैं । वास्तव में ये लोग मित्र हैं । **काम, प्रेम में बदल जाता है। क्रोध, तेज में परिवर्तित हो जाता है। आसक्ति भगवान में अर्पित हो जाती है । लोभ उनके प्रति बढ़ते जाता है इत्यादि । जगत की ओर रिपुगण जाने से शत्रु बन जाते हैं ।**

छुट्टी समाप्त होने को आ गई । मैं गोस्वामीजी से अनुमति लेकर बोलपुर लौट आया ।

अद्वैत प्रभु का तृतीय जन्मोत्सव

इस बार भी पूर्ववत् पूर्ण उत्साह के साथ 21 दिन पहले संकीर्तन आरंभ हो गया । भावावेश में संकीर्तनकारी दल एक के ऊपर एक गिरते गये, एवं सब कोई एकजुट होकर जमीन पर एक ओर से दूसरी ओर लुढकने लगे । रोज रात्रि ढाई बजे तक संकीर्तन चलता एवं फिर सुबह 4 बजते-बजते प्रभाती संकीर्तन गान आरंभ हो जाता । मुझे संकीर्तन के अंदर प्रवेश होने में डर लगता। करताल (झांझ) की रस्सी टूट जाने से नयी लगा देता, मृदंग को ठीक-ठाक कर देता, मृदंग बजाते -बजाते किसी की हाथ की उंगलियां फट जाने से ग्लीसरीन, बेल की गोंद लगाकर पट्टी बाँध देता । ठंड के दिन में सभी पसीने से लथपथ हो जाते। बड़े-बड़े पंखों से उन्हें अविश्रान्त हवा करनी पड़ती ।

मैंने बोलपुर एवं कुलीन ग्राम में जो संकीर्तन का वर्णन किया है, उसे पाठकगण अतिशयोक्ति न समझें । मैं साहित्यकार नहीं हूँ । जो कुछ घटनायें घटित हुई हैं, उनका सम्यक् वर्णन करना मेरे लिये कठिन है । **बिना देखे ये सब घटनायें विश्वास करना भी मुश्किल ही है ।** उस समय कुलीन ग्राम एवं बोलपुर में गोस्वामीजी की महाशक्ति प्रकाशित हुई थी । उस शक्ति के बल से ये सब असंभव घटनायें घटित हुई थी ।

जो लोग संकीर्तन करते थे, उनमें से कई लोगों का देहान्त हो गया है। कोई कोई अन्यत्र चले गये हैं । जो लोग जीवित हैं, उनमें इतनी शक्ति नहीं है कि वे पहले के समान कीर्तन कर सकें । तब जो कुछ भी घटित हुआ था वह केवल गुरु शक्ति के प्रभाव से संभव हुआ। मनुष्य अपनी शक्ति के बल पर ऐसा कीर्तन नहीं कर सकते ।

कुलीन ग्राम वासियों को दीक्षा प्राप्ति

कुलीन ग्राम मेरा जन्म स्थान है । पंडितजी मुझे प्रायः बोलते थे, कुलीन ग्राम वासियों के प्रति तुम्हारा कुछ कर्तव्य है। मैं सामान्य व्यक्ति हूँ, मेरे द्वारा ग्रामवासियों का क्या उपकार हो सकता है ? और मेरी शक्ति भी कितनी है ? मैं स्वयं दुष्कर भवसागर की तरंगों को देखकर भयभीत हूँ। गोस्वामीजी के पास दीक्षा ग्रहण करने से मुझे इतना विश्वास हुआ है

कि भगवान हैं। धर्म एवं धार्मिक व्यक्ति आज भी हैं। धर्मसाधन के अलावा मनुष्य के उद्धार का कोई उपाय नहीं है। मैं कुलीन ग्रामवासियों के धर्मजीवन की प्रस्तुति के लिए उन लोगों में हरिनाम संकीर्तन प्रवृत्त कराने के उद्देश्य से यहाँ से झाँझ, मजीरा, मृदंग (खोल) वगैरह बीच-बीच में भेज देता था एवं स्वयं भी जाकर उन्हें उत्साहित कर आता ।

कुलीन ग्राम भक्त-प्रधान ग्राम है परन्तु साधन-भजन नष्ट होने से उनके स्वभाव, चरित्र आदि का पतन होने लगा था। धीरे-धीरे संकीर्तन आदि का प्रचार होने से परिवर्तन होने लगा। मेरे बड़े भाई संगीत विद्या में पारदर्शी होने से संकीर्तन दल के नेता बन गये ।

मैंने कुलीन ग्राम वासियों को गोस्वामीजी से दीक्षित करवाने के अभिप्राय से बड़े भाई को पत्र लिखा कि जो लोग दीक्षा लेना चाहते हैं उन्हें वहाँ भेज दें । आने-जाने का समस्त खर्चा मैं दूंगा । बड़े भाई मेरे इस पत्र को पाकर ग्राम वासियों के साथ परामर्श करने लगे ।

श्री यदुनाथ राय रामपुरहाट ब्राह्मसमाज के सेक्रेटरी थे। वे निष्ठावान ब्राह्मोपासक थे । वहाँ ब्राह्मलोगों का प्रधान केन्द्र था । उनका प्रभाव बढ़ता हुआ देखकर वहाँ के हिन्दूओं ने एक हरिसभा की स्थापना की । दोनों दलों में काफी उत्साह था ।

ब्राह्मसमाज के उत्सव के समय यदुनाथजी के कहने पर यद्यपि उनकी धर्मपत्नी एवं मेरी बड़ी बहन लक्ष्मीमणि दासी (मेरे ताऊजी की पुत्री) ब्राह्म समाज जाती थी परन्तु वह मन से अप्रसन्न थी। उसे साकार विग्रहों की पूजा अच्छी लगती थी । वही बीच-बीच में कुलीन ग्राम जाकर वहाँ के विग्रहों के दर्शन एवं उनके भोग की व्यवस्था कर आती थी । हरिसभा के लोग भी उसे वैष्णवघर की कन्या जानकर उसकी यथोचित मर्यादा करते थे एवं वह भी हरिनाम में यथेष्ट आर्थिक सहायता करती थी। यदुबाबू उदार प्रकृति के व्यक्ति थे । वे पत्नी के धर्मविश्वास में बाधा नहीं डालते थे ।

मुझे दृढ़विश्वास हो गया था कि महापुरुषों की शक्ति के बिना धर्म प्राप्ति कठिन है। इस कारण बड़ी बहन को भी दीक्षा दिलवाने के लिए रामपुरहाट जाकर समझाया कि मनुष्यजन्म दुर्लभ है। जीवन समाप्ति की

ओर है। तुम इस प्रकार कैसे जीवन बिता रही हो ? गोस्वामीजी के पास जाकर दीक्षा ले लो। इससे तुम्हारा प्रकृत कल्याण होगा । इस बात को सुनकर वह खूब आनन्दित हुई एवं अपने पति यदुजी से अनुमति ले ली। उसने कहा कि जब आप कलकत्ता जायेंगे तो मुझे भी साथ लेकर चलना।

ई. 1897 के फागुन माह में शिवरात्रि की छुट्टी में मैं कलकत्ता जाने के लिए तैयार हुआ । मैंने कुलीन ग्राम एवं रामपुरहाट में पत्र लिखा। बड़ी बहन रामपुरहाट से सीधे मेरे पास बोलपुर आ गई । कुलीन ग्राम से बड़े भाई ने लिखा कि यदि तुम खर्च उठा सको तो मैं समस्त कुलीन ग्रामवासियों को कलकत्ता भेज सकता हूँ ।

फागुन की 8 तारीख को मैं अपने नौकर गोपीदास, बड़ी बहन एवं पंडितजी को साथ लेकर कलकत्ता रवाना हुआ । सबेरे 9 बजे ''मेमारी'' स्टेशन पर जब ट्रेन पहुँची तो देखा कि प्लेट फार्म खचाखच भरा है । कुलीन ग्राम के स्त्री, पुरूष, बालक, बालिका सब खड़े हैं । उनमें से एक ने आकर मेरे बड़े भाई का लिखा पत्र मुझे दिया ।

मैंने देखा कि ब्राह्मण, कायस्थ, उग्र क्षत्रिय, बुनकर, गोप, ग्वाला, स्वर्णकार, लुहार, बढ़ई, वैष्णव, नाई, हलवाई, डोम, चमार आदि नाना श्रेणी के लोग प्लेटफार्म में उपस्थित हैं । बड़े घर की कुलवधुएँ भी आयी थी। साथ में चोर, लम्पट, गुण्डे, डकैत भी आये थे । उनमें सती साध्वी सधवा स्त्रियाँ भी थी, व्यभिचारिणी विधवा भी थी ।

उन समस्त लोगों को देखकर मैं बड़ा निराश हो गया । भय एवं चिन्ता में डूब गया । गोस्वामीजी के पास कई सच्चरित व्यक्ति दूर-दूर से आकर भी दीक्षा न पाकर निराश लौट गये हैं। इन लोगों को कलकत्ता में गोस्वामीजी के पास ले जाने से वहाँ अशान्ति होगी एवं मुझे भी तिरस्कृत होना पड़ेगा । गोस्वामीजी क्या इन लोगों को दीक्षा देंगे ?

एक बार मन में आया कि इनमें से दुष्ट प्रकृति के लोगों को लौट जाने के लिए कहूँ परन्तु स्टेशन में सुना कि ये लोग ग्राम के समस्त बाधा विघ्नों को पार करके स्टेशन में चले आये हैं। इनके घर के स्वजन, संबंधी लोगों ने इन्हें रोकने की कोशिश की थी परन्तु इन

लोगों ने प्रतिज्ञा कर ली है कि यदि गोस्वामीजी दीक्षा नहीं देंगे तो कुलीनग्राम में नहीं लौटेंगे, गंगाजी में डूबकर मरेंगे । मनुष्य के लिए असाध्य कुछ नहीं है, एवं मेरे निषेध करने पर भी वे लोग नहीं मानेंगे, यह सब चिन्ता करते हुए मैं सबको साथ में लेकर कलकत्ता पहुँचा ।

उस समय कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी के मंझले भ्राता श्री सारदाकान्त वन्दोपाध्याय वहाँ के परिचालक थे । मैंने कुलीन ग्रामवासी लोगों की नैतिक अवस्था एवं आगमन का कारण आदि उन्हें अवगत कराया । उन्होंने कहा कि कितने अच्छे लोगों को गोस्वामीजी ''साधन दीक्षा'' नहीं देते हैं, लौटा देते हैं। अतः पहले आप सबका परिचय उन्हें दीजिए। फिर वे जैसा कहें, उसी अनुसार कार्य करिये । मैंने अकेले में पंडितजी से परामर्श किया। उन्होंने कहा कि जो लोग आये हैं एवं उनकी जो प्रकृति है, क्या गोस्वामीजी नहीं जानते हैं ? उनको कोई बात बोलने की जरूरत नहीं है । उनके आकर्षण के बिना क्या ये लोग आ सकते हैं ?

अन्ततः गोस्वामीजी के पास धीर-धीरे जाकर उनको प्रणाम करके उनके कमरे के एक कोने में जाकर बैठ गया । शिव चतुर्दशी का दिन था। कमरा लोगों से ठसाठस भरा हुआ था । गोस्वामीजी के पास ''शिव चतुर्दशी'' की कथा का पाठ हो रहा था । पशुहन्ता व्याध का महादेव की कृपा पाकर किस प्रकार उद्धार हो गया ? गोस्वामीजी स्वयं अपने मुख से कह रहे थे । कथा समाप्त होने पर मैंने गोस्वामीजी से कहा **कि देवादिदेव महादेव ने कृपा करके एक व्याध का उद्धार किया था, आज सैकड़ों व्याध कुलीन ग्राम से आकर आपके चरणों के पास उपस्थित हुए हैं, अब मेरे भोलेनाथ क्या करेंगे ?** मेरी बात सुनकर गोस्वामीजी ने कहा कि कल प्रातः काल 8 बजे सबको एक साथ बिठा देना । इस बात को सुनकर मैं अत्यन्त आनंदित हुआ एवं गोस्वामीजी को प्रणाम करने के बाद पंडितजी एवं सारदाकान्त को बाहर आकर बताया। वे लोग भी खूब आनंदित हुए। मेरी समस्त चिन्ता दूर हो गई ।

उसके अगले दिन सबेरे सब कोई गंगा स्नान करके यथासमय में उपस्थित हो गये । घर में जगह की कमी थी । एक तरफ स्त्रियों के लिए एवं दूसरी तरफ पुरूषों के बैठने की व्यवस्था की गई । सब लोग स्थानाभाव के कारण सट कर बैठ गये । हम लोग कमरे के बरामदे में

बैठ गये। कुछ लोग खड़े रहे । गोस्वामीजी ने पहले पालनीय उपदेश दिया। फिर मंत्र प्रदान किया । उस समय एक हड़कंप मच गया । कोई रोने लगा। कोई सिर पटकने लगा। कोई चिल्लाने लगा। कोई अपने आप प्राणायाम करने लगा । कोई भी अपने को संभाल न सका। कोई-कोई लोट-पोट खाने लगे । गोस्वामीजी ''जय गुरु, जय गुरु'' कहकर सबको स्थिर होने के लिए कहने लगे । हम लोग आश्चर्यचकित होकर यह दृश्य देखने लगे । प्राय: आधे घंटे के बाद सब कोई स्थिर हुए । सबको भोजन कराकर कुलीन ग्राम भेज दिया गया । गोस्वामीजी ने कहा कि फिर से तुम लोगों का पुराना कुलीन ग्राम बन गया । *

मेरे मित्र अघोरनाथ चटर्जी की दीक्षा न होने से मुझे क्लेश था। गोस्वामीजी बार-बार समय नहीं हुआ, कहकर टाल देते थे । इस बार मैंने गोस्वामीजी से कहा कि आपकी बात सुनकर अघोर बाबू ने कहा है कि ठीक है, किसी न किसी जन्म में तो समय होगा, मुझे उनकी कृपा तो प्राप्त होगी ही। इस बात को सुनकर गोस्वामीजी ने कहा कि अघोरबाबू को आने के लिए कहिये, उनकी दीक्षा होगी ।

गोस्वामीजी की बात सुनकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ । मैंने उनसे पूछा कि क्या मैं अघोर बाबू को चिट्ठी लिख दूँ ? उन्होंने कहा कि हाँ, लिख सकते हो। मैंने तत्क्षण चिट्ठी लिखना प्रारंभ कर दिया। चिट्ठी लिखते-लिखते मन में विचार हुआ कि चिट्ठी पहुँचने में बहुत देरी होगी, कब क्या बाधा आ जाये, इसका पता नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। एक टेलिग्राम भेजना ही ठीक होगा । यह बात सोचकर चिट्ठी लिखना बंद करके मैंने गोस्वामीजी के पास जाकर कहा कि क्या अघोरबाबू को एक टेलिग्राम कर दूँ ? उन्होंने उत्तर में कहा कि हाँ, टेलिग्राम कर सकते हो। यह बात सुनकर मैंने बिना देरी किये अघोरबाबू के पास एक टेलिग्राम भेज दिया। वे टेलिग्राम पाकर शीघ्र आ गये। उसके अगला दिन उनकी दीक्षा के लिए स्थिर हुआ। दो तीन दिन बाद उनकी पत्नी भी दीक्षा लेने के लिए आकर उपस्थित हुई । अघोरबाबू की पत्नी अपनी कन्या को गोद में लेकर आई थी । गोस्वामीजी को उस शिशु के बारे में कहने से उन्होंने

* अर्थात् चैतन्य महाप्रभु के समय जिस प्रकार कुलीन ग्राम के लोगों में भक्तिभाव था, उसी प्रकार पुन: हो गया ।

कहा कि शिशु को गोद में लेकर बैठो । अघोरबाबू की स्त्री की दीक्षा का कार्य समापन हो गया, साथ ही साथ शिशु की दीक्षा भी हो गई ।

अब तक मेरे बड़े भाई की दीक्षा नहीं हुई थी । वे कुलगुरु के पास से दीक्षित थे । कुलगुरु त्याग करना उचित नहीं है। यह सोचकर वे गोस्वामीजी के पास दीक्षा लेने में सम्मत नहीं हुए थे । कुलीन ग्राम वासियों की दीक्षा के बाद उन लोगों में परिवर्तन देखकर बड़े भाई की पत्नी (मेरी भाभी) एवं उनकी पुत्री कलकत्ता जाकर गोस्वामीजी से दीक्षा ले आई । मेरे निकटतम स्वजन संबंधी कुटुंब, मित्र, नौकर, रसोइया आदि कोई भी गोस्वामीजी की कृपा से वंचित न रहा। गोस्वामीजी ने मुझे कहा था ''तुम जगन्नाथजी की पट्टडोरी दे रहे हो इसलिए जगन्नाथजी कृपा करके तुम्हारे स्वजन संबंधी सबको आत्मसात कर रहे हैं ।'' यदुबाबू के समान ''ब्राह्म'' के पास से भी तुम्हारी भग्नि को छीन लिए । मैंने कहा कि आपकी कृपा ही मेरा एक मात्र सहारा है ।

कुलीन ग्राम के चोर, गुण्डे आदि व्यक्तियों को दीक्षा मिल गई किन्तु अनेक चरित्रवान व्यक्ति जो दूर-दूर से आते थे - उनको गोस्वामीजी मंत्रप्रदान करने में सहमत नहीं हुए। इसमें आश्चर्य होने की कोई बात नहीं है । अनंतकाल के अंदर हम लोग केवल इस जीवन के कुछ दिनों के क्रिया-कलापों को लेकर विचार करते हैं । किसी को साधू, सज्जन कहते हैं, किसी को असाधू या दुर्जन कहते हैं। महापुरुषगण आत्मा की अवस्था देखते हैं। जो व्यक्ति अत्यन्त दुराचारी प्रतीत हो रहा है, हो सकता है कि वह व्यक्ति गत जन्मों मे कोई महात्मा रहा हो, केवल कर्मफल क्षय करने के लिए पतित अवस्था में कालयापन कर रहा हो । जिसको साधू समझ रहे हैं, हो सकता है वह पापी हो। अभिमान अहंकार में चूर हो। लोगों के सामने अपने को बड़ा दिखाने के लिए महात्मा के रूप में प्रचार करवाने के लिए दंभ कर रहा हो। महापुरूषों के पास कुछ भी छुपा नहीं रहता, वे आत्मा की अवस्था देखकर अच्छे-बुरे का विचार करते हैं ।

इस बार ब्राह्मसमाज का माधोत्सव समाप्त होने के बाद श्रद्धेय उमेश चन्द्र दत्त कुछ ब्राह्म व्यक्तियों को साथ लेकर संकीर्तन करते हुए हैरिसन रोड़ में गोस्वामीजी के पास उपस्थित हुए एवं उनसे पूछा कि अभी हम

लोगों का क्या कर्त्तव्य है ? गोस्वामीजी ने उसके उत्तर में कहा कि अब शव को ज्यादा देर तक रखने की जरूरत नहीं है, अपने अपने इष्ट की चिन्ता करने का प्रयत्न करें अर्थात् जिस कार्य के लिए ब्राह्म समाज का अभ्युदय हुआ था, वह कार्य समाप्त हो गया है अत: ब्राह्म समाज परित्याग करके जिनको धर्म प्राप्ति की इच्छा है, वे अलग रहकर भजन साधन करें ।

गोस्वामीजी दिवा-रात्रि अपने आसन में बैठकर नाम सागर में डूब कर तल्लीन रहते थे। बाहर घूमना-फिरना बहुत ही कम करते थे। इस कारण वे ज्यादा चल-फिर नहीं सकते थे । सर्वदा महाभाव में निमज्जित रहते थे ।

गोस्वामीजी का पुरी गमन

गोस्वामीजी ने अनेक तीर्थों का भ्रमण किया था परन्तु जगन्नाथ दर्शन करने के लिए पुरी कभी नहीं गये थे । उनकी माता स्वर्णमयी देवी ने गोस्वामीजी के शिष्यों को कहा था कि विजय पुरी से आया है, पुरी जाने से वह नहीं लौटेगा अत: शिष्यगण भी उनके पुरी जाने के लिए उत्साहित नहीं थे परन्तु इस बार गोस्वामीजी फूट-फूट कर पुरी जाने के लिए बालकों के समान क्रन्दन करने लगे - वे कहते कि हे देव ! मैं चलत्शक्ति-रहित हूँ, मैं कैसे आपके दर्शन के लिए जा सकूंगा ? मेरे मन में विचार होता है कि मैं पाँवों, घुटनों में टाट लगाकर घसीटते हुए इस शरीर को आपके चरणों के पास पहुँचा दूँ । गंगा में जब कोई स्टीमर* या जहाज चालू होने की सीटी बजती थी तब वे चौंक जाते एवं कहते कि देखो पुरी जाने के लिए स्टीमर छूट रही है । कभी-कभी शिष्यों से विनती करते कि मुझे पुरीधाम में भेज दो, अब यहाँ मैं नहीं रह सकता ....इत्यादि ।

शिष्यों ने देखा कि अब कलकत्ते में गोस्वामीजी को रोक के रखना, मुश्किल है। तब उन्होंने पुरी जाने की व्यवस्था की । एक स्टीमर एवं दो बजरे (बड़े नाव) किराये पर लिये गये । मैंने योगजीवन के माध्यम से

* उस समय पुरी जाने के लिए जहाज से समुद्र में होकर जाने का साधन था अथवा कैनेल से स्टीमर में जाना पड़ता था । रेलगाड़ी बाद में चालू हुई थी ।

पुरी जाने के लिए अनुमति मांगी तब उन्होंने कहा कि हरिदास बाबू का अभी पुरी जाना नहीं होगा, अभी उनका कर्म एवं कर्त्तव्य बाकी है। बोलपुर जाकर अर्थ उपार्जन करना आवश्यक है । मैं गुरु आज्ञा शिरोधार्य करके अकेला बोलपुर लौट गया । ई. 1897 के मार्च के महीने में गोस्वामीजी पुरी रवाना हुए । सरलनाथ एवं पंडितजी भी साथ चले गए । मैं उनके पवित्र संग से भी वंचित रह गया ।

गोस्वामीजी के पुरी चले जाने के बाद ही कलकत्ते में प्रबल रूप से ''प्लेग'' रोग का आक्रमण हुआ । ''प्लेग रेगुलेशन'' पास हो गया। कलकत्ता वासियों को काफी कष्ट सहन करना पड़ा ।

कुलीनग्राम की अधिकतर स्त्रियाँ दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त भावावेश में मग्न रहने लगी । उन्होंने भयभीत होकर मुझे शीघ्र वहाँ जाने के लिए पत्र लिखा । उन लोगों का सांसारिक कार्य में मन नहीं लगता था। नाम करते-करते किसी की चेतना लुप्त हो जाती तो किसी के शरीर में अत्यन्त कँपकँपी होने लगती, कोई भावावेश में लोट-पोट हो जाती ।

मैं पत्र पढ़कर कुलीन ग्राम रवाना हुआ । वे लोग किसी ''रोग'' की आशंका कर रहे थे । मैंने उन लोगों को समझाया कि तुम्हारे अंदर सद्गुरु ने शक्तिसंचार किया है, तुम लोग महाभाग्यवती हो। तुम्हारे अंदर भक्ति के लक्षण प्रकाशित हो रहे हैं। साधन भजन नहीं छोड़ना। नाम धैर्य सहित करते रहो। धीरे-धीरे सब सही हो जायेगा। पहले-पहले ऐसी शारीरिक क्रियायें होती हैं । बाहर के लोग बहुत कुछ बोलेंगें। उनकी बातों को मत सुनना। धीरे-धीरे तुम लोगों का जीवन श्री कृष्ण भक्ति से मधुमय हो जायेगा । इस प्रकार स्त्रियों को समझाकर, एवं पुरूषों को भजन साधन में उत्साहित कर, बोलपुर वापस लौट आया ।

पुरी जगन्नाथजी के हमारे वंश के पंडे भुवन मिश्र को राजा ने कहा था कि यदि वसु वंश के लोग गरीब हो गये हैं तो सरकार उन्हें रुपया देगी। वे लोग ''पट्टडोरी'' भेजते रहें । मैंने पण्डे से कहा था, रुपयों की जरूरत नहीं है, मैं पट्टडोरी भेजता रहूंगा । परन्तु पण्डा लालच वश मौके का फायदा उठाकर राज्य सरकार से रुपये हर साल ले लेता था। सन् 1898 की पट्टडोरी रुपये न मिलने पर रोक के रखी थी। पुरी

से गोस्वामीजी के द्वारा यह बात मुझे पता चलने पर मैंने राज्य स्टेट के तत्त्कालीन मैनेजर प्राइस साहब को पत्र लिखा ।

अंग्रेज प्राइस साहब ने मेरा पत्र पाते ही भुवन पंडा को गिरफ्तार करके उसके पास से समूचा रुपया निकलवा लिया एवं उसको फौजदारी मामले में सुपुर्द करने का संकल्प किया । भुवन पंडा ने एक व्यक्ति को मेरे पास भेज कर इस संकट से बचाने के लिए प्रार्थना की। जगन्नाथजी के पंडे को कैद करना ठीक नहीं है, यह सोचकर मैंने प्राइस साहब को पत्र लिखकर फौजदारी मामले से छुड़वा दिया । जो लोग गोस्वामीजी को अंत में विष प्रयोग किये थे, उनमें भुवन पंडा भी सम्मिलित था । ''पट्टडोरी कांड'' से वह गोस्वामीजी के ऊपर अत्यन्त क्रोधित हो गया था । विष प्रयोग के कुछ दिन बाद ही भुवन पंडा एवं उसके पुत्र का देहान्त हो गया था ।

द्वितीय पुत्र की रोगमुक्ति

सन् 1898 के भाद्र महीने वामन द्वादशी के दिन मेरे द्वितीय पुत्र वल्लभीजन वल्लभ का जन्म हुआ । जन्म के कुछ दिन बाद से ही उसकी तबियत खराब होने लगी। डाक्टर द्वारा अनेक चिकित्सा कराने पर भी रोग ठीक नहीं हुआ । बालक के जीवन के संबंध में सब निराश हो गये।

संतान की रोगमुक्ति के लिए ठाकुर-देवता की पूजा देना, मन्नत करना, यह सब मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था । इस प्रकार की पूजा मुझे स्वार्थ की पूजा एवं दुकानदारों के समान जान पड़ती थी। **स्वार्थ लेकर भगवान के सामने उपस्थित होना, मुझे एक घृणित कृत्य जान पड़ता था ।**

संतान के जीने से मंगल होगा या मरने से, यह जब मुझे मालुम नहीं है तब भगवान के पास उसके जीने के लिए प्रार्थना क्यों करूंगा ? सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि जिसमें मंगल हो, प्रभु तुम वही करो ।

जगत में सब तरह के लोग रहते हैं। एक के मतानुसार चलना कठिन है। सब की मन:तुष्टि करनी पड़ती है । पड़ौसी, ब्राह्मणगण व स्त्रियां देव-पूजा आदि करने की जिद करने लगे। अत: डाक्टरी

चिकित्सा एवं पूजा-अर्चना, स्वस्तायन आदि दोनों चलने लगे । अंत में रोग ने प्रबल रूप से आक्रमण किया । बालक की प्राणवायु निकलने का समय जानकर उसके अंग में ''हरिनाम'' अंकित कर दिया गया। कर्ण में हरिनाम सुनाया जाने लगा । हरिनाम की ध्वनि एवं स्त्रियों के उच्च क्रन्दन से एक अजीब माहौल हो गया । घर में लोगों की भीड़ जम गई। सर्वत्र हाहाकार मच गया ।

मैं अपने बैठक घर में बैठा था। बालक का मृत्यु संवाद मिला। मैं वहीं बैठा-बैठा सोचने लगने लगा कि संतान का जन्म भी क्या है और मृत्यु भी क्यों ? इस घटना के पूर्व मेरी किसी संतान की मृत्यु नहीं हुई थी । पुत्र वियोग में मन कितना विषाद से भर जाता है ? द्रष्टा रूप में मैं उसका निरीक्षण करने लगा । डाक्टर साहब उठकर चले गये ।

बहुत देर हो गयी परन्तु घर में रोना बंद नहीं हुआ । मेरे कर्मचारी व सतीर्थ श्रीनाथ सरकार ने कहा कि घर के अंदर मृतदेह ज्यादा देर रखना ठीक नहीं है। इससे रोना-धोना बंद नहीं होगा ।

उसी समय वैष्णव वकील श्री यशोनन्दन सिंहजी अपने घर से मेरे पास आकर बोले कि आपके घर में तो लगातार रोना-धोना मचा है। आप की आँखों में आँसू आये हैं या नहीं, यही देखने के लिए मैं आया हूँ, यदि तुमको रोते हुए देखता तो तिरस्कार करता । मैंने कहा कि पुत्र वियोग में मुझे कष्ट नहीं हुआ है परन्तु भगवान इस संतान को क्यों दिये थे एवं फिर इतनी जल्दी क्यों ले गये ? मैं केवल यही सोच रहा हूँ । उसके बाद उनके साथ सत्प्रसंग होने लगा ।

बालक के अंतिम संस्कार के लिए श्री नाथ सरकार कमर में गमछा बाँधकर हाथ में फावड़ा, कुदाली लेकर उपस्थित हुए । उस समय मेरे मन में हुआ कि एक बार पुत्र का अंतिम दर्शन कर लूँ । यह सोचकर मैं सतीर्थ युगलकृष्ण सरकार के साथ लड़के को देखने के लिए घर के अंदर गया । घर में स्त्रियों की भीड़ थी। प्रवेश करना कठिन था। खैर, थोड़ी जगह बनाकर मैंने घर के एक कोने से देखा कि माँ की गोद में बालक सोया हुआ है । गंगा की मिट्टी से तिलक कर दिया गया है । सर्वांग हरिनामांकृत है । सिर के पास दूध-मिश्रित गंगाजल की कटोरी

रखी है । बड़ी बहन माता कंकाली देवी की पूजा करके चरणामृत एवं फूल लाई थी, वह भी बाजू में रखा है । माँ की गोद में बालक को देखकर ऐसा लगा, जैसे सरोवर में एक शतदल कमल खिला हुआ है ।

मैंने देखा, बालक श्वाँस-प्रश्वाँस रहित है। नाड़ी में कोई स्पन्दन नहीं है। आँखें बंद हैं । युगल बाबू की अंगुली से एक बूंद दुग्ध-मिश्रित गंगाजल बच्चे के मुख में देने से ऐसा लगा जैसे कि अभी भी उसमें प्राण हैं। उन्होंने 2/3 बूंद दूध मिश्रित गंगाजल और लेकर बालक के मुख में डाल दिया । स्त्रियों को हटाकर बच्चे को शय्या में सुला दिया गया एवं उसका अंतिम सत्कार कार्य बंद कर दिया गया ।

रात्रि के 10 बजे मेरी बड़ी बहन ने स्वप्न देखा कि एक महापुरूष उसको बालक की जीवन-रक्षा करने के लिए औषध दे रहे हैं । उसी समय घर के लोगों ने उसे बुलाकर उसकी निद्रा भंग कर दी जिससे उन्हें दवा प्राप्त नहीं हुई । वह निद्रा से उठकर बहुत दुख प्रकट करने लगी । उसके बाद रात्रि के 3 बजे बड़ी बहन दौड़कर मेरे पास आकर बोली कि गुरुदेव (गोस्वामीजी) प्रकाशित होकर मुझसे बोले कि क्यों भागदौड़ कर रही है ? ''हरिलूट प्रसाद'' के साथ नाम संकीर्तन कर, बालक अच्छा हो जायेगा । मैंने कहा कि इसमें तो चिन्ता की कोई बात नहीं है। संकीर्तन दल तो प्रस्तुत ही है। एक बार बोलने भर की देरी है। प्रातः काल में ''हरि लूट'' दिया गया एवं संकीर्तन दल ने गगनभेदी नाम संकीर्तन आरंभ कर दिया । बालक स्वस्थ हो गया और कोई विशेष असुविधा भी नहीं हुई।

पुरीधाम में गोस्वामीजी का कर्ज

पुरीधाम में रहते हुए गोस्वामीजी ने जो लीलाएँ की थी, उनके जीवनी लेखकगण विस्तार से उसका वर्णन करके गये हैं । पुरी में उनके जीवन में यह एक अद्भुत कार्य था क्योंकि गोस्वामीजी के पास, कोई भी अर्थ संग्रह नहीं था । यह विशाल दान कार्य किस प्रकार सम्पन्न हुआ ? पाठकों के कौतूहल निवारणार्थ उसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है जो कि दूसरे ग्रंथों में भी अभी तक लिखा नहीं गया है ।

एक दिन गोस्वामीजी श्री जगन्नाथजी के दर्शन के लिए मंदिर में उपस्थित हुए । दर्शन के बाद पंडे एवं भिक्षुक गणों ने गोस्वामीजी को रूपये प्राप्त करने के लिए घेर लिया । गोस्वामीजी ने मुक्ति मंडप* में बैठकर पंडों एवं उपस्थित ब्राह्मण मंडली से पूछा कि आप लोग क्या चाहते हैं ? पंडे एवं ब्राह्मणगण जिसको जितनी आवश्यकता थी, उतना मांगने लगे । कोई 20 रुपये, कोई 15 रू., कोई 10, 5 कोई 1 रूपया मांगने लगे । कुल प्रायः 500 रुपये ** उनसे मांगे गये ।

गोस्वामीजी तो कपर्दक शून्य थे। वे किस प्रकार रुपया दे सकते हैं ? उन्होंने साथ के शिक्षित, बुद्धिमान शिष्यों को कुछ न बोलकर अपने भोले-भाले शिष्य सरलनाथ को बुलाकर कहा कि सरलनाथ, तुम मुझे 500 रुपये लाकर दो । सरलनाथ भी ''जो आज्ञा'' कहकर रुपया लाने चल पड़े ।

सरलनाथ का पूर्ण विश्वास था कि गुरुजी को जब रुपयों की आवश्यकता हुई है, तब रुपयों का अभाव नहीं होगा। वह अवश्य ही मिल जायेंगे। उसके बाद वह निश्चिंत होकर सिंह-दरवाजे के सामने से निकलकर एक अपरिचित दुकानदार (दुकानदार का नाम दीनबंधु साहा) के पास जाकर उससे बेहिचक कहा कि भैया, क्या मुझे तुम 500 रुपये दोगे ? दुकानदार ने सरलनाथ के मुँह की ओर देखकर, यह व्यक्ति कौन है ? किस जाति का है ? किस लिए रुपया माँग रहा हैं ? यह सब कुछ भी न पूछकर 500 रुपये की एक गड्डी नोट सरलनाथ के हाथ में थमा दी । सरलनाथ ने सीधे आकर गोस्वामीजी को वे रुपये दे दिये। गोस्वामीजी ने सरलनाथ से पूछा तक नहीं कि ये रुपये तुम कहाँ से लाये ? याचकगणों में जिसने जितना माँगा, उसी अनुसार रुपया बाँट दिया गया ।

रुपया देने के बाद, यह घटना चारों तरफ फैल गई । गोस्वामीजी के घर में आने के बाद शिष्यगणों ने उनसे पूछा कि क्या आज आप मंदिर में 500 रू. दान करके आये हैं ? गोस्वामीजी ने कहा कि 500

---

* जगन्नाथदेव के मंदिर के दक्षिण में एक विशेष स्थान का नाम ।

** आज से 110 वर्ष पहले 500 रुपये बड़ी राशि थी - सम्पादक ।

रुपये की क्या बात है ? जगन्नाथजी ने स्वयं आदेश दिया था। आज यदि पंडे एवं भिक्षुगण मेरे पास पाँच लाख भी मांगते, तो उन्हें दे आता। क्या करूँ ? उन्होंने केवल 500 रु. ही मांगे । शिष्यगण चुप रह गये ।

इसके बाद पुरी में गोस्वामीजी ने सामान, कपड़े, कंबल एवं हजारों रुपये दान दिये थे । वे सब रुपये सरलनाथ के माध्यम से ही मंगाते थे। अनेक दुकानों से सरलनाथ रुपये एवं वस्त्र वगैरह ले आते। यहाँ तक कि जो लोग रास्ते में चिल्हर रुपये वगैरह विक्रय करते हैं, (उनकी पूंजी विशेष नहीं रहती) उनके पास से भी रुपये ले आते । दुकान में कपड़ा खत्म हो जाने पर दुकानदार आर्डर देकर बाहर से कपड़े मंगवा कर उसे देते । (संतों को) लोटा वितरण के लिए गोस्वामीजी को कुछ हजार लोटों की जरूरत पड़ी । सरलनाथ को लोटे लाने के लिए नहीं कहा । बाकी शिष्यगण कोशिश करने पर भी दुकानों से लोटा संग्रह न कर सके । अंत में पुरी के डिप्टी मैजिस्ट्रेट जगत चन्द्र राय एवं मुन्सेफ किशोरी मोहन सेन की जमानत पर लोटों की व्यवस्था करनी पड़ी।

दान कार्य समाप्त होने पर दुष्ट व्यक्तिगण ऋण देने वाले दुकानदारों को बहकाने लगे कि किसको कर्ज दिये हो ? ज्यादा रुपया पाने के लोभ में रुपये दिये हो। तब पता चलेगा जब तुम लोगों का दिवाला निकल जायेगा। उनके पास कोई स्थावर संपत्ति या रुपये का संग्रह भी नहीं है। कर्ज देने के लिए तुम्हें और कोई दूसरा व्यक्ति नहीं मिला ? तुम लोगों के समान बेवकूफ और कौन है ? लाभ के लोभ में पूँजी भी गँवा बैठे ?

उधार में कपड़े वगैरह देने की बात सुनकर दुकानदारों के महाजन लोग भी उपस्थित होकर क्रोधित होकर उनको डाँटने लगे । दुकानदारों के आपस में भाईयों में भी झमेला खड़ा हो गया । कुछ लोगों ने अपना हिस्सा अलग कर लिया ।

सामान विक्रेतागण एवं ऋणदाता लोग भी अंततः घबरा गए एवं गोस्वामीजी के पास आकर तगादा करने लगे । गोस्वामीजी ने सबको आश्वस्त करते हुए कहा कि आप लोग निश्चिन्त रहिये, एक महीने के अंदर आप के रुपये वापस मिल जायेंगे ।

गोस्वामीजी के सांत्वना देने पर भी उन लोगों की चिन्ता दूर नहीं हुई । हर दिन अलग-अलग अफवाह फैलने लगी । एक दिन हल्ला मचा

कि गोस्वामीजी बंगाल भाग रहे हैं । कोई बोलता ''वे शिष्यगणों के साथ कल रात पुरी से चले गये हैं ''। कुछ लोग भ्रमित होकर उनको दौड़कर देखने आते कि वे हैं या चले गये हैं ।

गोस्वामीजी के द्वारा लिये गये ऋण की बात का शिष्य मंडली में सर्वत्र प्रचार हो गया । गोस्वामीजी के कई बड़े जमींदार, उच्चपदस्थ कर्मचारी, व्यवसायी, धनाड्य शिष्य भी थे । गुरु के अनुगत कुछ शिष्यगण उन धनाड्य शिष्यों के पास उपस्थित होकर कुछ अर्थ की प्रार्थना करने गये। कृपण धनी लोगों का अर्थ कभी भी सत्कार्य में व्यय नहीं होता। वे लोग मद्यपान, विलासिता, ऐशो-आराम, पर-पीड़न में, दुष्कार्य में प्रचुर अर्थ व्यय कर देते हैं परन्तु गरीबों, रोगियों की सेवा या राहत कार्य आदि में उनका धन कभी खर्च नहीं होता ।

धनी शिष्यगण गुरु अनुगत गरीब शिष्यों को बोलने लगे कि गोस्वामीजी को ऋण लेकर दान करने की क्या जरूरत थी ? दान करने के पहले हम लोगों से उन्होंने क्यों नहीं पूछा ? जब रुपया पास में नहीं है तो दान न करना उचित था । जिसके मन में जो आया, वे वही कहने लगे । वे लोग विशेष कुछ भी सहायता न कर सके । जिनके लिये ''अर्थ'' ही परम देवता है, उनके पास से इससे ज्यादा क्या आशा की जा सकती थी ?

जो भी हो, दरिद्र एवं मध्यमवर्गी शिष्यगण गुरु के ऋण के परिशोध करने का सुयोग मिलने के कारण अपने आपको महाभाग्यवान समझने लगे। इनमें से कुछ शिष्यों ने अपनी पत्नी के गहने बेचकर, कोई जमीन, घर या तालाब बेचकर या गिरवी रखवाकर गोस्वामीजी को रुपये भेजने लगे। जिनके पास ये सब कुछ नहीं था उन लोगों ने ऋण करके भी कुछ रुपये भेज दिये। किसी ने अपनी लिखी पुस्तक का कापीराइट विक्रय कर, रुपये भेजे। जिन सब गुरुभक्तों को मनिआर्डर या रजिस्ट्री डाक भेजने का विलम्ब सहन न हुआ, वे लोग टेलीग्राफी मनी आर्डर द्वारा गोस्वामीजी को रुपया भेजने लगे । पुरी पोस्ट ऑफिस में हड़कम्प मच गया। रात दिन टी.एम.ओ. आना शुरू हो गये । पोस्टमास्टर लिपिक व चपरासी लोग मनीआर्डर ग्रहण व वितरण करते-करते थक गये। इसलिए पोस्टऑफिस में टी.एम.ओ. देने के लिए अलग विभाग खोला गया।

रूपयों के आते ही ऋण चुकता करने के लिए गोस्वामीजी ने सरलनाथ को ही भार सौंपा । सरलनाथ के पास कोई हिसाब-किताब तो था नहीं। किसको कितना रुपया देना है ? उसे कुछ भी याद नहीं था। इसलिए ऋण परिशोध करने के लिए वे प्रत्येक दुकानदार के पास जाकर पूछते कि भैया ! तुम्हारा कितना रुपया बाकी है ? जो जितना बोलता, उसे वह उतना दे देता। दुकानदार के पास से हिसाब भी नहीं देखता। कोई-कोई दुकानदार ने डेढ़ गुना, दो गुना रुपया वसूल कर लिया परन्तु सरलनाथ को इससे कोई मतलब नहीं था । उसने प्रत्येक दुकानदार एवं दूसरे कर्जदारों से पुन: पुन: जिज्ञासा करके उन लोगों की पूरी भरपाई कर दी ।

लोटा विक्रेता लोग, मजिस्ट्रेट जगतराय एवं मुन्सेफ किशोरी बाबू को जामीन करके लोटा दिये थे । वे लोग उन उच्चपदस्थ अधिकारियों के घर आना जाना करने लगे । किसी दिन एक से मुलाकात होती तो किसी दिन दूसरे से। इस तरह वे लोग रुपये के लिए हैरान हो गये । अन्तत: उन्हें सब हिसाब वगैरह दिखाकर रुपया मिल तो गया परन्तु वे लोग खूब लाभान्वित न हो सके ।

इन सब घटनाओं को देखकर गोस्वामीजी के एक शिष्य ने उनसे पूछा कि सरलनाथ एकदम निर्बोध है, जिसने जितना मांगा, उतना दे दिया और ये लोटा विक्रेता लोग परेशान होकर मुश्किल से अपनी लागत वसूल कर पाये। उनको विशेष कोई लाभ भी नहीं हुआ। ऐसा क्यों ? गोस्वामीजी ने उत्तर में कहा कि दुकानदार लोग मुझपर विश्वास करके रुपया एवं सामान वगैरह दिये थे इसलिये उनको पुरस्कार के रूप में ज्यादा लाभ हुआ । लोटा विक्रेता लोग मुझ पर विश्वास नहीं कर पाये, उनका जगत बाबू व किशोरी बाबू पर ज्यादा विश्वास था इसलिये उन लोगों ने पूरा खर्च हिसाब करके, उनकी भरपाई की ।

कुछ दिन के अंदर समस्त ऋण परिशोध हो गया । गोस्वामीजी ने ऋण चुकाने के बाद भी दुकानदारों के पास एक बार फिर सरलनाथ को भेजा । सरलनाथ ने प्रत्येक दुकानदार के पास पूछकर, गोस्वामीजी के पास संवाद दिया । उसके बाद ही वे निश्चिन्त हुए ।

एक दिन गोस्वामीजी मंदिर दर्शन करके लौट रहे थे । रास्ते में

भिखारी उन्हें घेरकर रूपया मांगने लगे । वे उन लोगों को रुपया देने लगे । एक भिखारी बार-बार आता, और रुपया लेकर चला जाता। फिर कुछ देर बाद फिर आता, उसको देखकर एक शिष्य ने कहा कि वह व्यक्ति धूर्त है, बार-बार आकर ''मुझे नहीं मिला'' कहकर रूपया ले जा रहा है । गोस्वामीजी ने सुनकर कहा कि मैं सब जानता हूँ। दान मैं नहीं कर रहा हूँ। जगन्नाथ देव कर रहे हैं, चुप रहो । यह बात कहकर उस व्यक्ति को पुन: पाँच रूपये देकर कहा कि गंगा का स्रोत बहते जा रहा है, हम लोग उसमें हाथ धोकर पवित्र हो लें ।

जागतिक लोग गोस्वामीजी के इस प्रकार के दान की घटना को समर्थन नहीं कर सकेंगे । वे लोग नीति शास्त्र दिखाकर कहेंगे कि ऋण लेकर दान करना कर्त्तव्य नहीं है । जिनके पास ऋण चुकाने की क्षमता है, वह ऋण करके दान कर सकता है। जिसके पास नहीं है, उसे कर्ज नहीं करना चाहिये बल्कि इन रूपयों से कोई जन-हित-कर सेवा कार्य किया जाता तो देश का उपकार होता। बेकार पंडों एवं भिखारियों को रुपये देने से क्या फायदा ?

जागतिक लोगों की इस प्रकार की बातों से पाठकगण के मन में यह संदेह हो सकता है कि गोस्वामीजी ने भ्रान्ति के वशीभूत होकर दान-कार्य किया था। वास्तव में गोस्वामीजी मायातीत पुरूष थे - उन्हें भ्रान्ति नहीं हो सकती । माया ही सत्य को आच्छादित करके भ्रान्ति उत्पन्न करती है। गोस्वामीजी की कोई वासना-कामना नहीं थी। कोई आसक्ति नहीं थी एवं उनकी स्वयं की स्वाधीन इच्छा भी नहीं थी। भगवान उनको जो आज्ञा देते थे, वे कोई विचार किये बिना, तत्क्षण उसका पालन करते थे। श्री श्रीजगन्नाथजी ने उन्हें इस प्रकार दान करने का प्रत्यक्ष आदेश दिया था । इष्टदेव की आज्ञा प्रतिपालन के निमित्त ही उन्होंने यह दान-कार्य किया था । इसके फलाफल की ओर उन्होंने दृष्टिपात नहीं किया था । अपनी संतान-संतत्ति या परिवारीजन के लिए एक रूपया भी संचय नहीं किया था ।

परिवार के सदस्य कल क्या खायेंगे ? एक बार भी नहीं सोचते थे। गोस्वामीजी के जामाता श्री जगद्बंधु मैत्र जी द्वारा अपने पुत्र दाऊजी के लिए एक रेशमी वस्त्र खरीद कर लाने से उन्होंने अनुशासन करते हुए

कहा था कि यह सब रुपया जगन्नाथजी का है। तुम अपने पुत्र के लिए कीमती रेशमी वस्त्र क्यों खरीद कर लाये ? उनके आदेशानुसार ही दान-कार्य किया जाता है। वास्तव में, गोस्वामीजी निमित्त मात्र थे, दान-कार्य में वे लिप्त न थे। जिन सब दुकानदारों ने गोस्वामीजी को कर्ज दिया था, सबकी भविष्य में आर्थिक उन्नति हुई थी एवं उस उन्नति के मूल में वे जटियाबाबा* की कृपा ही मानते थे ।

गोस्वामीजी के जिन शिष्यों ने उनका कर्ज चुकाने में सहायता की थी, उनको भी कोई क्षति नहीं हुई । गोस्वामीजी ने कहा था कि वे उनके रुपए चुका देंगे । कुछ लोग कह सकते हैं कि उन्होंने तो ऋण चुकाया नहीं, क्योंकि उनका तो देहान्त हो गया । इसके उत्तर में मैं यह कहता हूँ कि अनुसंधान करके जाना गया है कि जिन-जिन लोगों ने गोस्वामीजी को कर्ज चुकाने के लिए रुपया दिया था, उन्हें अत्यन्त लाभ हुआ था । जो जिस अवस्था का आदमी था, उसी प्रकार से आर्थिक उन्नति हुई थी ।

एक दृष्टान्त देता हूँ - सुप्रसिद्ध देश-सेवक श्री मनोरंजन गुहठाकुरता ने दरिद्र होते हुए भी गोस्वामीजी को यथासाध्य रुपया दिया था, इसके बाद वे धनी बन गये । उनकी अपनी कोई क्षमता नहीं थी । संपूर्ण रूप से गुरु कृपा से ही यह संभव हुआ था ।

ऋण परिशोध के द्वारा शिष्यगणों का एक महत् उपकार हुआ था । उनके अनेक कर्मक्षय हो गये एवं उनकी आध्यात्मिक उन्नति भी हुई थी। - उन लोगों में उदार भाव आ गया, कृपणता नष्ट हो गई । पुरी का कर्ज, भगवान का स्वयं का कर्ज था। जो लोग कर्ज परिशोध करने में सहायक बने, उनको क्या वे बिना पुरस्कृत किये रह सकते हैं ?

गोस्वामीजी के शिष्यगणों में जिनका मन्दभाग्य था, वे ही लोग ऋण परिशोध में अग्रसर नहीं हुए । वास्तविक तथ्य यह है कि भगवान कृपा करके जिसके पास से जितना लिये थे, केवल उतना ही वे देने में समर्थ

* गोस्वामीजी की बड़ी-बड़ी जटाएँ थीं। वहाँ के लोग उनको जटिया बाबा बोलते थे - उनका समाधि मन्दिर पुरी में आज भी ''जटिया बाबा की समाधि'' नाम से जाना जाता है ।

हुए थे। नहीं तो प्रचुर अर्थ के रहते भी कई शिष्य कुछ भी नहीं दे सके। भगवान की लीला को कौन समझ सकेगा ? विश्वासी लोगों के गोस्वामीजी के द्वारा किया गया दान, दोष नहीं था ।

सरलनाथ का पुरी त्याग

ई. 1897 में गोस्वामीजी पुरी रवाना हुए थे । मैं उनकी आज्ञानुसार बोलपुर आकर वकालती करने लगा । यद्यपि गुरु दर्शन की एकान्त इच्छा होती थी तथापि गुरुआज्ञा स्मरण करके धैर्य के साथ ''नाम'' लेकर पड़ा रहा । पंडितजी प्रायः पत्र द्वारा गोस्वामीजी का विस्तृत संवाद देते रहते थे । एक साल तक पुरी जाना नहीं हुआ। फिर अचानक गोस्वामीजी के ऊपर विष प्रयोग का समाचार पाकर, पुरी जाने का विचार किया । उसी समय पंडितजी का पत्र आया कि गोस्वामीजी का देह स्वस्थ हो रहा है। उनके लौटने के लिए स्टीमर किराये पर लिया जा रहा है ।

पुरी से प्रायः रोज टेलिग्राम करके पंडितजी गोस्वामीजी की शारीरिक अवस्था का समाचार देने लगे । ई. 1899 के जेठ महीने की 20 तारीख को समाचार मिला ''गोस्वामीजी कुशल हैं''। 23 तारीख को रात्रि 9 बजे उनका देहान्त हो गया। उनके साथ मुलाकात न हो सकी। मैं उनके आकस्मिक देहान्त से शोकाभिभूत हो गया । इस जीवन का जो कुछ सुख था, वह यहीं समाप्त हो गया ।

श्री गोस्वामीजी के देहान्त का विवरण उनके चरित्र लेखकगण विस्तार से लिख कर गये हैं इसलिए मैं उन घटनाओं का विवरण यहाँ नहीं लिख रहा हूँ । पुरी के विख्यात नरेन्द्र सरोवर (चंदन तालाब) के उत्तर तट में जमीन खरीदकर उनका देह समाधिस्थ किया गया था एवं उनकी समाधि की पूजा तबसे बराबर हो रही है । गोस्वामीजी के एक मात्र पुत्र योगजीवन, समाधि मंदिर के सेवाइत बनकर सेवा-पूजा चलाने लगे ।

गोस्वामीजी की आकाश-वृत्ति थी। ईश्वर ही उनका भार वहन करते थे। अब योगजीवन के सेवाइत होने के बाद अर्थाभाव होने लगा। वे ऋण करने के अभिप्राय से सरलनाथ को बोले -

योगजीवन - पुरी के दुकानदार तुम्हारे परिचित हैं और वे तुम पर विश्वास करते हैं। तुम उनके पास जाकर कुछ कर्ज मांग कर लाओ ।

सरलनाथ - मैं अब रुपया उधार नहीं ले सकता ।

योगजीवन - क्यों ? तुम तो हजारों रुपये उधार करके पहले लाये हो। मेरे लिए सामान्य कुछ रुपये उधार करके नहीं ला सकते ?

सरलनाथ - जब गोस्वामीजी मुझे रुपया लाने को कहते थे, तब मेरे मन में संशय नहीं होता था - ऐसा लगता था, जहाँ भी जाऊंगा, मुझे रुपया मिल जायेगा किन्तु अब मेरे मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि मैं विदेशी आदमी हूँ। मेरी संपत्ति वगैरह कुछ भी नहीं है। लोगों से उधार मांगने पर लोग मुझे क्यों देंगे ? अतः मैं अब उधार नहीं मांग सकता ।

योगजीवन, सरलनाथ की बात समझ न सके। मन ही मन अप्रसन्न हुए । सरलनाथ योगजीवन का भाव समझकर पुरी परित्याग कर कलकत्ता चले आये ।

सरलनाथ कलकत्ते से बोलपुर आकर मेरे पास कुछ दिन रहे । मैंने कहा - तुम्हारा कोई नहीं है। तुम जीवन के अंतिम दिन तक इसी जगह रहो । जो कुछ भगवान देंगे, दोनों भाई वही पाकर भजन करेंगे । तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है ।

सरलनाथ एक जगह में रह नहीं सकते थे। वे कुछ दिन बोलपुर रहकर फिर अन्यत्र चले गये । योगजीवन के देहान्त के बाद फिर पुरी जाकर कुछ दिन रहे। फिर अनेक जगह घूम फिर कर अंत में पुरी में ही रहने लगे ।

तीर्थ - पर्यटन

ई. 1899 में पूजा की छुट्टी में बरिशाल जिला के नारायणपुर ग्राम के श्री चन्द्रकांतदत्त जी मेरे पास आये। वे भी गोस्वामीजी के शिष्य थे। गुरुजी ने उन्हें तीर्थ-पर्यटन के लिए कहा था । उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। किसी प्रकार परिवार का प्रतिपालन करते थे । उस समय पंडित जी ब्रजधाम में गोविन्दकुण्ड में कुटीर बनाकर मधुकरी करके

भजन करते थे । उनके दर्शन करने की मन में बड़ी इच्छा हुई । हम लोग कुल 6 व्यक्ति, तीर्थ पर्यटन के लिए निकल पड़े ।

सर्वप्रथम गयाजी में पहुँचकर विष्णुपादपद्म में पूर्वजों को पिण्डदान करके बाद में फल्गु में रेत का पिण्ड प्रदान किया । उसके बाद राम-गया जाकर वहाँ के विग्रहों का दर्शन किया । गोस्वामीजी ने पूर्व जन्म में, एक पीपल के पेड़ के तने में ''ॐ राम'' लिखा था। उस वृक्ष को प्रणाम एवं प्रदक्षिणा की। अक्षर प्रायः अस्पष्ट हो चुका था, अच्छी तरह देखने से तने में ''ॐ राम'' लिखा था - ऐसा प्रतीत होता था ।

उस समय गोस्वामीजी के शिष्य श्रद्धेय कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी आकाशगंगा पहाड़ में कठोर साधन भजन में प्रवृत्त थे । उनके मंझले भ्राता वरदाकान्त वन्दोपाध्याय, गया जज कोर्ट में वकालती करते थे । हम लोग आकाशगंगा पहाड़ जाकर श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी के आश्रम में उपस्थित हुए । वहाँ गोस्वामीजी को भोग लगाकर सबने मिलकर प्रसाद ग्रहण किया ।

रघुवर दास बाबाजी पहले इस आश्रम में रहते थे। उनके दण्डाघात से पहाड़ भेद करके पानी का झरना फूट पड़ा था । हम लोगों ने वहाँ स्नान किया एवं जल पान किया । जल मीठा एवं स्वास्थ्यप्रद था । इस आश्रम की एक गुहा का हमने दर्शन किया । पहाड़ के ऊपर जहाँ ब्रह्मानन्द परमहंसजी ने गोस्वामीजी को दीक्षा दी थी, उस स्थान का दर्शन करके वहाँ हमने प्रणाम किया ।

श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी उस पहाड़ में अकेले रहते थे । रोज झरने के पानी में 2/3 बार नहाते थे । किसी से कुछ याचना नहीं करते थे । दिवारात्रि साधन-भजन में समय व्यतीत करते थे । शाम के समय बरदाकान्त जी के घर से कुछ भोजन आ जाता था। वे मात्र एक बार दिन में उसे पाते थे । उनके शरीर की ज्योति, साधन में अनुराग एवं तीव्रता एवं उसमें गुरु शक्ति का प्रभाव देखकर मैं परम पुलकित हो उठा। उनके वैराग्य एवं साधन अनुराग को देखकर मैंने उनको पुनः पुनः धन्यवाद दिया । उस समय उनकी उम्र करीब 32 साल की थी । प्राणपन से साधक जीवन बिताने के लिए मैंने उन्हें उत्साहित किया । वे भी हम लोगों को पाकर प्रसन्न हुए ।

गयाजी के सब दर्शनीय-स्थल दर्शन करके बुद्ध गया जाकर बुद्धदेव की प्राचीन मूर्त्तियों एवं महाराज अशोक निर्मित प्रस्तर के विशाल मंदिर का दर्शन किया । जिस स्थान में गौतम बुद्ध ने बोधिसत्व लाभ किया था, वह स्थान देखकर मैं अत्यन्त आनंदित हुआ । अभी वह बोधि-वृक्ष नहीं है, एक नया वृक्ष लगाया गया है ।

हम लोग गया से काशी पहुँचे। यहाँ पर पण्डों का बड़ा ही उत्पात था इसलिए वहाँ मनिकर्निका घाट, बाबा विश्वनाथ व अन्नपूर्णा दर्शन करके, तीन रात्रि रहकर श्रीवृन्दावन की ओर रवाना हुए । काशी में शान्ति से ज्यादा दिन न रूक सके ।

पंडितजी गोवर्धन के गोविन्दकुण्ड में रहते थे। हम लोगों का आगमन-संवाद पाकर वे हम लोगों के लिए किराये का घर, नौकरादि की व्यवस्था करके, वृन्दावन में हम लोगों के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। हम लोग श्रीवृन्दावन पहुँचकर उनके दर्शन कर कृतार्थ हो गये ।

श्री श्यामाकान्त पंडितजी मेरे परम हितैषी, सहायक थे एवं कैसे मुझे आध्यात्मिक उन्नति हो ? इसकी चिन्ता उन्हें रहती थी यद्यपि उन्हें रोज बुखार होता था तथापि वे हम लोगों को सब दर्शनीय स्थलों पर स्वयं ले जाते थे । श्री गोविन्ददेव जी, गोपीनाथ, मदनमोहन, श्रीराधारमण, राधादामोदर, गोकुलानंद, श्यामसुंदर, बाँकेबिहारी, राधावल्लभ, किशोरीवल्लभ, गोपेश्वर महादेव, सेठों के मंदिर, लालाबाबू कुंज, निधिवन, सनातन गोस्वामीजी की समाधि इत्यादि सभी स्थानों का उन्होंने हम लोगों को दर्शन कराया । जिस स्थान में भेट की व्यवस्था थी, वहाँ भेंट दिलवायी ।

हमें, एक दिन उन्होंने ''पंच-कोशी'' परिक्रमा करवायी । वन की अपूर्व शोभा व वृक्षों की कतारों का दर्शन करने से ऐसा लगता था, मानों वे हाथ-प्रसारण पूर्वक साष्टांग करके भगवान को प्रणाम कर रहे हैं। निर्जन वन के बीच मोर की आवाज सुनाई पड़ने लगी । हमलोगों को देखकर वे लोग एवं अन्य अनेक वन्य-पक्षी निकट में दौड़कर आ गये । पंडितजी के कहे अनुसार हम लोगों ने चना, भुट्टा वगैरह पहले से ही संग्रह कर लिया था, पक्षियों को वे वस्तुएँ देने से वे लोग खाते-खाते हमारे पीछे-पीछे बहुत दूर तक गये ।

रास्ते में 'रज' की बात क्या कहूँ ? 'रज' इतनी मुलायम थी कि शरीर शीतल हो जाता था । मैं कुछ दूर जाता तब पंडितजी कहते थे कि यहाँ साष्टांग लगाओ । इस प्रकार बीच-बीच मे दण्डवत् करते हुए हम लोग नंगे पैर चलने लगे । धीर समीर, राधाबाग, रासस्थली, दावानल कुण्ड, ब्रह्मकुण्ड वगैरह लीलास्थलियाँ उन्होंने दर्शन करायी ।

रासस्थली दिखाकर उन्होंने कहा कि यहाँ लोट-पोट करो। उनकी इच्छानुसार मैंने लोट-पोट लगायी। वन के बीच से जाते-जाते अचानक मेरी छाती में कुछ गिरकर 'रज' में गिर गया । मैंने उसे उठा लिया, देखा तो एक सुन्दर दौना था। वह कोई मकड़ी या कीड़े के द्वारा बनी हुई नहीं थी। वह वृक्ष के पत्ते के द्वारा बनी हुई थी। उसमें एक डँठल भी था । मैंने पहले गोस्वामीजी के मुख से 'दौना' की बात सुनकर कटाक्ष किया था। आज उन्होंने अपनी बातों की सत्यता का प्रमाण दिखाकर मेरी दुर्मति दूर कर भगवत् कृपा से मुझे इस अद्‌भुत ''दौना'' का दर्शन करवाया । वृक्ष की ओर दृष्टिपात किया पर और एक भी दौना नहीं देख पाया । यह ''दौना'' देखकर आत्म-ग्लानि हुई। मैं अपने को बारम्बार धिक्कारने लगा । रात्रि के 9 बजे हम लोग घर में लौटे ।

एक दिन निकुंजवन (सेवाकुंज) दर्शन करने गया था । वहाँ करीब 8 बजे सबेरे श्री मयूर-मुकुट बाबा का दर्शन मिला । वे ब्रह्मचारी अनिकेत एवं अयाचक थे । उनके शरीर में माला, तिलक आदि कोई साम्प्रदायिक चिन्ह नहीं था । आहार की कोई चेष्टा नहीं करते थे । इच्छापूर्वक कोई भोजन कराता था, तो करते थे । उनका शरीर सुदृढ़ था। सर्वदा पागल की तरह एकान्त में अपने मन ही मन गान एवं नृत्य करते थे । उनके मस्तक के ऊपर एक मोर के पंखों का मुकुट था, इसलिये लोग उन्हे मयूर-मुकुट बाबा कहते थे। वे नमक नहीं खाते थे । जिस दिन उनके साथ पहली मुलाकात हुई, उस दिन शाम को वे हमारे घर में उपस्थित हुए । आहार के विषय में पूछने पर पता चला कि वे संपूर्ण दिन निराहार हैं । हम लोगों ने उन्हें भोजन करवाया । वे बहुत ही कम आहार करते थे । उस दिन से वे रोज शाम को एक बार हमारे घर में आते थे ।

मयूर-मुकुट बाबा हम लोगों को खूब प्रेम करते थे । हम लोग जिस दिन राधाकुण्ड में रात्रिवास कर रहे थे, उस दिन अंधेरे-अंधेरे में रात्रि के 9 बजे वे हमारे घर पर उपस्थित हुए । उनको देखकर हम लोग आश्चर्य-चकित हो गये । हमने कहा कि हम लोग राधाकुण्ड में हैं, यह आपने कैसे जाना ? इस घोर अंधेरे में जन्तुओं से पूर्ण जंगल में आप किस प्रकार से आये ? उन्होंने हँस कर उत्तर दिया कि यहाँ मैं बराबर आता-जाता हूँ। अभी रात्रि में कुसुम-सरोवर में जाकर रहूँगा । हम लोगों ने उनको भोजन कराके विदा किया। बहुत दिन बाद हमें मालूम हुआ कि वे हमारे सतीर्थ थे । **गोस्वामीजी ने उन्हें दीक्षा दी थी ।**

श्री वृन्दावन एवं राधाकुण्ड के अनेक तमाल वृक्षों में शालग्राम व श्रीकृष्ण की प्रतिमूर्ति अंकित थी, पंडितजी ने हमें सब दिखाया था ।

इन सब शालग्राम एवं प्रतिमूर्त्तियों में कोई कृत्रिमता नजर नहीं आई। कालीय दह में कदंब वृक्ष का भी दर्शन कराया । इस वृक्ष के पीड़ एवं डालियों में अनेक राधा-कृष्ण के नाम अंकित थे, उसमें से कुछ कृत्रिम लगे ।

एक दिन चौसठ-महंत की समाधि (समाज बाड़ी) दर्शन कराने के लिए पंडितजी, हम लोगों को साथ ले गये । वहाँ जाकर सब समाधियों के दर्शन करने लगा । किसी भी समाधि में किसी का नाम खुदाई ना किए जाने से, कौन सी समाधि किस महंत की है, जाना नहीं जा सकता, उसे केवल सेवा-पूजा करने वाले वैष्णव-गण ही जानते थे ।

समाधियों को देखते-देखते जैसे ही एक समाधि के पास उपस्थित हुआ, वैसे ही मैं उच्चस्वर में रोने लगा । आँखों से झर-झर पानी गिरने लगा । मैं अंदर से स्थिर भाव से देखने लगा कि इस तरह रोने का क्या कारण हो सकता है ? मैं खुद भी समझ न सका, शरीर में कंपन होने लगा। सब कोई मुझे देखने लगे ।

रोना बंद होने के बाद पंडितजी, इस क्रंदन का कारण जानने के लिए अनुसंधान करने लगे । समाधि-स्थान में एक पुराने वैष्णव को बुलाकर ले आये और उस समाधि को दिखाकर उनसे पूछा कि यह कौन से महंत की समाधि है ? उन्होंने उत्तर दिया कि यह समाधि

रामानंद वसु जी की है । तब इस प्रकार रोने का कारण समझ में आया । वसु रामानंद मेरे पूर्वज थे। चैतन्य महाप्रभु के पार्षद थे। ब्रजलीला में इन्हें **चम्पकलता सखी** कहा गया है । उनके वंशधर मुझे इस वृन्दावन धाम में, उनकी समाधि के पास उपस्थित होने से वे इसका इंगित कर रहे हैं कि वे सिद्ध देह में भगवान की नित्यलीला में वर्तमान हैं एवं उनकी कृपादृष्टि मेरे ऊपर है । मैंने उस समाधि की रज में लोट-पोट करके अन्य समाधियों के दर्शन किये ।

आध्यात्म जगत विचित्र है। मायामुग्ध जीव उस जगत की खबर किस प्रकार जान सकता है ? जो घटना घटी, उसको यथावत् मैंने लिखा ।

श्री वृन्दावन में इमलीतला में चैतन्य महाप्रभु जहाँ विश्राम करते थे, वह स्थान पंडितजी, दर्शन कराने ले गये । वहाँ इमली वृक्ष के नीचे पत्थर से आसन बना दिया गया है । वहाँ भी जाकर पुनः मैं जोर-जोर से रोने लगा । क्यों रोता हूँ, पता नहीं चला ? पर अपने को प्रकृतिस्थ कर न सका । बहुत देर बाद मैं शान्त हुआ - फिर वहाँ से सनातन गोस्वामीजी की समाधि दर्शन करके काफी देर बाद लौट आये ।

श्री वृन्दावन में साहजी का मंदिर एवं ब्रह्मचारी का मंदिर एवं अन्य दर्शनीय स्थल देखकर बेल वन में लक्ष्मीजी मंदिर एवं मानसरोवर में राधाजी का स्थान देखा । रासोत्सव के बाद हम लोग मथुरा गये ।

मथुरा में तीन दिन रहकर दर्शनीय स्थान दर्शन करके एक दिन संध्या के समय विश्राम घाट में आरती दर्शन करने गये । इस स्थान में रोज यमुना जी की आरती होती है । यह सचमुच अति दर्शनीय है । कहते हैं कि कंस को मारकर श्रीकृष्ण ने यहाँ विश्राम किया था । यहाँ पर चौरासी प्रदीप की आरती होती है । पुजारी दोनों हाथों में उस बड़े प्रदीप के डंडे को पकड़कर भक्तिभाव से यमुनाजी की आरती करते हैं । हजारों लोग इसका दर्शन करते हैं। कुछ लोग नाव में खड़े होकर भी यमुना जी की आरती दर्शन करते हैं । यमुनाजी में बहुत कछुवे हैं। उनको हम लोग चना व भुट्टा, लाई वगैरह यमुनाजी के अंदर फेंकने लगे। कछुओं का झुण्ड उन्हें खाने लगा । बन्दर पानी में गिरे चने आदि को खाने के लिए कछुओं की पीठ पर चढ़ जाते एवं चने खाते रहते ।

वानरों के डर से कछुवे पानी में डूब जाते, तब बन्दर लोग दूसरे कछुवों की पीठ पर चढ़कर चने खाने लगते । इस प्रकार दोनों चने वगैरह खाने लगे एवं मजेदार खेल चलने लगा । आरती के बाद हम लोग घर लौट आये ।

मथुरा के सब विग्रहों आदि के दर्शन करने के बाद हम लोग गोकुल गये । वहाँ नन्दराजा का घर, यमलार्जुन का स्थान, पूतना-वध स्थान, चौरासी खंभा आदि दर्शन कर मथुरा लौट आये । वहाँ से राधा-कुण्ड में कुछ दिन रहकर वहाँ स्नान, दर्शन करने लगे । एक व्रजमायी के पास से मधुकरी भिक्षा ग्रहण की ।

तड़ास के प्रसिद्ध जमींदार वनमाली रायजी के साथ परिचय हुआ। सुना था, उन लोगों को सालाना चार लाख रू. जमीदारी से मिलता है किन्तु उनको देखकर वे एक धनी व्यक्ति हैं, पता ही नहीं चलता। परिधान में मोटा वस्त्र, घुटनों तक धोती, हाथ में हरिनाम की झोली, वैष्णव वेश । वे परम भागवत् थे । धनवान होने पर भी उनमें कोई अभिमान या अहंकार का नामोनिशान नहीं था । जमींदारी की अधिकांश आय देव-सेवा, वैष्णव-सेवा, एवं वैष्णव-धर्म-ग्रंथ प्रचार में व्यय होती थी। शास्त्र एवं संस्कृत भाषा प्रचार में भी उनका काफी हाथ था ।

वनमालीराय जी ने हमारी खूब आवभगत की । उन्होंने कहा कि मैं गृहस्थाश्रम में हूँ इसलिए मेरे बड़े भाई बड़े दु:खी हैं । उनकी इच्छा है कि मैं कौपीन, कंथा लेकर संसार का त्याग कर दूँ। अनित्य संसार के मोह में मैं क्यों आबद्ध रहूँ ? मैं स्त्री, पुत्र, विषय-वैभव सब त्याग कर सकता हूँ किन्तु ''प्राणेश्वरी'' की सेवा ठीक से नहीं होगी, यह चिन्ता मुझे बराबर सताती रहती है । मैं किसी भी प्रकार से ''प्राणेश्वरी'' की सेवा त्याग नहीं सकता ।

यहाँ ''प्राणेश्वरी'' के विषय में पाठकों के मन में कौतूहल हो सकता है, अत: संक्षेप में इस विषय में लिख रहा हूँ ।

कोई एक ब्राह्मण पद्मा नदी (बंगाल) में स्नान कर रहे थे, उसी समय उनके पाँव में किसी चीज से ठोकर लगी। उठाकर उन्होंने देखा तो एक सुन्दर श्रीकृष्ण का विग्रह था। ब्राह्मण उस विग्रह को लाकर घर

में सेवा करने लगे । दरिद्र ब्राह्मण के द्वारा सेवा पूजा ठीक से न होने के कारण बनमालीराय के पूर्वज उस विग्रह को अपने घर में ले आये परन्तु उनके मन को श्रीकृष्ण की बाजू में राधारानी न रहने से पूजा करके तृप्ति नहीं मिलती थी ।

उस भक्त की अष्टम वर्षीया एक पुत्री थी जिसका नाम प्राणेश्वरी था । प्राणेश्वरी को वे प्राणों से ज्यादा प्रेम करते थे । अचानक वह ज्वर से आक्रान्त हो गई । अनेक प्रकार की चिकित्सा करने पर भी रोग ठीक न हुआ । चिकित्सक निराश हो गये । एक रात उनके पिता को स्वप्न-अवस्था में आदेश हुआ कि प्राणेश्वरी का देहान्त हो जायेगा । उसकी मृत्यु के बाद उसका दाह संस्कार मत करना। एक सुन्दर कपड़े से ढँक देना। फिर जो करना है, उसके दूसरे दिन करना ।

यथासमय प्राणेश्वरी की मृत्यु के बाद उसे कपड़ों से ढँक दिया गया। उसके दूसरे दिन पिता ने देखा कि शव नहीं है। उसके बदले में राधारानी का एक सुन्दर विग्रह रखा हुआ है । इस आश्चर्यजनक घटना को देखकर पिता ने समझा कि स्वयं राधारानी ही उसकी कन्या रूप में आई थी। फिर महासमारोह के साथ श्रीकृष्ण के बाँयी ओर स्थापना की गई एवं नाम ''प्राणेश्वरी'' रखा गया । तब से वंश परम्परा से ''प्राणेश्वरी'' की सेवा पूजा चल रही है ।

श्री वनमाली राय तड़ाश के घर को त्याग कर राधाकुंड में रहने लगे । अत: प्राणेश्वरी को भी यहाँ लाकर अति प्रेम के साथ सेवा करते थे। हम लोगों ने प्राणेश्वरी के दर्शन किये । वहाँ पर मयनडाल ग्राम के मित्र वंश के ठाकुर लोग खूब कीर्तन कर रहे थे । पंडितजी भावावेश में बहुत देर तक नृत्य करते रहे। बाद में हम लोग घर लौट आये ।

उसके दूसरे दिन हम लोगों ने कुसुम सरोवर में स्नान, तर्पण आदि करके हरिदेवजी के दर्शन किये । हरिदेव ठाकुर जी के मुखमंडल में एक मोती लगा हुआ है । आकार में छोटा होने से भी इसकी आभा अति उज्ज्वल थी । जगन्नाथ के ललाट में जो मोती है, वह आकार में बड़ा होने पर भी इसकी उज्ज्वलता ज्यादा प्रतीत हुई । मोती की ज्योति से हरिदेव का गर्भगृह आलोकित था ।

पंडितजी हरिदेव के दर्शन करके भाव-विभोर होकर नृत्य करते-करते पछाड़ खाकर भूमि में गिर पड़े एवं मूर्छित हो गये । बाद में उनके होश आने पर गोवर्धन की परिक्रमा शुरू की ।

गिरी गोवर्धन की ऊंचाई ज्यादा नहीं है। लम्बाई 7 मील एवं चौड़ाई करीब 500/700 हाथ होगी । समस्त पहाड़ जैसे किसी ने गैरिक रंग के पत्थरों से निर्माण किया है - ऐसा प्रतीत होता है । पत्थर इतने सुसज्जित हैं, जैसे किसी ने चुनाई की हो । पहाड़ के ऊपर छोटे-छोटे बबूल के पेड़ दिखे । दूसरे वृक्ष या घास वगैरह दृष्टिगोचर नहीं हुए ।

वहाँ के कई लोग गिरिराज जी को सांष्टांग दण्डवत् देते हुए परिक्रमा कर रहे थे । पंडितजी ने गिरिराज का दर्शन करके जैसे ही दण्डवत् किया, उनके देह में कंपन शुरू हो गया। वे नृत्य करते-करते मूर्छित होकर गिर पड़े। फिर चेतना आने पर चलने लगे । ग्वाल-बालकों को मैदान में गाय चराते देखकर वे फिर भावाविष्ट हो गये । मुझे बीच-बीच में साष्टांग करने के लिए कहने लगे । मैं भक्ति न रहने पर भी उनकी बात मानकर बीच-बीच मे साष्टांग दण्डवत् देकर चलने लगा । दोपहर के 1 बजे हम लोग गोविन्द कुंड उपस्थित हुए ।

इस गोविन्द कुंड के निकट वनमाली राय बहादुर के बड़े भाई श्री गोविन्द बाबू एक कुटीर बनाकर निर्जन में भजन करते थे । उनके दर्शन करने के लिए हम लोग गुफा में उपस्थित हुए । मैंने देखा कि एक ऊँची भूमि पर एक क्षुद्र गुफा है । यह गुफा घासफूस या पत्ते की बनी हुई नहीं थी। उपर मिट्टी से बनी छत थी एवं चारों ओर उबड़ खाबड़ दिवाल थी। गुफा या कुटिया बहुत ही छोटी थी। एक व्यक्ति मुश्किल से रह सकता है। गुफा में दरवाजा भी नहीं था । गुफा के सामने पीलू के दो-चार वृक्ष थे । बैठने को कोई जगह न थी । इस पीलू वृक्ष के नीचे हम लोग कुछ देर बैठे ।

गोविन्द बाबू हम लोगों को देखकर गुफा से बाहर आये । उनका गौरवर्ण, परिधान में कौपीन, अंग में फटा कंथा, पूर्ण यौवन देखने में बड़ा रमणीय लग रहा था । पूँजी स्वरूप उनके हाथ में गोवर्धन की रज का एक मात्र करवा था । सोने या बैठने के लिए कोई बिस्तर न था । रज में ही शयन एवं उपवेशन करते थे । बड़े धनी घर के लड़के, विशाल

जमींदारी, ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र आदि परित्याग कर नवीन उम्र में हरि आराधना में प्रवृत्त हो गये । एकदम निसंग एवं कपर्दकहीन, दिन में मात्र एक बार मधुकरी करते थे ।

शुरू में उनके छोटे भाई बनमाली राय भोजन के समय विविध प्रसाद गोविन्द बाबू के पास स्वर्ण थाली में भिजवा देते थे । प्रसाद की मर्यादा रखने के लिए वे कणिकामात्र ग्रहण कर पूरा का पूरा प्रसाद वापस भिजवा देते थे । वे बोलते थे कि इस प्रकार का आहार करना मेरे लिए ठीक नहीं है । बड़े भाई की एकान्त अनिच्छा देखकर वनमाली रायजी ने फिर प्रसाद भेजना बंद कर दिया ।

इसी गोविन्द कुण्ड में एक वृक्ष के नीचे गोपाल ने माघवेन्द्रपुरी जी को दुग्ध-पान कराया था । हम लोग गोविन्द बाबू से विदा लेकर माघवेन्द्रपुरी जी का स्थान दर्शन करने गये । वहाँ मैंने साष्टांग प्रणाम किया- उस स्थान पर पत्थरों से चुनाई कर दी गई है ।

गोविन्द कुण्ड से थोड़ी दूर में पंडितजी कुटीर बनाकर भजन करते थे । सामने ठाकुर बाड़ी है । हम लोगों ने गोविन्द कुण्ड में स्नान करके ठाकुर बाड़ी में प्रसाद पाया । ब्रजभूमि में हिंसा नहीं है । गोविन्दकुण्ड में कछुवे एवं मछलियाँ घाट के पास आकर हम लोगों के हाथ से आहार करने लगे । वे जीव बिल्कुल निडर प्रतीत होते थे ।

हम लोग गिरिराज की परिक्रमा करते-करते उस मंदिर के पास पहुँचे, जहाँ माघवेन्द्रपुरी जी के गोपाल* की सेवा कभी होती थी । चैतन्य महाप्रभु ने कहा था कि गोवर्धन पर्वत के ऊपर मत चढ़ना क्योंकि गोवर्धन की शिलाएँ भगवत् स्वरूप हैं । हम लोग नीचे से ही प्रणाम कर आगे बढ़े । उसके बाद मुखार्विन्द (जतीपुरा) के दर्शन किये । यहाँ नित्य गिरिराजजी की पूजा होती है एवं समय-समय पर उत्सव आदि होते रहते हैं । इसके बाद अनेक रमणीय स्थान दर्शन करके हम लोग राधाकुण्ड में वापस लौट गये ।

राधाकुण्ड में कोई भक्त वैष्णव, वृक्ष का आश्रय लेकर अनेक वर्षों

* यह मूर्ति श्रीनाथ द्वारा में ''श्री नाथजी'' नाम से प्रतिष्ठित है । मुसलमानों के आक्रमण के समय वहाँ से यह मूर्ति हटायी गई थी ।

तक थे । हम लोगों के राधाकुण्ड पहुँचने के करीब एक माह पहले उस वृक्षदेहधारी वैष्णव ने स्वप्न के माध्यम से एक अन्य वैष्णव को कहा कि मैं उस तारीख को वृक्षदेह परित्याग करुंगा । राधाकुण्ड वासी वैष्णवगण उस समय संकीर्तन-महोत्सव वगैरह कर सकते हैं ।

यह बात चारों ओर प्रचारित हो गई । किसी ने विश्वास किया, किसी ने नहीं किया । इस संबंध में वैष्णवों में आलोचनायें भी होने लगी । निर्दिष्ट दिन की वे प्रतीक्षा करने लगे । निर्दिष्ट दिन में बिना हवा या तूफान के वृक्ष अचानक टूट कर रज में गिर पड़ा । इस अद्‌भुत घटना को देखकर वृक्ष के पास महासंकीर्तन एवं महोत्सव हुआ था ।

हम लोग उस वृक्ष को देखने गये । मैंने देखा, वृक्ष के पीड़ के ऊपर की बड़ी-बड़ी डालियाँ चारों ओर टूट कर गिरी पड़ी हैं। वृक्ष का तना करीब 10 फुट खड़ा है । वृक्ष की डालियाँ, पत्तियाँ वगैरह सूख गई हैं। किसी ने उसे नष्ट नहीं किया है। जिस प्रकार गिरा था, उसी प्रकार रज में गिरा पड़ा है ।

मैंने उस वृक्ष की परिक्रमा करके प्रणाम किया । तब मुझे याद आया कि गोस्वामीजी ने कहा था कि अनेक महात्मा सूक्ष्मदेह में वृक्ष का आश्रय ले कर ब्रजधाम में निवास करते हैं। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मुझे आज मिला । हम लोग नितान्त अज्ञानी हैं। अनंतदेव की अनंत सृष्टि के गूढ़ विषयों को समझने की शक्ति हममें कहाँ है ? हम जिस बात को अपने विचार से नहीं समझ सकते, उसको ही मिथ्या कहकर टाल देते हैं।

राधाकुण्ड में श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीजी की समाधि, जान्हवी माता की समाधि, मनिहारी कुण्ड वगैरह सब दर्शनीय-स्थान दर्शन करके श्रीवृन्दावन लौट आये । गौर शिरोमणि जी के आश्रम में जहाँ वृक्ष ने नृत्य किया था, उस वृक्ष के भी दर्शन किये ।

रास्ते के क्लेश एवं घर से बाहर ज्यादा दिन रहने से मेरे संगी श्री तीनकड़ि सरकार एवं नगेन्द्रवाला देवी अस्वस्थ हो गई। इस कारण और तीर्थ-पर्यटन में अधिक दूर जाना उचित न समझकर हम लोग पंडितजी को साथ लेकर बोलपुर की ओर रवाना हुए ।

नाम के साथ मित्रता-स्थापन

मैं श्रीवृन्दावन धाम से बोलपुर आकर पंडितजी के साथ साधन-भजन करके आनन्द पूर्वक कालयापन करने लगा । चन्द्राकान्तदत्त जी कुछ दिन बोलपुर रहकर बरिशाल रवाना हो गये । पंडितजी भी और कुछ दिन रहकर गोस्वामीजी के समाधिस्थान पुरीधाम चले गये ।

मैं फिर एकाकी, दुःखित मन से बोलपुर में दिन बिताने लगा। इस पृथ्वी में मित्रता स्थायी नहीं होती, यह धारणा होने लगी । मेरे मित्र केदार नाथ जी दूर देश में रहने लगे, अघोरनाथ चटर्जी भी नलहाटी में रहने लगे। सरलनाथ एवं पंडितजी दूर चले गये। मैं एकाकी उनके विरह-जनित क्लेश को भोगने लगा । तब मुझे यह आंतरिक धारणा हुई कि **यदि किसी के साथ मित्रता करनी ही है तो श्री गुरु प्रदत्त ''नाम'' के साथ मित्रता स्थापित करना ही उचित है ।** यह ''नाम'' नितांत दुःख के समय भी अपने आप प्राण के अंदर आकर मुझे सान्त्वना देता है। ऐसी सान्त्वना अन्य कोई नहीं दे सकता । जब तक दुःख रहता है, मेरे पास से नहीं हटता एवं मन में कितना ही आनन्द देता है ।

इस जगत में स्वजन - संबंधियों को देखा। उनका संग किया। देखा कि वे केवल स्वार्थ को लेकर ही प्रेम करते हैं। थोड़ी भी स्वार्थ की हानि हुई तो मित्रता खत्म हो जाती है । धर्मबंधुगणों में विच्छेद से अत्यंत क्लेश का अनुभव होता है। यह सब सोच-विचार कर एक मात्र 'नाम' से ही मित्रता स्थापित करना अपना प्रधान कर्त्तव्य है, ऐसा मैंने दृढ़ संकल्प किया ।

मैंने ''नाम'' को कहा कि हे नाम ! मैं सब कुछ छोड़कर तुम्हारा शरणापन्न हो रहा हूँ, देखना जिससे मैं धर्म की रक्षा कर सकूँ । मुझे परित्याग मत करना। मेरा अपराध मत लेना। हजारों अपराध मुझसे होते रहते हैं। मुझे क्षमा करना। 'नाम' के साथ मित्रता स्थापित करने से मैंने देखा कि 'नाम' भी मुझसे प्रेम करने लगे । मैं 'नाम' लेकर बोलपुर में पड़ा रहा । नाम के साथ दोस्ती करने से नाम की अनेक लीलायें दृष्टि-गोचर हुई । 'नाम' का स्वभाव बहुत ही चंचल है। वे दूसरे का अभिमान देख नहीं सकते परन्तु वे खुद खूब अभिमानी हैं । वे मेरे वश में नहीं

रहते, मुझको ही अपने वश में करना चाहते हैं । यदि थोड़ी सी गलती हो गई तो फिर बचना मुश्किल। वे मुझसे रूठ कर मुझे त्याग करके चले जाते हैं। अनेक प्रकार की विनती करके उनके पाँव में गिरकर, नाक-कान रगडकर क्षमा याचना करके उनको वापस लौटा के लाना पड़ता है। मैं उनको समझाता हूँ कि मेरी सामान्य गलती होने से आप इतने रूठ क्यों जाते हो ? क्या यही मेरे प्रति तुम्हारी प्रेम की निशानी है ?

गल्तियों में वे मेरी हजारों गल्तियों को माफ कर देते हैं परन्तु मन में यदि थोड़ा अहंकार, थोड़ा अभिमान, प्रतिष्ठा, फिजूल बातें करने की इच्छा, परनिन्दा, ताश वगैरह खेलने की इच्छा हो तो फिर उनसे पार पाना कठिन है, एकदम बुरी तरह रूठ जाते हैं फिर उनका दर्शन करना दुर्लभ है। 'नाम' के साथ मित्रता साधने से मैं महामुश्किल में पड़ गया। अपने पुराने स्वभाव-दोष से उनके पास से भर्त्सना, ताड़ना मिलती। मुझे सब समय उनसे अनुनय-विनय करनी पड़ती ।

'नाम' श्रद्धा-भक्ति पसंद करते हैं, उनकी ठीक से सेवा, दुलार करने पर वे छोड़ कर नहीं जाते हैं । मुझे लेकर यथेष्ट आनंद करते हैं। मुझे समझाते हैं कि यदि मुझे चाहते हो तो सब परित्याग करो। जगत की माया, ममता को दूर करो। सर्व प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करो, तब फिर मुझे सर्वदा पाने की आशा करना। जहाँ घोर सांसारिकता है, वहाँ मैं नहीं रहता ।

मैं ''नाम'' की बात सुनकर उनसे कहता हूँ कि जागतिक माया, ममता एवं विविध आसक्ति परित्याग करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मैं जब तुम्हारे शरणागत हो गया हूँ, तो तुम ही मेरे सहायक होकर इन सब को दूर कर दो । मैंने सन्तों के मुख से सुना है कि तुम सर्वशक्तिमान हो । तुम्हारी शक्ति के बिना मेरी क्षमता ही क्या है कि एक सामान्य दुष्टप्रवृत्ति का भी दमन कर सकूं ? मैंने सुना है, तुम लोहे को सोना कर सकते हो। अंधकार को उजाला कर सकते हो इसलिए तो तुम्हारे शरणागत हुआ हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो। तुम्हारे सिवा मेरी कोई गति नहीं है।

मैंने बहुतों को देखा कि वैराग्य के वशीभूत होकर स्त्री, पुत्र, घर-द्वार, विषय, कर्म को त्याग कर उदासीन हो गये। कुछ साल बाद फिर गृहस्थी में नये रूप से बड़े आकार में जागतिक कर्म करने लगे। इसका

कारण और कुछ नहीं। **कर्म के रहते कर्म त्याग । इस जगत में उनका कर्म बाकी है या नहीं ? यह पूर्णत: न समझकर, मनुष्य श्मशान-वैराग्य के वश में संसार को त्याग कर ''इतोभ्रष्ट; उतोनष्ट'' हो जाता है। गुरु देह में नहीं हैं इसलिए उनके पास से उपदेश पाने का उपाय मेरे पास नहीं है। स्वयं की अवस्था स्वयं समझ भी नहीं सकता। इसलिए मैंने अपने जीवन का पूरा भार 'नाम' को अर्पण कर दिया । ''नाम'' को कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करो। मारना है मारो। रखना है रखो।**

श्रीगुरु प्रदत्त नाम के शरणागत होने से ''नाम'' मुझे यथेष्ट कृपा करने लगे । भक्ति प्राप्त करने के ''चौसठ अंगों'' में ''नाम'' को छोड़कर अन्य अंग की महत्ता कम होती गई । शास्त्र पाठ, देवार्चन, तीर्थ-पर्यटन, व्रत, नियमादि सर्वविध भक्तिअंगों का प्राय: त्याग हो गया। मेरे मन में यह दृढ़ धारणा हो गई कि जितने समय इन सबको लेकर रहूँगा, उतने समय तक ''नाम'' करने से विशेष उपकार न होगा। ''नाम'' का त्याग कर इस संसार में रहना मूर्खता का कार्य है । **जो लोग ''नाम'' करने में असमर्थ हैं, उनको इन सब अंगों को लेकर समय बिताना चाहिये।** नहीं तो नाना प्रकार की कल्पनायें, दुर्विचार वगैरह अंतर में प्रविष्ट होंगे ।

मेरी दृढ़ धारणा हो गई कि जो समस्त कर्म नाम के 'अवरोधक' हैं, वे मेरे लिए परित्याज्य हैं । जो कर्म 'नाम' के सहायक हैं, अनुकूल हैं, वे आचरणीय हैं । शास्त्र पाठ की प्रयोजनीयता है, शास्त्र पाठ न करने से खुद की गल्तियाँ पकड़ में नहीं आती । प्रबल माया खुद की गल्तियों को देखने नहीं देती बल्कि कभी-कभी दोष भी गुण रूप ही दिखता है । जब स्वयं के दोष, दोष-स्वरूप नहीं दिखते तब उसके प्रतीकार का कोई उपाय नहीं रहता । 'शास्त्र' इन सब दोषों को एक-एक करके दिखा देते हैं ।

शास्त्र पाठ की एक और उपयोगिता है। उनमें भगवान के गुण एवं लीला का वर्णन रहने से वे सब श्रवण या पाठ करने से चित्त ईश्वर-मुखी हो जाता है, एवं इससे जागतिक आसक्तियाँ कम हो जाती हैं, चित्त प्रसन्न हो जाता है, भक्तिभाव की वृद्धि होती है । शास्त्र पाठ से इतना

लाभ होता है, यह जानकर भी मेरी शास्त्र-पाठ की प्रवृत्ति खत्म हो गई। कोई दूसरा व्यक्ति यदि शास्त्र-पाठ या भजन-कीर्तन करने लगता तो मैं बैठ कर सुनता एवं अंदर से ''नाम साधन'' करने लगता। इस विषय में कालीकृष्ण जी ने मेरा परम उपकार किया था। वे रोज संकीर्तन करते एवं शास्त्र-पाठ करके सुनाते थे ।

मैं संसारी व्यक्ति हूँ । सांसारिक कर्म नहीं करने से मेरा काम नहीं चलता, परन्तु ''नाम'' को छोड़कर अन्य कर्म करने की प्रवृत्ति नहीं होती। अनिच्छा से 'नाम' का परित्याग करके जब सांसारिक कार्य में प्रवृत्त होता तो 'नाम' के पास भयपूर्वक अनुमति माँगता । ''नाम'' कभी-कभी इतने निष्ठुर हो जाते कि वे मेरी मजबूरी को न देखकर एकदम मुझे परित्याग करके चले जाते । अनेक अनुनय-विनय करने पर भी उनके दर्शन नहीं मिलते । **''नाम'' किसी के वश में नहीं रहते। उनके पास जोर-जबरदस्ती नहीं चलती । अनेक विनती एवं खुशामद करने पर फिर कृपा करते हैं ।**

''नाम'' चले न जायें, इस कारण सांसारिक कार्य में मनोनिवेश नहीं कर पाता था, इसलिए धीरे-धीरे जागतिक कार्य बंद होते गये। नाम ने क्रमशः मुझे अकर्मण्य बना दिया ।

मैं जितना ''नाम'' साधन करने लगा, उतना वैषयिक कर्मों में उदासीनता आती गई। कर्म में निश्चेष्टता एवं ''नाम'' में ममता आने लगी। मैंने देखा नाम उत्तेजक, रोगनाशक, स्वास्थ्यप्रद एवं आनंददायक है। ''नाम'' बन्द होने से व्याकुलता उपस्थित होने लगी । ''नाम'' के प्रति मन में प्रबल आकर्षण जन्म लेने लगा । पहले नाम करना कठिन कार्य प्रतीत होता था; क्रमशः ''नाम'' के बिना रहना कठिन लगने लगा ।

साधन-पथ में ''नाम'' के अनेक गुण दर्शन करने लगा । ''नाम'' दुष्टप्रवृत्ति-दमनकारी एवं सत्यप्रवृत्ति वर्धक हैं । ''नाम'' अभिमान एवं अहंकार को नष्ट करके दीन, हीन, कंगाल बना देता है। **कृपण को दाता बना देता है।** निर्दयी को दयालु कर देता है। दूसरों के दुःख में सहानुभूति का भाव उत्पन्न करता है, दूसरों को सुखी करने की इच्छा बढ़ाता है। परनिंदा, परचर्चा, दोष-दर्शन में अप्रवृत्ति लाता है । ''नाम''

सर्वप्रकार से स्वार्थ का विनाश करता है । ''नाम'' से वासना क्षय होती है। मिथ्या कल्पनायें तिरोहित हो जाती हैं। अधिक क्या ? ''नाम'' मनुष्य को भगवान के चरणों में अर्पण करने के योग्य बनाने के लिए नये साँचे में ढाल देता है । ''नाम'' के गुण की महिमा मैं क्षुद्र- कीट कैसे वर्णन कर सकता हूँ ?

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं कहा है -

चेतोदर्पणमार्जनम् भवमहादावाग्नि निर्वापणं,

श्रेयःकैरवचन्द्रिका वितरणं विद्या-वधूजीवनम् ।

आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं

सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम् ॥

जो मानस दर्पण की मलिनता दूर करता है। जो संसार रूपी भीषण दावानल को शांत करता है। जो परम मंगल रूप कुमुद के लिए चांदनी बिखेरता है। जो सुख-सागर का परिवर्धन करता है। जो हर पदक्षेप में पूर्ण अमृत के समान स्वाद प्रदान करता है। जो आत्मा को प्रेम सागर में डुबा देता है। उस श्रीकृष्ण संकीर्तन की जय हो ।

उन्होंने पुनः दीनता वश कहा है -

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति -

स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।

एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि,

दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

अर्थात्, हे भगवान्, आपने मनुष्य की रुचि के अनुसार अनेकों नामों का प्रचार किया है एवं उसमें अपनी सर्व शक्ति को अर्पण किया है। ''नाम'' लेने का कोई निश्चित समय भी निर्धारण नहीं किया गया है। फिर भी मेरा दुर्भाग्य है कि ऐसे ''नाम'' में मेरा अनुराग नहीं होता।

जिस भगवत् ''नाम'' की इतनी गुणवता है, उस ''नाम'' के शरणापन्न नहीं होऊंगा तो किसकी शरण में जाऊँगा ? यह सोचकर मैं एक मात्र ''नाम'' का अवलंबन करके बोलपुर में अकेला समय व्यतीत करने लगा ।

पुरी गमन

ई. 1900 के जेठ के महीने में गोस्वामीजी के प्रथम तिरोधान (निर्वाण-दिवस) के उपलक्ष में उत्सव होने वाला था । मैं यह संवाद पाकर कालीकृष्ण सरकार को साथ लेकर पुरी रवाना हुआ, तब हावड़ा से पुरी जाने का रेलमार्ग नहीं था । हम लोग कलकत्ता जाकर सुबह 8 बजे कयलाघाट में स्टीमर पर चढ़े, दोपहर 2 बजे उसने हमें ''कोलाघाट'' में उतार दिया। वहाँ से संध्या के समय ट्रेन पकड़कर दूसरे दिन सुबह पुरी पहुँच गये ।

गोस्वामीजी पुरी में जहाँ नीलमणि वर्मन के घर में थे, उस घर में हम लोग रहे । गोस्वामीजी के पंडे हरेकृष्ण खूँटिया को अपना पंडा बनाकर जगन्नाथजी के दर्शन, पंच तीर्थ में श्राद्धादि पितृकार्य किया । उसके बाद ब्राह्मण एवं दरिद्रों को भोजन कराकर तीर्थ में प्रयोजनीय सब कर्मों को किया । मेरा पैतृक पंडा भुवन मिश्र, विष प्रयोग के षड़यंत्र में लिप्त था इसलिए उसके वंशधरों को पंडा नहीं बनाया ।

नीलमणि वर्मन के घर में गोस्वामीजी का जिस जगह पर आसन था, वहीं पर उनके आसन की सेवा-पूजा पूर्ववत् चलती थी । नरेन्द्र सरोवर के उत्तर तट की भूमि पर गोस्वामीजी का देह जहाँ समाधिस्थ किया गया था * वहाँ उस समय केवल मात्र ताल के पत्ते से निर्मित एक छावनी थी ।

इस समाधि स्थान की एक छोटी सी कुटी में पंडितजी रहते थे एवं समाधि की सेवा पूजा करते थे । समाधि के ऊपर पाँच हाथ ईंट की चुनाई करके वेदी बनाई गई थी। इस वेदी के ऊपर एक गेरुवा कपड़ा बिछा रहता था । मैं समाधि-स्थान दर्शन करने की इच्छा से वहाँ उपस्थित होकर समाधि की परिक्रमा करने लगा । जिस विमान में गोस्वामीजी के मृतदेह को समाधि क्षेत्र में लाया गया था, परिक्रमा करते-करते अचानक मेरी आँखों के सामने वह दिखाई दिया - उसे देखकर मैं जोर-जोर से रोने लगा । उस क्रंदन के वेग को रोकने की मैं पूरी

* बाद में यहाँ विशाल समाधि मंदिर बनाया गया है एवं नित्य सेवापूजा होती है।

कोशिश करने लगा परन्तु रोक न सका । आँखों से अविराम अश्रु की झड़ी लग गई किन्तु उस क्रंदन से मेरा कोई संपर्क न था, केवल देह रो रहा था। मैं स्थिर होकर देख रहा था । कुछ देर बाद रोना अपने आप बंद हो गया । जिनके अन्दर शक्ति-संचार नहीं हुआ है, जो भगवत् शक्ति के आश्रित नहीं हैं, उनको इस प्रकार का रोना नहीं होता । इस प्रकार के क्रंदन से मैं एवं 'मेरा देह' संपूर्ण अलग वस्तु हैं, यह स्पष्ट अनुभव होता है ।

समाधि वेदी के पाँच हाथ (2 मीटर करीब) चुनाई के ऊपर गोस्वामीजी के शरीर का अविकल एक चित्र दिखता था ।** परिक्रमा समाप्त होने पर पंडितजी ने वेदी के ऊपर से गेरुवा कपड़ा हटाकर मुझे गोस्वामीजी के देह का चित्र दिखाया । उन्हें समाधि में जिस प्रकार से शयन कराया गया था, ठीक उसी प्रकार उस चित्र का वहाँ स्फुरण हुआ था । वही हाथ, वही पाँव, वही उदर, वही मुख मंडल, वही जटा वही दाढ़ी-मूँछें, सब साफ-साफ दिखाई दिया ।

उस वेदी को संगमरमर से बनाने का प्रस्ताव चल रहा था। संगमरमर के लगाने से उस सुंदर चित्र के नष्ट हो जाने की आशंका से कई लोगों ने इसमें तीव्र आपत्ति की, जिस कारण से उसमें संगमरमर तब* नहीं लगाया गया ।

जिस वस्त्र से समाधि वेदी ढकी रहती, उस वस्त्र में प्राय: भगवान का नाम, एवं पदचिन्ह दिखता था । कलकत्ते में रहते गोस्वामीजी के शरीर, आसन, वस्त्र में जिस प्रकार भगवान का नाम, पदचिन्ह या मूर्त्ति दिखी थी, ठीक उसी प्रकार इस वस्त्र पर भी नाम, चिन्ह वगैरह उभरते हुए दिखा । इससे मुझे प्रतीत हुआ कि गोस्वामीजी जैसे बोल रहे हैं कि हताश मत होओ, मैं अभी भी वर्तमान हूँ ।

उस समय पंडितजी को रोज थोड़ा-थोड़ा ज्वर होता था। उनकी तबियत अच्छी नहीं थी । वे हम लोगों को पाकर परम पुलकित हुए । रोज मुझे लेकर समुद्र स्नान कराने जाते थे। वहाँ तर्पण कर श्री

** दुःख का विषय है कि बाद में संगमरमर से उसे ढक देने पर चित्र का दिखना बंद हो गया - सम्पादक

जगन्नाथजी के दर्शन करवाते । पुरी के प्रमुख तीर्थ मार्कण्डेय सरोवर, श्वेतगंगा, चक्रतीर्थ, इन्द्रद्युम्न सरोवर, नीलकंठेश्वर महादेव, सिद्ध वकुल, गंभीरा, हरिदास ठाकुर की समाधि, टोटा गोपीनाथ, लोकनाथ, गुंडिचा मंदिर इत्यादि का भी दर्शन कराया । पंडितजी, क्या करने से मेरा मंगल होगा? सर्वदा इस ओर दृष्टि रखते थे । उनके साथ मैंने परम सुख से पुरीवास किया ।

पुरी के किसी पंडे ने एक छोटे से लकड़ी के मंदिर के साथ श्रीजगन्नाथजी, सुभद्रा एवं बलरामजी का एक छोटा विग्रह गोस्वामीजी को प्रदान किया था । एक और ब्राह्मण ने छोटे मंदिर के साथ एक श्रीकृष्ण विग्रह उनको दिया था । गोस्वामीजी रोज उनकी पूजा करते थे । वे बोलते थे कि जो विग्रह मेरे साथ बात नहीं करता, उनके मस्तक में मैं तुलसी नहीं देता । इन विग्रहों के साथ उनकी लीला चलती थी ।

गोस्वामीजी के देहान्त के बाद जहाँ उनका आसन था, वहाँ विग्रहों को रखा गया था । उन मंदिरों के कपाट बंद रहने के कारण कोई देख नहीं पाता था । सारदाकान्त जी एकान्त में उनकी पूजा करते थे । उन विग्रहों के दर्शन करने की मेरी प्रबल इच्छा हो गई । उत्सव के दिन श्री कुंजलाल नाग ने आसन के पास संकीर्तन प्रारंभ किया। भक्त श्रीधर घोष भावावेश में मूर्च्छित होकर जैसे ही गिरे, उनके हाथ से धक्का लगकर दोनों मंदिरों के कपाट खुल गये । मैंने दोनों विग्रहों के दर्शन किये । जगन्नाथजी ने मेरी इच्छा पूर्ण की ।

गोस्वामीजी के आसन में भोग निवेदन किया गया। आसन में सुन्दर पदचिन्ह दिखाई दिया । मैंने यह सब चीजें अपनी आँखों से देखी हैं । इन आश्चर्यजनक घटनाओं को देखकर यह समझ में आता है कि गोस्वामीजी वर्तमान हैं एवं सेवा-पूजा-भोग सब ग्रहण करते हैं । कुछ दिन और पंडितजी के पवित्र संग में रहकर हम लोग बोलपुर लौट आये।

ललित बाबू का आगमन

पुरीधाम से बोलपुर लौटने के कुछ दिन बाद ललित कुमार गुह ठाकुरता आकर उपस्थित हुए। उन्होंने जिला वरिशाल के अन्तर्गत वानरीपाड़ा के प्रसिद्ध गुह ठाकुरता वंश में जन्म ग्रहण किया था। उनकी

उम्र करीब 40 साल की थी। वे गोस्वामीजी के शिष्य थे। घर में माता, स्त्री, कन्या एवं भ्राता वर्तमान थे। प्रबल वैराग्य एवं धर्मानुराग लेकर वे यहाँ आये। जागतिक कोलाहल से उनके भजन में विघ्न हो रहा था। इस उद्देश्य से वे एकान्त भजन साधन करने के निमित्त बोलपुर आये थे।

ललितबाबू जब बोलपुर आये तब वे मौन व्रतधारी थे । किसी के साथ कोई बात नहीं बोलते थे । अत्यन्त जरुरी होने पर पेन्सिल से लिख देते थे । उनको पाकर मैं खूब आनन्दित हुआ ।

मैं एक वकील हूँ। घर में सब समय लोगों का आना जाना लगा रहता है। घर में कोलाहल भी है, इसलिए ललितबाबू के रहने के लिए मेरे घर के पास ही एक कमरे में व्यवस्था कर दी गई। ललित बाबू वहीं रहने लगे एवं कठोर रूप से भजन साधन करने लगे । भोजन के निमित्त मेरे घर में आते थे। वे मौनी थे। अत: उनके भजन में विघ्न न हो इसलिए किसी को भी उनके पास जाने नहीं देता था । वे अपने घर-गृहस्थी की कुछ भी खोज खबर नहीं लेते थे ।

कुछ दिन इस प्रकार बीतने के बाद उन्हें ठंड लगकर खाँसी की बीमारी हो गई । मैंने डरकर डाक्टर बुलाया परन्तु ललित बाबू ने किसी भी प्रकार की दवाई लेने में असम्मति जताई । मैंने उनसे अनेक विनती की, परन्तु वे न माने । रोग दिनोंदिन बढ़ता गया, मैं सोच में पड़ गया। तब मैंने ललित बाबू को कहा -

मैं - आपका रोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। मैं निश्चिंत नहीं रह पा रहा हूँ। आपके घर में संवाद दे देता हूँ ।

ललित बाबू - (पेन्सिल से लिखकर) मेरे घर में कोई खबर देने की आवश्यकता नहीं है ।

मैं - आपकी माता, स्त्री, भ्राता परिवारीजन सब कोई वर्तमान हैं। उनको संवाद न देने से मेरे कर्त्तव्य का पालन नहीं होगा ।

ललितबाबू - सांसारिक कोलाहल मुझे अच्छा नहीं लगता। संवाद देने से वहाँ से सब लोग यहाँ आ जायेंगे, मुझे अशांति होगी । आप चिंतित मत होईये। ऐसा रोग शरीर में बीच-बीच में होता है। यह शरीर का धर्म है फिर ठीक भी हो जाता है ।

अन्ततः मैं स्थिर न रह सका । रोग की तीव्रता बढ़ने से मैंने गुप्त भाव से उनके घर में संवाद भेजा । अनेक समझाकर डाक्टरी दवाई की व्यवस्था की । यहां के गुरुभाईगण उनकी सेवा करने लगे । रात्रि जागरण के लिए उन्होने पाली बना ली थी । कालीकृष्ण भाई रामपुर-हाट में रहते थे एवं नौकरी करते थे। वे छुट्टी लेकर यहाँ बोलपुर आकर ललित बाबू की सेवा में नियुक्त हो गये ।

ललित बाबू दृढ़ प्रतिज्ञ थे। इस रोग यंत्रणा में भी मौन व्रत त्याग नहीं किया । समान रूप से साधन भजन में संलग्न रहे । जब शरीर अति अस्वस्थ हो गया, तब बिस्तर में लेटकर भजन करते रहे । मृत्यु के दो दिन पहले उन्होंने मौनव्रत त्याग किया। तब उनकी बैठने की भी सामर्थ्य नहीं थी । मैंने पूछा -

मैं - आप कैसे हैं ?

ललित बाबू - अब शरीर की बात मत पूछो । जीवन समाप्त होने जा रहा है। शीघ्र ही देहत्याग होगा ।

मैं - स्त्री, संतान, माता इत्यादि की चिन्ता मन में आती है क्या?

ललित बाबू - उनकी बात याद भी नहीं आती । उन लोगों का संबंध तो जागतिक है ।

मैं - आपको कोई क्लेश हो रहा है ?

ललितबाबू - स्वाँस कष्ट उपस्थित होने से ''नाम'' में विघ्न हो रहा है। वही मेरा कष्ट है और दूसरा कोई कष्ट नहीं है ।

मैं - आपके लिए हम लोग खूब चिन्तित एवं दु:खी हैं ।

ललितबाबू - चिन्तित या दु:खी होने का कोई कारण नहीं है, प्रारब्ध ही बलवान है, जब जो होने वाला है, वह होगा ही। कोई खंडन नहीं कर सकता । आशीर्वाद दीजिए, जिससे ''नाम'' करते-करते इस नश्वर शरीर को परित्याग कर सकूँ ।

ललित बाबू संकीर्तन बहुत पंसद करते थे इसलिए सतीर्थगण (सब गुरुभाई) मिलकर मृदंग, करताल के साथ उनको संकीर्तन सुनाते थे । क्रमश: रोग वृद्धि होकर वे चेतनाशून्य हो गये। यह देखकर सतीर्थगण ने

उनकी आसन्न मृत्यु जानकर संध्या के बाद संकीर्तन आरंभ कर दिया । रात्रि के दो प्रहर के बाद संकीर्तन सुनकर उनकी चेतना लौट आयी। वे अति उत्साह के साथ बिस्तर में उठ बैठे एवं ''नाम'' करने लगे। क्रमश: सबेरा होते ही सूर्योदय के साथ-साथ उनकी प्राणवायु निकल गई ।

सतीर्थगणों ने अन्य लोगों को उनका शरीर स्पर्श करने नहीं दिया। उन सब लोगों ने मिलकर संकीर्तन करते-करते श्मशान में उन्हें ले जाकर दाह-संस्कार कर दिया । मृत्यु के दो दिन बाद ललित बाबू के बड़े भाई श्री शशिकुमार गुहठाकुरता वानरीपाड़ा से बोलपुर आये । भाई के साथ उनकी मुलाकात न हो सकी ।

ललित बाबू के पारलौकिक मंगल के लिये मैंने एक महोत्सव किया एवं प्रभु को भोग लगाकर प्रसाद का कुछ अंश ललितबाबू के निमित्त निवेदन कर दिया ।

नाम संकीर्तन बंद

बोलपुर में नाम संकीर्तन की जो प्रबल बाढ़ आयी थी, वह इस समय से धीरे-धीरे मंद होने लगी। पंडितजी एवं सरलनाथ पहले ही चले गये थे । यहाँ के गुरुभाईगण जिनको संकीर्तन में विशेष रुचि थी, वे भी स्थानांतरित हो गये । किसी किसी का देहान्त हो गया । जो लोग रहे, उनका भी अनुराग पहले जैसा न रहा ।

पहले संध्या के समय कोई अपने घर में नहीं रहता था। अपने आप संकीर्तन में आ जाता था। अब उन्हें बुलाना पड़ता है । मुझे संकीर्तन का जुगाड़ करके लोगों को बुलाने के लिए नौकर को भेजना पड़ता है । ऐसा लगता था, जैसे वे मुझे खुश करने के लिए ही संकीर्तन में आते हैं। वह स्फूर्त्ति, वह तन्मयता न रही। गले से स्वर नहीं निकलता। इतने भाव की तरंग न मालुम कहाँ चली गयी? जो लोग उन्मत्त होकर दिवा-रात्रि नृत्य करते-करते रुकने का नाम नहीं लेते थे, उनका आज भूमि से पाँव तक नहीं उठता। जैसे सब कोई मृत हैं ।

मेरा मुंशी राखाल चन्द्र चक्रवर्ती उत्कृष्ट वादक था। उसकी मृत्यु हो जाने से खोल (मृदंग) बजाने के लिए व्यक्ति मिलना मुश्किल हो गया।

वेतन भोगी वादक के द्वारा मन के अनुसार काम नहीं होता । वेतन भोगी लोगों के द्वारा नाम संकीर्तन कराने की अपेक्षा न कराना ही अच्छा महसूस हुआ। इस प्रकार नाम संकीर्तन में वृथा समय नष्ट होता है। नाम संकीर्तन की अपेक्षा इष्ट नाम जप करना ही श्रेय है। ऐसा विचार कर मैंने नाम-संकीर्तन बंद कर दिया । जो लोग मेरे लिये संकीर्तन में आते थे, उन्हें भी छुट्टी मिल गई। सब खेल खत्म हो गया । मैं एक मात्र गुरु- प्रदत्त नाम को संगी बनाकर पड़ा रहा । बीच-बीच में कभी एक बार पुरी जाकर कुछ दिन पंडितजी के साथ भगवत् प्रसंग में समय बिताकर आ जाता ।

गोस्वामीजी ने श्रीमत् अद्वैतप्रभु का जन्मोत्सव करने का आदेश दिया था, अतः उसे परित्याग नहीं किया । लोगों के अभाव में मुझे ही सब कार्य कराना पड़ता है ।

बोलपुर की यह शोचनीय अवस्था देखकर मैं जीवन्मृत अवस्था में कालयापन करने लगा । श्री अद्वैतप्रभु का उत्सव हो रहा है, इसमें भी भक्तों को बुलाने पर भी उनके दर्शन नहीं मिलते ।

मैंने देखा, गोस्वामीजी की अलौकिक शक्ति ही बोलपुर में लोगों को धर्म के प्रति आकृष्ट कर रही थी । बोलपुर का कार्य समाप्त हो जाने से वह शक्ति अन्तर्हित हो गई । शक्ति के अभाव में बोलपुर की पुनः दुर्दशा होने लगी ।

पुरी से पंडितजी का आगमन

मैंने पहले ही कहा था कि पंडितजी ही मेरे परम मित्र थे । उनके पुरी में रहने से जिस प्रकार मैं दुःखी था, वे भी मेरे विच्छेद से दुःखी थे। पुरी आश्रम में कुछ अशांति होने से वे बोलपुर आकर उपस्थित हुए । बहुत दिन तक कोई न रहने से उनकी कुटिया नष्ट हो गई थी । पंडितजी ने बोलपुर आकर पुनः कुटिया बनाने के लिए कहा । मैंने आनंदित होकर घर बनाना शुरु कर दिया ।

बोलपुर आकर पंडितजी ने भी अनुभव किया कि पहले जैसा वातावरण अब नहीं रहा । लोगों का धर्मानुराग अन्तर्हित हो गया है ।

गुरुभाईयों की दुरावस्था देखकर वे भी दुःखी हुए । उन्होंने कहा -

पंडितजी - मेरी बोलपुर में रहने की कोई स्थिरता नहीं है। शायद मुझे पुरी में ही रहना पड़ेगा। बेकार खर्च करके घर बनाने की जरूरत नहीं है ।

मैं - आप 6 महीने यहाँ रहिये। उससे ही मेरा गृह निर्माण में जो व्यय होगा, उसे सार्थक समझूँगा ।

पंडितजी - मैं कब पुरी चला जाऊँ ? ठीक नहीं है। अकारण अर्थ व्यय मत करो ।

मुझे पंडितजी की बात सुनकर दुःख हुआ । सोचा, अब उनकी उम्र हो गई है। भिक्षा करके रहना उनके लिए कष्टदायक होगा । मेरे घर में ब्राह्मण रसोइया भी नहीं रहता । पुरी में उनको सुविधा होगी । वहाँ रहने एवं भजन करने की सब प्रकार से सुविधा है । यह सब सोचकर कुटिया बनाने का विचार छोड़ दिया । पंडितजी दो तीन महीने बोलपुर रहकर समझ गये कि यहाँ का वातावरण मलिन हो गया है । तब वे पुरी चले गये । मैं पहले जैसे एकाकी था, वैसे एकाकी ही रहने लगा ।

संसार रूपी मरुस्थल में शान्ति की छाया प्राप्त करने के लिए मैंने अपने समस्त परिवार, आत्मीयगण, दास-दासी तक को सद्गुरु दीक्षा दिलवाई थी । सोचा था, सुखपूर्वक जगत में रह सकूंगा परन्तु वह हो न सका । पारिवारिक झमेले में, मैं दिवानिशि छटपटाता रहा। अनेक प्रकार की चेष्टाएँ की। पर सब विफल हो गयी । घर-गृहस्थी मेरे लिए दावानल सदृश हो गयी । गोस्वामीजी भी शरीर में नहीं हैं कि उनसे पूछकर सही पथ का निर्णय करूँ । पंडितजी पुरी से आकर भी कुछ कर न सके। मैं इस दुःखमय जगत में एकमात्र नाम का अवलम्बन करके पड़ा रहा। मेरा दुःख देखकर मेरे प्रति ''नाम'' की दया होने लगी । इस प्रकार दीर्घ समय बीत गया। स्त्री, पुत्र, कन्या इत्यादि के ऊपर मेरी जो ममता थी, वह दूर हो गई। ऐसा लगता था कि इन्हें न देखूँ तो बच जाऊँ ।

गोस्वामीजी ने कहा था कि अपने जीवन की कहानी कोई लिख नहीं सकता । मैं अब समझ रहा हूँ कि यह बात अति सत्य है। दूसरा व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की जीवनी किस प्रकार ठीक तरह से लिख

सकता है जबकि वह स्वयं अपनी जीवनी ही नहीं लिख सकता। गुरुभाईयों के एकान्त अनुरोध से मैंने अपने जीवन में सद्‌गुरु की लीला को जितना हृदयंगम किया था, उसी को लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ। किन्तु अब संकोच हो रहा है, लेखनी चल नहीं रही है ।

मैंने अभी तक अपने जीवन की बाहर की बातें ही अधिक लिखी हैं। इस अविश्वास के युग में भीतर की बात लिखने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ। लिखने की इच्छा भी नहीं है क्योंकि अपने धर्मजीवन की बातें लिखने से साधारण व्यक्ति विश्वास नहीं कर पायेगा। बल्कि हँसी उड़ायेगा और मैं स्वयं भी आत्म-प्रशंसा के अपराध में अपराधी होऊंगा । आत्म-प्रशंसा, आत्महत्या के तुल्य है, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है । कौन बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार आत्महत्या रूप महापातक में पतित होने की इच्छा करेगा ?

मैं स्वयं कानून का व्यवसायी हूँ। अधिकतर दुष्ट प्रकृति के लोगों से मेरा संबंध रहा है । मिथ्या, प्रवंचना के बीच ही मुझे वास करना पड़ा है। इस जीवन में धर्म की प्राप्ति होगी, यह एकदम असंभव ही था। किन्तु सद्‌गुरु की अपार महिमा है। गुरुशक्ति का अमोघ बल है। भगवान का अमूल्य नाम सर्वशक्ति समन्वित है । **गोस्वामीजी ने एक बार मुझसे कहा था कि आप लोग धर्माधर्म कुछ भी ठीक से समझ नहीं पाते। केवल घर-गृहस्थी में चक्कर काट रहे हो । उन्होंने बाद में यह भी कहा था कि हरिदास, दु:ख मत करना। भगवान सर्वशक्तिमान हैं। यदि वे धर्म देना चाहें तो इस नरक में भी धर्म दे सकते हैं, नहीं तो किसी भी प्रकार की कितनी भी चेष्टा करो, कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता ।** यह सब बातें धीरे-धीरे प्रत्यक्ष होने लगी । गोस्वामीजी धीरे-धीरे मरुस्थल में नन्दनकानन की रचना करने लगे ।

जितने दिन व्यतीत होने लगे, मेरे अंदर परमात्मा की अनुभूति महसूस होने लगी। विशेषत: नाम करने के समय इसकी अनुभूति ज्यादा होती थी । पहले यह अनुभव हृदय के बीच में ही आबद्ध था। कालान्तर में वह धीरे-धीरे नख से केश के अग्रभाग तक फैलने लगा । केश या नख को काटने पर कुछ पता नहीं चलता परन्तु इसमें परमात्मा की अनुभूति स्पष्ट समझी जा सकती है ।

धीरे धीरे माया का बंधन शिथिल होने लगा एवं जीवन एकदम नीरस हो गया । न भोजन में सुख मिलता, न स्त्री पुत्रादि में, और न विषय-वैभव में। पृथ्वी में ऐसा कोई सुख नहीं है, जो प्राणों के अंदर आनन्द का संचार कर सके । इस अवस्था में जीवन भयावह प्रतीत होने लगा । मन की व्याकुलता दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी । मैं प्राणार्पण से साधन भजन करने लगा ।

कार्याध्यक्ष - नियोग

पुरीधाम में नरेन्द्र सरोवर के उत्तर तट पर 3.21 एकड़ भूमि खरीद करके वहाँ गोस्वामीजी की देह को समाधिस्थ किया गया था । धीरे-धीरे यहाँ अनेक फल-फूल के वृक्ष एवं वास-योग्य कमरे बनाये गये हैं । गोस्वामीजी के पुत्र योगजीवन ने इस समाधि क्षेत्र में नाम-ब्रह्म की सेवा स्थापना की । ई. 1904 के 14 सितम्बर को यह संपत्ति नाम-ब्रह्म देव की सेवा में अर्पित कर दी गई। जितने दिन योगजीवन जीवित थे, उतने दिन तक वे वहाँ के सेवाइत (कार्याध्यक्ष) थे । ई. 1906 के आश्विन महीने में उनके परलोक गमन के बाद नये कार्याध्यक्ष की नियुक्ति की आवश्यकता हुई । ट्रस्ट डीड की शर्तानुसार ई. 1907 में जून के महीने में समाधि क्षेत्र में गोस्वामीजी के शिष्यगणों की एक वृहत् सभा हुई। गुरुभाईगणों के द्वारा बुलाये जाने पर मैं भी उस सभा मे उपस्थित हुआ। उन्होंने मुझे सभापति के पद से सम्मानित किया ।

शिष्यों में कुछ व्यक्तियों की इच्छा थी कि गुरु-परिवार के बीच से कोई कार्याध्यक्ष बने। कुछ लोग यह सोचने लगे कि गुरु परिवार के व्यक्ति यदि कार्याध्यक्ष बन जायेंगे तो समाधिक्षेत्र में सांसारिकता प्रवेश हो सकती है । सेवाकार्य सुचारू रूप से चलने में बाधा आ सकती है। सेवा की त्रुटि होने पर किसी को कहना भी कठिन होगा । अंत में अधिकांश लोगों की इच्छा से श्री सारदाकान्त वन्दोपाध्याय को कार्याध्यक्ष नियुक्त किया गया । वे गोस्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में थे एवं गोस्वामीजी की जीवित अवस्था में उन्होंने उनकी खूब सेवा की थी ।

इस घटना से गुरु परिवार के लोग मुझसे चिढ़ गये । उन लोगों की यह धारणा हो गई थी कि मेरे कारण ही वे लोग समाधि क्षेत्र के

अधिकार से वंचित हो गये हैं। वे लोग दुःख एवं अभिमान से मुझे पत्र लिखने लगे। मैं उन लोगों की गलत-धारणा किसी भी तरह से दूर न कर सका। मैंने उन्हें बहुत समझाया, पर वे किसी भी प्रकार से समझ न सके। एक तो पारिवारिक अशान्ति थी ही, फिर और अशान्ति मुझ पर आ पड़ी।

सरलनाथ भाई पुरी के समाधि क्षेत्र में एक छोटी सी कुटिया में रहते थे। वे बैठकर नाम नहीं कर सकते थे। इसलिए लेटकर नाम जप करते थे । एक दिन दुःखपूर्वक उन्होंने मुझसे कहा -

सरलनाथ - मैं यहाँ अब और नहीं रह सकता ।

मैं - क्यों ? क्या हुआ ?

सरलनाथ - मुझे सुधाक्षरण होता है जिससे अत्यन्त नशा होता है । मैं बिस्तर से उठ नहीं पाता। इससे आश्रम के लोग मुझे परेशान करते हैं । भोजन के समय नौकर लोग खिड़की से बार-बार बुलाकर मेरी उस अवस्था को नष्ट कर देते हैं । आश्रम के व्यक्ति बोलते हैं कि दिन-रात केवल बिस्तर में सोता रहता है, खाने के समय भी समय पर नहीं आता। बार-बार बुलाना पड़ता है ।

मैं - जब सुधाक्षरण होता है, उस समय किस प्रकार अनुभव करते हो ?

सरलनाथ - उस समय अत्यन्त नशा होता है। नाम अपने आप चलता रहता है। बिस्तर से उठ नहीं सकता । बाहर में होश प्रायः नहीं रहता । मैं जब लेटा रहता हूँ, तब मेरे ऊपर बूंद-बूंद वर्षा हो रही है, ऐसा अनुभव होता है । पूरा शरीर शीतल हो जाता है ।

मैं - किस समय सुधा-क्षरण होता है ?

सरलनाथ - रोज नहीं होता। उसका कोई निर्दिष्ट समय भी नहीं है।

मैं - सुधा का स्वाद किस प्रकार का होता है ?

सरलनाथ - कभी कड़वा, कभी नमकीन, कभी मीठा ।

सरलनाथ की बात सुनकर मैंने आश्रमवासी सभी स्त्री-पुरुषों को समझा दिया कि भोजन के समय उनको बारंबार बुलाया न जाए। उनका भोजन ढँककर रख देना। वे इच्छानुसार ग्रहण करेंगे । उसके बाद, उसी प्रकार की व्यवस्था उनके लिये कर दी गई ।

एक और दिन सरलनाथ ने कहा कि मेरे सामने आजकल एक दृश्य दिखाई पड़ने लगा है। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है । मैंने पूछा -

मैं - किस प्रकार का दृश्य ?

सरलनाथ - **गुरुप्रदत्त ''नाम'' मेरे सामने बड़े-बड़े अक्षरों में बिजली की रोशनी के साथ प्रकाशित होता है। फिर कुछ समय बाद वह 'ऊँकार' (प्रणव) में बदल जाता है। फिर वह प्रणव, गुरु रूप में परिवर्तित हो जाता है । पुनः गुरु रूप नाम में, नाम प्रणव में एवं प्रणव गुरुरूप में परिवर्तित होता है । इस प्रकार क्रम से होता ही रहता है। ऐसा क्यों होता है ?**

मैं - **नाम, नामी, नामदाता एक ही तत्व हैं। गुरुजी कृपा करके तुम्हें दिखा रहे हैं। तुम महाभाग्यवान हो ।**

पंडितजी के साथ और कुछ दिन आनन्द से बिताकर मैं बोलपुर चला गया ।

चिता-आरोहण

अष्टांग योग, सात्विक विकार, देवता दर्शन, योगेश्वर्य प्राप्ति आदि मुझे व्यर्थ बोध होने लगे । मैंने अनेकों के अंदर इस प्रकार की अवस्था देखी। फिर कुछ समय बाद वह सब विलीन हो गया । जितने दिन तक काम-क्रोधादि रिपुओं के दासत्व से छुटकारा प्राप्त न हो, तब तक उसे धर्म की परिभाषा देना ही व्यर्थ है । जितने दिन तक कामना, वासना, कल्पनाओं के हाथ से मुक्ति न मिले, दुष्प्रवृत्तियाँ खत्म न हों, आसक्ति का बंधन छिन्न न हो, जितने दिन तक भगवान के नाम का रसास्वादन न हो, उतने दिन मुझे धर्म की प्राप्ति हो गई है, ऐसा मैं नहीं समझता ।

धीरे-धीरे वैषयिक कर्म से अवकाश लेने की चेष्टा करने लगा । वकालती प्राय: 80% कम हो गयी । जितना 20% बाकी था, उसको भी छोड़कर पत्नी को घर-गृहस्थी का भार सौंप कर निश्चिन्त होने के लिए मन में संकल्प किया । उधर मुझे जलती हुई अग्नि में दग्ध करने के लिए श्रीगुरु अंदर-अंदर आयोजन कर रहे हैं। इस बात को मैं कल्पना में भी सोच न सका । **गोस्वामीजी ने कहा था कि तुम लोगों का पथ ज्वलन्त हुताशन के बीच से है। तुम लोगों को उसमें जलकर राख हो जाना पड़ेगा । इतने दिन बाद वही समय उपस्थित हुआ ।**

ई. 1907 के जून के महीने में मेरे तृतीय जामाता अमरनाथ मित्र ने स्वदेशी आंदोलन में कार्य करने के कारण नौकरी छोड़ दी थी। बाद में एक लोहे के सामान के विक्रय की दुकान खोलने की इच्छा से वे अपने ग्राम के मित्र प्रियगोपाल घोष के साथ मेरे निकट आये एवं 3000 रुपये की सहायता मांगी ।

मेरे जामाता अमरनाथ चरित्रवान, सत्यप्रकृति के व्यक्ति हैं। ऐसा मुझे विश्वास था। मैं उसको अत्यंत स्नेह भी करता था। वह जब नौकरी करता था, तब उसका परिश्रम देखकर मुझे कष्ट होता था । यदि 3000 रुपये मिल जाने से स्वाधीन भाव से उसकी जीविका-निर्वाह हो जाये तो यह अच्छी बात होगी। यह सोचकर मैंने उसके प्रस्ताव में सम्मति प्रदान की। प्रियगोपाल लोहे की दुकान में पहले कार्य कर चुका था इसलिए उसे अनुभव था ही। जामाता अमरनाथ भी कुछ कुछ कार्य, विशेषकर हिसाब के कार्य में दक्ष था । ये दोनों मिलकर दुकान ठीक से चला सकेंगे, ऐसा सोचकर मैंने उन्हें 3000 रुपये दिये। उन्होंने कहा कि कुछ दिन में आपको सब रुपये वापस कर क्रेडिट में कारोबार चलायेंगे। जितने दिन आपका रुपया हमारे पास रहेगा उतने दिन तक ब्याज के बदले मुनाफे का एक अंश आपको देंगे ।

मैंने सोचा, शायद ईश्वर इच्छा से, मेरी वकालती छूटने वाली है । यदि इस कारोबार से 50 रुपये मासिक भी लाभ मिला तो मैं वकालती छोड़ दूंगा एवं इस घृणित कार्य से परित्राण मिल जायेगा ।

कुछ दिन बाद अमरनाथ आकर मुझे बोला कि यदि इस दुकान में आपका भी नाम रहे तो दुकान की महत्ता-विश्वसनीयता बढ़ेगी । मेरी अब

''खटिया खड़ी'' होने वाली है, मैं यह समझ न सका। इस कारण मेरी बुद्धि-भ्रष्ट हो गई। अच्छा-बुरा, आगे-पीछे न सोचकर, अमरनाथ की इसमें भलाई होगी। यह समझकर अपना नाम देने के लिए मैंने हामी भर दी । दुकान के ऊपर 'हरिदास वसु एण्ड कम्पनी' नाम लिखवाकर अमरनाथ ने एक साइन बोर्ड लगा दिया ।

उसी समय मैं मलेरिया ज्वर से पीड़ित हो गया। बाजार मंदा हो गया। काफी रुपये नुकसान होने की वजह से प्रियगोपाल दुबक गया । दुकान मेरे हाथ में आ गयी । दुकान का कर्ज चुकाने के लिए मैंने धीरे-धीरे 22000 रुपये दिये। उसमें भी दुकान को संभाल न सका। अन्तत: दुकान बंद करनी पड़ी । यह बाईस हजार रुपये पूरा नुकसान हो गया । मैं बुरी तरह चारों ओर से फंस गया । मेरी पूरी संपत्ति बेचकर भी शायद यह कर्ज न चुकाया जा सकेगा ।

वकालत की आय कम हो गई थी। उसमें मेरा आधा खर्च भी नहीं निकलता था। मैं सोच मे पड़ गया कि अब मैं घर-गृहस्थी को किस प्रकार संभालूँ ? ऋण चुकाने के लिए बहुत कोशिश की। अनेक व्यक्तियों की खुशामद की परन्तु कुछ भी व्यवस्था न कर सका । चारों तरफ से मेरे नाम से मामले दर्ज कर दिये गये ।

''विपदा कभी अकेली नहीं आती'' । मेरी पत्नी अल्पबुद्धि महिला थी । वह इस विशाल कर्ज की बात सुनकर एकदम अधीर हो गई । दुश्चिन्ता से उसे रोग हो गया । बड़े लड़के ने आवारा होकर पढ़ाई-लिखाई छोड़ दी थी । बीच-बीच में छोटी लड़की का सिर गर्म हो जाता था, इसलिए उसे ससुराल में जगह नहीं मिली । नौकर भी मेरी बात सुनने को तैयार नहीं होते थे। मुझे परेशान करने लगे । मेरे बड़े भाई एवं भाभी भी मेरे विपक्ष में ही हो गये । उन लोगों ने झगड़ा करना शुरू कर दिया । परिवारीजन शत्रुता करने लगे । दुष्ट व्यक्तियों ने स्वार्थसिद्धि के लिए सुसमय जानकर मिथ्या फौजदारी मुकदमा दर्ज कर दिया । जमींदार लोग समय पाकर बेईज्ज़ती करने लगे । उनके साथ भी माली-मुकदमा चलने लगा ।

जो लोग मेरे अनुगत एवं आश्रित थे, उस समय मुझे धराशायी करने के लिए मेरे विपक्षी, डिग्रीदारों के साथ मिल गये । उन लोगों के

बहकाने से डिग्रीदार मेरे साथ राजीनामा करने से पीछे हट गये। चारों तरफ से मेरे नाम से डिगरी जारी होने लगी। किसी अदालत से मेरी स्थावर संपत्ति कुर्क हो गई तो किसी अदालत से गिरफ्तारी का वारंट जारी हो गया । मुझे गिरफ्तार करने के लिए अदालत के कर्मचारी आने लगे । मेरी जमीन, जायदाद, तालाब-बगीचा इत्यादि जो कुछ था सब को कुर्क कर दिया गया । डिगरीधारी यूरोपीय थे, इसलिए अदालत उनकी ही पक्षपाती हो गयी। अदालत से मुझे न्यायिक सहायता नहीं मिली । अपमान, तिरस्कार, निर्यातन आदि कुछ भी मिलना मुझे बाकी नहीं रहा ।

मेरे मित्रगण मुँह छिपाकर हँसने लगे। कुछ लोग सामने तो सांत्वना देने लगे, पर पीठ पीछे खुश होने लगे। जो लोग दुष्ट स्वभाव एवं चुगलखोर थे, वे तो बड़े ही खुश नजर आये। केवल जो लोग प्रकृत मित्र थे, वे लोग मेरे लिए हाहाकार करने लगे। मैं उन्हें सांत्वना देने लगा।

कुटुम्बीगण अब मेरी ओर नहीं देखते। धनी संबंधी लोग मेरी खोज खबर नहीं लेते जिससे मैं उनके पास कुछ मांग न बैठूं । एक बार मैंने रुपयों का अत्यन्त अभाव होने के कारण एक धनी संबंधी के पास से 300 रुपये कर्ज मांगा । उसे मेरा हाल मालुम न था। उसने मुझे कर्ज़ देने में सम्मति प्रदान कर पत्र लिखा । बाद में उन्हें मेरे संकट का पता चल गया था । मैं जब पत्रानुसार उनसे रुपये लेने उनके पास गया तो उन्होंने कहा कि मैंने तो पुन: पत्र दे दिया था, क्या वह पत्र तुम्हें नहीं मिला ? मैं बड़ा लज्ञित हुआ। अत्यन्त आवश्यकता होने से जिद करके थोड़े रुपये ले आया । संबंधी ने समझा होगा कि अब शायद रुपये वापस नहीं मिलेंगे । दो महीने जाने के बाद ही उन्होंने रुपयों के लिए तगादा शुरु कर दिया। मैंने उनके रुपये ब्याज के साथ वापस कर दिये ।

कोई-कोई मित्रतावश मुझे बोलने लगे कि तुम्हारे समान बेवकूफ व्यक्ति इस दुनिया में कोई नहीं है। इतने रुपये दूसरे के हाथ में देकर कोई खोज खबर न लेकर निश्चिंत बैठे रहे ? किसी ने कहा कि इन रुपयों के चौथाई रुपयों से भी बोलपुर में कोई कारोबार तुम स्वयं करते तो धनी बन जाते । मेरे परोक्ष (पीठ पीछे) में कुछ लोग यह भी बोलने लगे कि पाप का धन कैसे रहेगा ? वकालती का रुपया, कितने प्रकार

से बेईमानी करके प्राप्त होता है, उन रुपयों को अपने पास संचय करके रखना कठिन है । जिसके मन में जो आया, वह वही बोलने लगा। इस दु:समय में मेरे धर्म-बन्धु-गणों में भी कुछ लोग मेरे विरुद्ध में मेरी चुगली करने लगे । केवल मात्र पंडितजी ने कहा था कि विपदा आई है, अच्छा ही हुआ। कोई चिन्ता या भय मत करो, संकट अवश्य ही मिट जायेगा ।

पाठकगण, मेरी अवस्था पर एक बार विचार कीजिये। अर्थनाश, मनस्ताप, भय, चिन्ता, अपमान, तिरस्कार कुछ भी बाकी न रहा । उसके ऊपर पारिवारिक एवं आध्यात्मिक अशान्ति तो है ही । मैं एक-दम हताश हो गया । समस्त जगत मेरे लिए अंधकारमय हो गया । मेरा हृदय, सहारा-मरुस्थल की तरह सर्वदा तपने लगा । गुरुदेव की बात याद आ गई । मैंने आत्मरक्षा के सब उद्यम त्याग कर श्रीगुरु को स्मरण करके एवं नाम का सहारा लेकर प्रज्वलित चिता में आरोहण किया । **गोस्वामीजी ने कहा था कि ज्वलंत अनल में दग्धीभूत होना पड़ेगा - वह समय आ गया । शव का दाह कार्य चलने लगा ।**

मैंने अपनी आपदा एवं दु:ख की बातों का साधारण तौर पर उल्लेख किया है । इसका विवरण विस्तार से लिखने से पुस्तक का कलेवर बढ़ जायेगा और आप लोग भी दु:खी हो जायेंगे इसलिए उसका विवरण संक्षेप में लिख रहा हूँ । आप लोग मेरे मन की अवस्था को समझ लीजियेगा ।

सुश्रुषा आरंभ

प्रज्वलित चितानल में अविश्रान्त दग्धीभूत होते रहने से मेरा जीवन धारण असंभव सा जान पड़ा । मेरे हाथ-पाँव काँपने लगे। कंठस्वर भारी हो गया। शरीर जीर्ण एवं दुर्बल हो गया। छाती के अंदर कंपन शुरु हो गया, ऐसा लगने लगा, जैसे मृत्यु होने से ही शान्ति मिलेगी ।

मैं जागतिक लोगों के मुँह की ओर ताकता रहता था। उन लोगों को हँसते देखकर मन में आराम मिलता था। ऐसा लगता था कि चलो, यह आदमी कुछ समय के लिए तो आनन्द कर रहा है। मेरे समान दु:खी तो नहीं है, शराबी गुण्डों को भी मैं अपने से ज्यादा सुखी समझता।

बारौदी के लोकनाथ ब्रह्मचारी जी ने पंडितजी की दीक्षा की बात सुनकर उनसे कहा था कि ऐसा कार्य तुमने क्यों किया ? चरम यंत्रणा का भोग करना पड़ेगा । इन सब बातों का स्मरण हो आता, तब मेरी आँखों से आँसू टपक पड़ते ।

जब मेरी आंतरिक यंत्रणा चरम हो उठती, तब ''नाम'' अपने आप प्रबल वेग से प्रवाहित होता था। गुरु शक्ति मुझे आच्छादित कर देती । तब मुझे कोई दु:ख, यातना नहीं रहती । तब विचार होता कि आपदाएँ स्थायी रहें। जिससे गुरुशक्ति के योग से ''नाम'' लेकर परमानन्द से रह सकूँगा।

यंत्रणा कम होने से ''नाम'' व गुरुशक्ति चली जाती। मैं फिर हाहाकार करने लगता। फिर गुरुशक्ति एवं ''नाम'' मुझे अपने में डुबा देते । इस प्रकार बार-बार गुरुशक्ति एवं नाम की कृपा का आविर्भाव एवं अन्तर्धान होने लगा । जितने साल तक मुझे विपदा भोग करनी पड़ी, उतने वर्षों तक ''नाम'' एवं ''गुरुशक्ति'' ने मेरी सुश्रुषा की थी ।

उस समय श्रीमद् भागवत व गोस्वामीजी के उपदेश मेरे प्राणों में सांत्वना देते थे । **श्री कृष्ण ने श्रीमद् भागवत् में स्वयं कहा है कि जो मुझको चाहता है, उसका धन, जन, मान समस्त मैं हरण कर लेता हूँ। गोस्वामीजी ने भी कहा था कि जीवन्मृत (अर्थात् प्राण रहने पर भी मृतक के समान) न होने से प्रकृत धर्म का आस्वादन नहीं होता। इन सब बातों को स्मरण कर मुझे सांत्वना मिलती।** मेरी यंत्रणा का ह्रास होता ।

सांत्वना प्रदान

पाठकगण, आप लोग जान सके होंगे कि मेरी अर्थासक्ति प्रबल है। जैसा रोग हो उसकी दवाई भी वैसी ही होनी चाहिए । गोस्वामीजी ने मुझे पथ का भिक्षुक बना दिया। शरीर निर्वाह किस प्रकार से होगा ? यह सोचकर मैं अस्थिर हो जाता । इस संसार में धन, जन, कुटुंब वगैरह सब अनित्य एवं अस्थायी हैं, गोस्वामीजी ने मुझे स्पष्ट समझा दिया। मेरी जैसी स्थिति में साधारण व्यक्ति या तो पागल हो जाता है या

आत्म-हत्या करता है । गोस्वामीजी यंत्रणा के समय मुझे रक्षा करने के लिए ''नाम'' एवं प्रबल गुरुशक्ति के द्वारा, सांत्वना प्रदान करते एवं रात्रि में विविध स्वप्नों के माध्यम से मुझे समझाते ।

गोस्वामीजी ने कहा था कि मैं स्वप्नों के माध्यम से अनेक उपदेश देता हूँ । उस समय मैं प्राय: रोज एक न एक स्वप्न देखता था । इन स्वप्नों के माध्यम से गोस्वामीजी मुझे मेरी प्रकृत अवस्था को अच्छी तरह दिखा देते थे । **जाग्रत अवस्था में मनुष्य अपने को ठीक से समझ नहीं सकता । माया के प्रभाव से वह गलत को भी ठीक समझ बैठता है।**

मेरे अंदर काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, अभिमान, निंदा, प्रतिष्ठा, स्वार्थपरता, हिंसा, भय, शोक, अर्थासक्ति, मान, अपमान कितनी मात्रा में वर्त्तमान हैं ? उनका प्रभाव मेरे ऊपर कितना है ? वह गुरुकृपा से स्वप्न में मुझे स्पष्ट बताने लगे । दया, क्षमा, परदु:ख-कातरता, दीनता, नाम में रुचि व विश्वास, भगवान में रति, गुरु पर आकर्षण, मेरे अंदर किस परिमाण में है ? वह भी स्वप्न द्वारा दिखा देते थे । मेरे सन्मुख धर देते। मैं गुरु को स्मरण करके दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने की प्राणप्रण से चेष्टा करने लगा ।

सपनों को विस्तारित लिखने से एक अलग पुस्तक बन जायेगी । इसलिए उनमें से दो सपनों का यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ, जिनमें मुझे सान्त्वना या उपदेश विशेष रूप से प्राप्त हुआ ।

एक दिन रात्रि में बिस्तर में मैं सो रहा था, उस समय स्वप्न देखा कि एक खूब बड़ा मतवाला हाथी, मेरे प्राण संहार करने के लिए मेरा पीछा कर रहा है । मैं प्राण बचाने के लिए जितना भाग रहा हूँ, उतना वह मेरे पीछे दौड़ते हुए आ रहा है । मैं अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए कभी किसी वृक्ष के ऊपर, कभी अन्यत्र, कभी किसी घर के अंदर, कभी जल के अन्दर छिपने की कोशिश करने लगा, पर सर्वत्र हाथी कहीं न कहीं से आकर मेरे पीछे पड़ जाता । मैं फिर दौड़कर भागने लगा। तब रास्ते में 2/3 व्यक्तियों ने कहा ''शीघ्र कृष्णचक्र का आश्रय लो''। मैं उनकी बातों को समझ न सका। तब वे लोग मेरे सामने एक श्रीकृष्ण चक्र का चित्र लाये। मैंने देखा इसमें रासलीला के

चित्र के समान अनेक श्रीकृष्ण मूर्त्ति चक्राकार में चित्रित हैं। चक्र के बीच में एक बालक हाथ जोड़ कर श्रीकृष्ण के चरणों की ओर देखता हुआ खड़ा है । चित्र में एक पागल हाथी उस लड़के को वध करने के लिये दौड़कर आ रहा है । चक्र इस प्रकार से निर्मित है कि हाथी, बालक से एक अंगुल दूर रह जाता है। वह बालक को स्पर्श नहीं कर पाता । वह हाथी जिस ओर से बालक को आक्रमण करने की कोशिश करता है, सामने आते ही वह चक्र घूम जाता है। हाथी पीछे रह जाता है और बालक की नजर भगवान के चरणों में स्थिर रहती है । चित्र के हाथ के नीचे लिखा था ''संसार रूपी मत्त हाथी''। जैसे ही पढ़कर समझ में आया कि संसार रूपी हाथी ही मेरा पीछा कर रहा है; वैसे ही मन का आतंक दूर हो गया। मेरी निद्रा भंग हो गई ।

निद्राभंग के बाद मैंने गुरुदेव को प्रणाम किया । उनकी अपार करूणा को मैंने समझा। वे इस स्वप्न द्वारा यह बताना चाहते हैं कि भगवान के शरणागत होने से ही संसाररुपी मतवाला हाथी तुम्हारे केशाग्र को भी स्पर्श नहीं कर सकेगा। अन्य कहीं भी भागकर जाने से संसार की यातना से छुटकारा पाना कठिन है । इस सपने को देखने के बाद मुझे कुछ तसल्ली हुई । इसके बाद से मन में अन्य चिन्तायें आनी कम हो गई। मैं भगवान में मन लगाकर अविश्रान्त नाम-साधन करके समय बिताने लगा ।

भोलानाथ नामक एक नौकर मेरे घर में था । वह मेरे सतीर्थ श्री जगबंधु मैत्रजी का शिष्य था । एक कुत्ता कभी-कभी मेरे घर में घुसकर घर की सामग्री नष्ट कर देता था । एक दिन मैं लाठी लेकर घूमने जा रहा था, उस समय उस कुत्ते को बरामदे में चढ़ता देखकर मैंने लाठी से प्रहार किया। कुत्ता भौंकता हुआ भाग गया ।

कुत्ते को मारने के बाद मेरा मन खराब लगने लगा । मन ही मन मैंने कुत्ते को प्रणाम किया । भोलानाथ को कहा कि कुत्ते को मारकर मैंने अपराध किया है। उसे रोज ठीक से खिलाना । भोलानाथ भी उसे ठीक से खिलाता एवं देखभाल करता । मैं कुत्ते को देखने से ही प्रणाम करता । कुछ महीने बाद कुत्ते को एक घाव हुआ । भोलानाथ उसकी यथायोग्य चिकित्सा करवाने लगा, परन्तु घाव ठीक नहीं हुआ । उसका अंतिम

काल उपस्थित होने पर भोलानाथ उसे फूल की माला पहनाकर कान में भगवान का नाम सुनाने लगा । भाग्यवान कुत्ते ने नाम श्रवण करते-करते प्राण त्याग दिये । भोलानाथ ने उसके मृत देह को समाधि दे दी ।

कुछ दिन बाद मैंने स्वप्न में देखा कि मैं एक रास्ते से जा रहा हूँ। वही कुत्ता रास्ते के किनारे खड़ा है एवं गुस्से से मुझे काटना चाहता है। मैं समझ गया कि इसे मैंने पहले मारा था इसलिए बदला लेना चाहता है । मैं दूसरे रास्ते में चला गया। वहाँ भी देखा कि वही कुत्ता खड़े-खड़े गुर्रा रहा है। जिधर जाता, मुझे वही कुत्ता नजर आने लगा । अंत मे मैं समझ गया कि मेरा अब बचना मुश्किल ही है ।

मैंने देखा कि कुत्ता एक वृद्धा गरीब महिला के कुटीर के पास सोया है । मैंने पास जाकर उसके चरणों में साष्टांग प्रणाम करके चरणधूलि ग्रहण की। फिर हाथ जोड़कर कहा -

मैं - मुझे क्षमा कीजियेगा, मैंने आपको मारकर बहुत गलती की थी।

कुत्ता - क्षमा किसलिए ! तुमने मेरी पिटाई की थी, अब क्षमा मांगने आये हो ?

मैं - मेरी दुर्मति हो गई थी। मैंने बिना सोचे समझे अपराध कर दिया, मुझे क्षमा कीजिए ।

कुत्ता - मेरी कमर तुमने तोड़ दी। अब माफी माँगते हो ?

मैं - जो हो गया है वह तो लौटाया नहीं जा सकता। इसके प्रतिकार में जो करना हो कहिये। मैं उसके लिए तैयार हूँ ।

कुत्ता - तुम मेरे लिए क्या कर सकते हो ?

मैं - मैं आपकी सेवा के लिए 100 रुपये तक खर्च कर सकता हूँ।

कुत्ता - अच्छा, इस बूढ़ी को अभी 5 रुपये दो। उस रुपये से वह मेरी सेवा करेगी ।

मैं बूढ़ी को रुपये देने लगा, उसी समय मेरी निद्रा भंग हो गई । इस स्वप्न के द्वारा **मुझे यह शिक्षा मिली कि किसी के पास किसी भी प्रकार का अपराध करने पर बच नहीं सकते । अपराध करने से उसका**

दंड भोगना ही पड़ेगा । समस्त नर-नारी, कीट-पतंग, यहाँ तक कि वृक्ष-लता को भी उपयुक्त सम्मान एवं मर्यादा देकर सब के पदावनत होकर भजन करना होगा । इसके बाद मुझे विश्वास हो गया कि मुझे पथ का भिखारी नहीं होना पड़ेगा । शरीर-यात्रा गोस्वामीजी की कृपा से किसी न किसी प्रकार से चल जायेगी । मैं गुरु उपदेश शिरोधार्य करके चिता में शयन करके धैर्य सहित ''नाम'' करने लगा ।

श्रीमती कृष्ण-कामिनी दासी

मेरी सहधर्मिणी श्रीमती कृष्ण-कामिनी दासी स्वभावत: धर्मप्राण महिला थी । मेरी दीक्षा के बाद वह गोस्वामीजी से दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हो गई थी। दीक्षा के बाद वह मनोयोग से साधन-भजन करने लगी। ''नाम'' करने के साथ ही अपने आप प्राणायाम होने लगता। शरीर में कंपन होता। अश्रु विसर्जन होता। अंत में नृत्य भी करने लगती। थोड़ी देर नृत्य करने के बाद गिर पड़ती एवं चक्राकार घूमने लगती । उसकी विविध अंगचेष्टा होती । किसी को कोई धक्का न लगे, इस आशँका से सामने से सामान वगैरह हटा दिया करता । सिर के नीचे तकिया दे देता एवं नाम करके उसे चैतन्य करने की चेष्टा करता ।

श्री नित्य गोपाल चट्टराज नामक एक वैष्णव सज्जन मेरे घर में कभी-कभी आते थे । वे छुटपन से ही धर्मानुरागी थे । शरीर की अस्वस्थता होने या अन्य कोई बाधा-विघ्न होने पर भी भजन करना नहीं छोड़ते थे। इस प्रकार के निष्ठावान सदाचारी व्यक्ति कम दिखते हैं । वे कलकत्ते में गोस्वामीजी से भी मिल चुके थे एवं उनके पास रह कर उन्हें संकीर्तन भी सुनाये थे ।

संध्या के समय जब मेरे घर में नित्य-गोपाल जी भजन-गायन प्रारंभ करते, तब कीर्तन की ध्वनि सुनकर मेरी धर्मपत्नी अचेतन हो जाती थी। कभी-कभी भूमि में लोट-पोट भी करती थी। चट्टराजजी तुलसी परिक्रमा करने के लिए घर में प्रवेश करके धर्मपत्नी की इस प्रकार की भावावेश अवस्था देखकर आश्चर्यचकित हो जाते एवं कहते कि इतने दिनों तक हम लोग मन प्राण देकर भजन-साधन करते हैं, तब भी इस प्रकार के भाव का अंकुर भी हमारे अन्दर उदय नहीं होता है

और यह स्त्री घर में रहती है, गृह-कर्म सदा करती रहती है, फिर भी इसने यह देव-दुर्लभ अवस्था किस प्रकार प्राप्त कर ली ? महापुरुष की महाशक्ति के बिना यह जीव के लिए संभव नहीं है । चट्टराज जी धर्मपत्नी के सिर के पास बैठकर करताल बजाकर उसको भगवत् नाम श्रवण कराते । हरिनाम श्रवण करने के कुछ देर बाद उसकी चेतना लौट आती, वह चट्टराज को प्रणाम कर घर में चली जाती ।

भिखारी लोगों के द्वारा घर के बाहर करताल (झाँझ) बजाकर गायन करने से भी घर के अन्दर धर्मपत्नी को भावावेश हो जाता। घर के लोग जल्दी अंदर आने का दरवाजा बंद कर देते एवं धर्मपत्नी की शरीर-रक्षा के लिए पुत्र-कन्या सब चारों ओर से उसे घेर कर रखते थे। अति सावधानी से वे लोग अपनी माँ के देह की सुरक्षा कार्य में जुट जाते। चेतना वापस न आने तक अधिक पैसे देकर भी भजन गायन चालू रखा जाता। गायन को रोका नहीं जाता था* । बाद में उनकी चेतना आने से भिक्षुकों को मुँह माँगा पैसा देकर विदा किया जाता ।

धीरे-धीरे गृहिणी के अंदर वैराग्य का उदय होने लगा । वे नौकर-नौकरानी को भी शासन नहीं कर पाती थी । घर की वस्तुएँ, खाद्य पदार्थ वगैरह अधिक परिमाण में अपव्यय हो जाते थे। जागतिक कार्य भी सुश्रृंखला पूर्वक नहीं चलता। संतान-संतति या पति के प्रति भी उसकी विशेष ममता नहीं थी ।

सांसारिक कार्य में विश्रृंखता देखकर मैं बीच-बीच में असंतुष्ट होता था । एक दिन मैंने कहा -

मैं - तुम घर-गृहस्थी की तरफ नजर नहीं देती हो, सब वस्तुओं का अपव्यय हो रहा है, इस प्रकार क्या गृहस्थी चल सकती है ?

---

* संगीत श्रवण करने से जैसे गुरुशक्ति का आविर्भाव होता है, उसी प्रकार भाव के अनुरूप गायन से इस शक्ति का आविर्भाव होता है एवं साधक तब अमृत सागर में डूब जाता है । अचानक गायन बंद कर देने से साधक को कष्ट का अनुभव होता है । इस कारण चैतन्य चरितामृत में लिखा है -

विरुद्ध सिद्धांत और रसाभास ।
इसे सुन, प्रभु को न होता उल्लास ॥

गृहिणी - मैं क्या करूँ ? नाम करूँ या घर-गृहस्थी संभालूं ?

मैं - नाम भी करोगी और साथ में गृहस्थी भी संभालोगी । ''हाथ में काम, मुँह में नाम''। कर्म नहीं करने से कर्म क्षय नहीं होता ।

गृहिणी - **मैं ''नाम'' एवं कर्म एक साथ नहीं कर पाती । ''नाम'' करने से शरीर वश में नहीं रहता इसलिए दूसरा काम करने के लिए मुझे नाम का परित्याग करना पड़ता है ।**

मैं - काम करने के लिए यदि नाम का त्याग करना पड़े तो ऐसे कार्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है। संसार नष्ट हो जाय तो हो जाय। नाम को कभी त्याग मत करना । नाम से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। एक मात्र नाम करने से सब कर्म क्षय हो जाते हैं ।

मेरी मन:तुष्टि के लिए गृहिणी उस समय से गृह कार्य में मनोनिवेश करने का प्रयास करने लगी। वह घर के काम-काज कुछ-कुछ देखने लगी।

मेरे घर में गृहिणी को भोजन बनाने की आवश्यकता नहीं होती थी। रसोइया के द्वारा ही यह कार्य बराबर किया जाता था। जिस दिन वह उपस्थित नहीं रहता, उस दिन वह स्वयं भोजन बनाती थी। एक दिन वह रसोई घर में रसोई बनाने गई, उस समय उसे याद आया कि पति ने मुझे ''हाथ में काम, मुँह में नाम'' करने को कहा है इसलिए वह भोजन बनाते-बनाते श्वॉस-प्रश्वाँस में नाम भी करती गई। नाम करते-करते वह घरके अंदर पछाड़ खाकर गिर गई। कई प्रकार की शारिरिक क्रियायें प्रारंभ हो गई। पैर से आघात लगने के कारण घड़ा, बर्तन, लोटा वगैरह चारों ओर लुढ़कने लगे। घड़े के पानी से घर जलमग्न हो गया, अमनिया की हुई सब्जियाँ चारों ओर छिटक गई* । पड़ोस की दो ग्वालिन स्त्रियाँ दूध देने आई थी। वे लोग डरकर, वह घटना देखने लगी।

कुछ देर बाद पत्नी की चेतना लौटने के बाद वे दो स्त्रियाँ उससे पूछने लगी -

* कोई-कोई बोल सकते हैं कि वह स्नायु की दुर्बलता या मिर्गी आदि कोई रोग का कार्य है । जो लोग अध्यात्म राज्य की कोई खबर नहीं रखते हैं केवल घर-गृहस्थी की सीमा के अंदर ही जिनका ज्ञान आबद्ध है, वे लोग इसके अलावा बोल भी क्या सकते हैं ?

ग्वालिन - यह रोग आपको कितने दिन से हुआ है ?

गृहिणी - बहुत दिन हो गये ।

ग्वालिन - बाबू इसकी दवा-दारू क्यों नहीं कराते ?

गृहिणी - वे इस रोग की क्या दवा करवायेंगे ?

ग्वालिन - कोई डाक्टर या अच्छे वैद्य को दिखा सकते हैं ।

गृहिणी - इस रोग को ठीक करना डाक्टर या वैद्य के लिए असंभव है ।

ग्वालिन - किसी देवता के स्थान में पूजा देने क्यों नहीं जाती ?

गृहिणी - ठाकुर-देवता के स्थान में जाने से यह रोग और बढ़ जाता है ।

ग्वालिन - पहले से यह रोग कुछ कम होता जान पड़ता है?

गृहिणी - कम क्या होगा ? दिन-दिन बढ़ रहा है ।

इस प्रकार के वार्तालाप के बाद दोनों ग्वालिनें चली गई । मैंने अपनी पत्नी को कहा कि तुम्हें और रसोई करने की जरूरत नहीं है । मैं दूसरे व्यक्ति के द्वारा रसोई बनवा लूंगा। तुम केवल बैठे-बैठे नाम करती रहो । घर के काम-काज नाम से बड़े नहीं है। घर-गृहस्थी चूल्हे में जाये ।

एक दिन पत्नी आकर बोली कि हम लोगों को दरिद्रता भोग करनी पड़ेगी । मैंने कहा -

मैं - ऐसी बात क्यों बोल रही हो ?

गृहिणी - मैंने स्वप्न में देखा कि लक्ष्मी जी हम लोगों को त्यागकर चली गई ।

मैं - स्वप्न को पूरा-पूरा सुनाओ ?

गृहिणी कहने लगी कि मैंने स्वप्नावस्था में देखा कि एक ब्राह्मण-कन्या घर में आकर उपस्थित हुई । वह गौर वर्ण की वयस्का थी। माथे में सिन्दूर एवं हाथ में चूड़ियाँ थी। वह मुझे आकर बोली कि मैं तुझे छुटपन से ही स्नेह करती हूँ, बहुत दिन से तुझे देखी नहीं हूँ इसलिए

देखने आयी हूँ । मैंने उन्हें प्रणाम कर उसकी पदधूलि ग्रहण की एवं उसे बैठने का आसन दिया । वह कुछ देर बातचीत करने के बाद बोली कि मैं अभी जा रही हूँ , फिर आऊँगी । उसके जाने के समय मैंने उसे 2 रुपये नगद एवं एक साड़ी उसके पैर के पास रखकर प्रणाम किया । वह कपड़ा एवं रुपया लेकर जाने लगी । मैं भी उसके साथ-साथ चली।

गोशाला में आकर वह गाय को देखकर बोली कि अरे ! गाय को कितना कष्ट हो रहा है ? मैंने कहा कि मैं क्या करूँ ? गो सेवा के लिए नौकर रखी हूँ। घास, खली वगैरह का कोई अभाव नहीं है। नौकर लोग उसकी ठीक से सेवा नहीं करते । इससे वह बोली; तुम स्त्री हो, तुम और क्या कर सकती हो ? इसके बाद वह चली गई । इस स्वप्न को देखकर मेरा मन उदास हो गया है ।

मैं - मेरी धारणा है कि वह शायद अद्वैतप्रभु की गृहिणी सीता ठाकुरानी होगी। उन्होंने कृपा करके तुम्हें दर्शन दिया है । लक्ष्मीजी होने से उनके गले में माला व मस्तक में मुकुट रहता। तुम वृथा चिन्ता मत करो कि लक्ष्मीजी हमलोगों को परित्याग करके चली गई ।

इस घटना के बाद पत्नी जिससे गो-सेवा में त्रुटि न हो, इसके लिये सब कार्य परित्याग करके भी गो-सेवा में ध्यान रखती । भूसा, खली-चून इत्यादि के द्वारा अच्छी तरह से गौओं को खिलाती - गौएँ भी खूब दुग्ध देती ।

गृहिणी संकीर्तन सुनना बहुत पंसद करती थी। संकीर्तन सुनते-सुनते अपनी देह को संभाल नहीं पाती थी । उसे भाव हो जाता था । इसलिए मैं उसे बाहर संकीर्तन सुनने नहीं भेजता था । कभी-कभी उसे कर्ण-तृष्णा* होती थी। उस समय वह संगीत विद्या में पारंगत आस-पास

* कर्ण-तृष्णा की बात समझाना मुश्किल है । श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर को कहा था कि ''कर्ण तृष्णा से मुझे कष्ट हो रहा है, तुम रसामृत का पाठ करो, मैं सुनूँगा'' । साधन की परिपक्व अवस्था में किसी-किसी साधक को कर्ण-तृष्णा उपस्थित होती है। इससे कान के अंदर एक विचित्र प्रकार का क्लेश होता है। उस समय यदि कोई सुललित स्वर में भगवान के गुनानुवाद या लीला-कीर्तन गान करे तो कानों के भीतर अमृतधारा वर्षण होने लगती है । सब कष्ट मुहूर्त मात्र में दूर हो जाते हैं ।

की वैष्णवी स्त्रियों को बुलाकर भजन-गायन सुनती एवं प्रचुर रुपये देकर विदा करती ।

भगवत् विग्रहों के दर्शन करके भी वह अपने आप को सम्हाल नहीं पाती । एक बार पुरीधाम में जगन्नाथजी के दर्शन कर नृत्य करते-करते गिर पड़ी एवं विविध अंग चेष्टायें होने लगी । वहाँ कई गुरुभग्नियाँ भी उपस्थित थी । सब लोगों की नजर में यह दृश्य न दिखाई पड़े; इस कारण वे सब उसको घेर कर खड़ी हो गई । प्रकृतिस्थ होने के बाद उसे आश्रम में ले आये । उस दिन से मैं उसे अकेली जगन्नाथजी के दर्शन करने नहीं भेजता था। जाने की अत्यन्त इच्छा होने से गुरुभग्नियों के साथ भेजता था ।

ई. 1895 से मेरे घर में अद्वैत प्रभु का जन्मोत्सव होता आ रहा था, पाठकगण यह जानते ही हैं । इस उत्सव में उसका खूब उत्साह था, उत्सव के एक महीने पहले से ही दिनरात परिश्रम करके सब वस्तुओं का जुगाड़ करके रखती थी । अभी तक उत्सव में किसी चीज की कमी नहीं हुई है । उत्सव के उपलक्ष में गुरुभग्नियों के कलकत्ते से आने से वह पूरा भंडार उनके जिम्मे में छोड़ देती थी । गुरुभग्निगनों को भंडार में छोड़ कर वह भोग-पूजा एवं संकीर्तन में मस्त होकर रहती थी। वह सर्वदा भाव-विभोर होकर रहती थी। उत्सव के समय उसे भूख-प्यास भी नहीं रहती थी। केवल 1/2 ग्लास शर्बत मात्र पीकर रहती । उसके शरीर में असीम शक्ति का प्रादुर्भाव होता । संकीर्तन के समय वह अपने कमरे में बैठकर संकीर्तन श्रवण करती थी। कहीं भावावेश में संकीर्तन के बीच कूद कर न आ जाये; इसलिए दरवाजा बंद करके रखा जाता था। चिक या पर्दे के पीछे नहीं रखा जाता । जब तक संकीर्तन चलता रहता; तब तक केवल हुँकार, गर्जन, क्रंदन, नृत्य एवं विविध अंग-चेष्टा होती रहती। उसकी कन्याएँ व गुरुभग्नियाँ उसके देह को संभालती। जब अन्य गुरुभग्नियों में भी वही अवस्था उपस्थित होती; तब घर के अंदर हड़कंप मच जाता। रोने की आवाज चारों ओर गूंज जाती। घर के दरवाजे-खिड़की चकनाचूर होने लगते। कौन किसको संभालेगा ? कभी-कभी शरीर लहू-लुहान हो जाता ।

इस उत्सव में एक दिन भगवान के पदचिन्ह आसन पर दिखाई दिये। पहले सब गुरुभाईयों को दिखाया गया। बाद में स्त्रियां उसे देखने गई। मेरी पत्नी चरण-चिन्ह के दर्शन करके मूर्च्छित होकर गिर पड़ी एवं घर के एक कोने से दूसरे कोने तक लुढ़कती रही । घर की भोग-सामग्री चारों तरफ फैल न जाये, इस आशंका से मेरे बड़े भाई ने मेरी पत्नी को पकड़कर संभाला । हमारे यहाँ रिवाज है कि जेठ छोटे भाई की स्त्री को स्पर्श नहीं कर सकता । कोई वहाँ उपयुक्त व्यक्ति न रहने से बाध्य होकर उन्हें यह कार्य करना पड़ा। इस कारण वे अपने को अपराधी समझ कर गंगास्नान करके आये ।

गृहिणी को सुन्दर-सुन्दर देव-दर्शन होते थे । कभी-कभी जाग्रत अवस्था मे चर्मचक्षु से ही देखती कि छोटे-छोट राधा-कृष्ण उसके सामने खड़े हैं। कभी-कभी वे उसके वक्षस्थल पर, कभी बाजू में आकर खड़े होते । कभी उन दोनों को दोनों हाथों से पकड़कर नृत्य कराती । कभी देखती, राधाकृष्ण युगल रूप में खड़े हैं और सखीगण हाथ पकड़कर चारों ओर से उन्हें घेर कर नृत्य कर रही हैं । उनके अलौकिक रूप को देखकर वह मुग्ध हो जाती और स्वयं उसमें सम्मिलित होने के लिए कूद पड़ती ।

उत्सव के समय जब संकीर्तन होता, उस समय जिन-जिन देवताओं का आविर्भाव होता था, वह उन सबका दर्शन कर पाती थी । कभी देखती, श्री चैतन्य महाप्रभु भक्तों के साथ प्रबल नृत्य कर रहे है; कभी देखती श्रीराधा-कृष्ण खड़े हैं, ...इत्यादि । जब संकीर्तन में देवताओं या महापुरुषों का आगमन होता, उस समय संकीर्तन खूब जम जाता। चारों ओर शक्ति का प्रभाव फैल जाता ।

उत्सव समाप्ति पर, गुरुभाई-भग्निलोग जब अपने-अपने घर लौटने के लिए विदाई ग्रहण करते ; तब वह अपने को रोक नहीं पाती, रोते-रोते मूर्च्छित हो जाती । उस अवस्था में वे लोग भी नहीं जा पाते और उसे मधुर स्वर में हरिनाम श्रवन कराके स्वस्थ करते , फिर विदा लेते ।

धर्मपत्नी के मन की एकाग्रता प्रबल थी। वायुहीन दीपशिखा के समान मन को स्थिर करके वह नाम कर सकती थी । नाम करने के समय उसके मन में अन्य चिन्तायें नहीं आती थी । उस समय यदि

कुछ विघ्न उपस्थित होता तो उससे दु:खी होती थी । वह मुझे प्राय: बोलती थी कि इस कोलाहलपूर्ण घर-गृहस्थी में मुझे रहने की बिल्कुल इच्छा नहीं होती, मुझे किसी तीर्थ स्थान में भेज दो। मैं वहाँ निर्जन में रहकर शान्ति से भजन करूंगी । मैंने उससे कहा -

मैं - तुम्हारे-पति, पुत्र, कन्या, नाती, माता, भाई वगैरह सब वर्तमान हैं। उनके प्रति तुम्हारा आकर्षण नहीं होता ?

गृहिणी - ये सब कोई अपने नहीं हैं इसलिए आकर्षण कैसे होगा? ये सब मुझे बन्धन से लगते हैं ।

मैं - छोटे बच्चे के लिए तो तुम्हारे मन में चिन्ता रहती होगी ?

गृहिणी - कोई किसी का पुत्र नहीं है। कोई किसी की माता नहीं है। जीव अपने अपने कर्मफल भोगने के लिए जन्मग्रहण करता है। जब समय पूरा हो जाता हैं, तब चला जाता है। मनुष्य जो मेरा, मेरा कहकर मरता है वह केवल माया है। संसार बन्धन का यही मूल कारण है ।

मैं - ऐसी बात मत बोलो । संसार शैतान का नहीं, भगवान का है। पति, पुत्र इत्यादि सभी को भगवान का एक-एक रूप समझा करो । भगवत्सेवा करके पति-सेवा एवं संतान पालन करो । दीक्षा के समय गोस्वामीजी ने कहा था कि पति को नारायण मानकर सेवा करनी चाहिये।

गृहिणी - संसार में झंझट लगा ही रहता है । घर-गृहस्थी को लेकर रहने से साधन-भजन नहीं होता । ''नाम'' करने का समय भी नहीं मिलता ।

मैं - जगत में अनेकों अशान्ति आती रहती हैं। नाम करने का यथेष्ट समय भी नहीं मिलता, यह बात सत्य है परन्तु भजन हो नहीं रहा है, इस प्रकार यदि प्राणों में ठीक-ठीक व्याकुलता हो तो उससे ही मनुष्य धर्मपथ में अग्रसर हो सकता है । जिन लोगों के पास बहुत समय है, वे लोग भी नाम नहीं कर पाते । वृथा खेल-कूद या गप्पे लगाकर ही समय बिताते हैं । सारा दिन कर्म करने के बाद एकान्त मन से कुछ समय भी भगवान को पुकारने से उनकी कृपा मिल सकती है । महाभारत में जाबालि मुनि की कहानी तुमने सुनी नहीं है ?

गृहिणी - वह कहानी मैंने सुनी नहीं है ।

मैं - जाबालि मुनि अनेक वर्षों तक तपस्या करके महाशक्ति संपन्न हो गये थे। एक दिन वन में भ्रमण करते समय एक कौअे ने उनके ऊपर विष्ठा त्याग दिया जिससे उन्होंने क्रोध पूर्वक उसको देखा। वह कौआ भस्मीभूत होकर जमीन पर गिर पड़ा । इससे वे अपने को और भी शक्तिशाली समझने लगे थे। एक दिन वे भिक्षा के लिए एक कृषक के घर गए। उसी समय कृषक हल चलाकर थककर घर में लौटा था। उसकी पत्नी उसकी सेवा में व्यस्त हो गई। भिक्षा देने में देरी होने के कारण मुनि कुपित हो गये और दुर्वाक्य बोलने लगे। तब कृषक की पत्नी ने कहा कि आप क्रोध शान्त करें। आपको थोड़ी देर बाद भिक्षा मिल जायेगी, आप मुझे कौआ न समझें कि मुझे भस्म कर देंगे।

यह उत्तर सुनकर मुनि ने आश्चर्यचकित होकर उससे पूछा कि तुम किस प्रकार जान गयी कि मैंने एक कौऐ को क्रोधपूर्वक भस्म कर दिया था? तब कृषक पत्नी ने कहा कि मैंने एकमात्र अपने पति की सेवा से ही सब कुछ जान लिया, उसके बाद कृषक पत्नी ने मुनि का सत्कार किया । मुनि उसको आशीर्वाद करके चले गये ।

गृहिणी ने स्थिरता पूर्वक मेरे द्वारा कथित कहानी को सुना, फिर हँस कर बोली -

गृहिणी - आप कुछ भी बोलें। नारी जन्म पापतुल्य है, स्त्रियाँ सब समय पराधीन होती हैं ।

मैं - इस प्रकार की बातें तुम क्यों बोल रही हो ? मैं तो स्पष्ट देख रहा हूँ व समझ रहा हूँ कि अनेक पुण्यों के प्रताप से नारी जन्म की प्राप्ति होती है । संसार-निर्वाह के लिए स्त्रियों को पापाचरण नहीं करना पड़ता। इस कारण उनका मन शुद्ध रहता है । रुपया कमाने के चक्कर में पुरुष को खुशामदी, मिथ्या, प्रवंचना, कपटता, व्यर्थ-वाक्यालाप, चर्चाएँ करनी पड़ती हैं। अभी जिस प्रकार का माहौल हो रहा है, उसमें मनुष्य नौकरी करे या व्यवसाय करे या कोई अन्य कार्य करे, असत् आचरण को काय्, मन एवं वाक्य से त्यागना बड़ा ही कठिन है। कितना भी बचने की कोशिश करे, थोड़ा बहुत असत् कार्यों में लिप्त हो ही जाता है। स्त्रियों को इस प्रकार के पापाचरणों में लिप्त होना नहीं पड़ता। वे आदेश

करके छुट्टी पा जाती हैं। आवश्यक सामग्रियों के संग्रह का भार पुरुष के ऊपर ही रहता है।

तुम कहती हो, नारी जीवन पराधीन है, वह कैसे ? स्त्रियाँ घर को पूरा सम्हालती हैं। स्त्री की असहमति से पुरुष भी कोई कार्य नहीं कर पाता। स्त्री पुरुष को क्षुधा के समय अन्न देती है। तृष्णा के समय जल देती है। रोग के समय सेवा करती है। दु:ख के समय प्राणों में सान्त्वना देती है। बहिर्मुखी पुरुष को स्त्रियाँ ही संयमित करती हैं इसलिए शास्त्रों में स्त्री को ''गृहलक्ष्मी'' की संज्ञा दी गई है । स्त्रियाँ ही देश की धर्म रक्षा कर रही हैं । पृथ्वी के सब सभ्य देशों में स्त्रियों को विशेष सम्मान एवं स्थान दिया जाता है ।

मैं जब हिन्दू-रमणी के विषय में चिन्ता करता हूँ, तब प्रगाढ़ भक्ति एवं श्रद्धासुमन उनके प्रति अर्पित करता हूँ । वे लोग धर्म के लिए सब कुछ करने के लिए तत्पर थी । पति के साथ सहमृता होती थी। सतीत्व की रक्षा के लिए हजारों नारियों ने बलिदान दिया है, अनल में देहविसर्जन कर दिया है, तथापि अपने धर्म का त्याग नहीं किया । आर्य नारियों ने धर्म के लिए राज सिंहासन को भी तृण तुल्य समझ कर त्याग दिया था । इस प्रकार के दृष्टान्त भारतवर्ष में ही देखे जा सकते हैं। मैंने हिन्दू-रमणी के गर्भ में जन्म ग्रहण किया है इसलिए अपने को भाग्यशाली समझता हूँ । अभी पाश्चात्य शिक्षा के कारण हिन्दू-प्रकृति नष्ट हो रही है, इससे मुझे दु:ख होता है ।

इस प्रकार धर्मपत्नी से समय-समय में अनेक विषयों पर वार्ता होती थी। उसकी अनन्य गुरुनिष्ठा थी। गुरु आज्ञा प्राणप्रण से पालन करती थी, सदाचारी थी। सर्वदा शुचि-शुद्ध रहती थी । धर्म के लिए खुले मन से व्यय करती थी । वह कहती थी कि अच्छे कार्य के लिए जितना खर्च करते हैं, उतना ही भगवान देते रहते हैं; और जितनी कृपणता, कंजूसी करोगे, उतना ही वे समेट लेंगे । धर्मार्थ खर्च करो। अभाव नहीं होगा।

अतिथि सत्कार की ओर उसकी विशेष दृष्टि थी। अतिथि कभी भी खाली हाथ नहीं वापस लौटता। भिखारी भी कुछ न कुछ ले ही जाता। परनिन्दा, परचर्चा करना उसके स्वभाव में बिल्कुल न था । किसी के

साथ झगड़ा, विवाद बिल्कुल नहीं करती थी । कोई यदि बिना कारण के झगड़ा मोल ले, गाली गलौच करे तब भी चुप रहती थी। नौकर-नौकरानियों को खूब स्नेह करती थी। उनकी यथायोग्य सहायता करती थी।

स्त्री-वियोग

इस ग्रन्थ में, सद्गुरु ने मेरे जीवन में जो लीला की है या कर रहे हैं, उसे ही लिखा जा रहा है। यह ग्रंथ मेरी जीवनी नहीं है इसलिए जीवन की सब घटनाओं का उल्लेख नहीं कर रहा हूँ। मैं अपने दुःख की गाथा पाठकों को लिखकर उनके प्राणों में कष्ट देना नहीं चाहता ।

मेरी पत्नी घर-गृहस्थी को संपूर्ण रूप से सम्हालती थी । घर के खर्च से रुपये बचाकर एवं मेरे पास से भी कभी-कभी मांगकर उसने काफी रुपया संचय किया था । यह बात उसने मेरे को बताई नहीं थी । मेरे तृतीय जामाता अमरनाथ ने मेरी लड़की के पास से संधान पाकर, वे रुपये अपनी दुकान में लगाकर हर महीने ब्याज देने का वादा करके धर्मपत्नी के पास से निकलवा लिये थे। दुकान बंद हो जाने से उसे ब्याज भी नहीं मिला; मूलधन भी गँवा बैठी। इस कारण उसके मन में आघात लग गया। फिर दुकान के कर्ज के कारण मेरे ऊपर हजारों रुपये की डिगरी जारी हुई। सब संपत्ति को कुड़की कर लिया गया ....इत्यादि अनेक कारणों से वह हताश हो गई। उसके पास भी रुपये न रहे जिससे वह मुझे कुछ रुपये दे सके एवं मुझे कुछ सहायता कर सके या संसार का खर्च चला सके । मेरी भी वृद्धावस्था थी। वकालती की आय भी कम हो गई। चारो तरफ से अपमान, लांछना होने लगी। शत्रुगण हँसने लगे। सन्तान-संततियों को लेकर वृक्ष-तले न रहना पड़े, यह सोचकर वह दिन प्रतिदन दुःख एवं चिन्ताओं से घिर गई ।

मैं गृहिणी की इस अवस्था को देखकर उसे सांत्वना देने के लिए समझाता कि धर्म प्राप्ति सहज में नहीं होती । जिन्होंने भी धर्म की प्राप्ति की है, उन्हें अनेक दुःख, क्लेश, यातनायें सहन करनी पड़ी हैं । फूलों की सेज में शयन करके और लड्डू-पूड़ी खाकर धर्म प्राप्ति नहीं होती। जगत के सुख की इच्छा अंतःकरण में लेशमात्र रहने पर भी प्रकृत धर्म

अति दूर चला जाता है । भगवान जिसको आत्मसात् करते हैं, उसको जागतिक सुख आदि से वंचित कर देते हैं । धर्म प्राप्ति के लिए गोस्वामजी को भी कितनी यातनाएँ सहन करनी पड़ी ?

महाभारत में पांडव पत्नी द्रौपदी की अवस्था एक बार सोचो । वे राजसूय यज्ञ की पटरानी, त्रिलोक पूजिता । अपने पति के सामने उसे कौरवों की सभा में कितना अपमान सहन करना पड़ा ? फिर राज्य गँवाकर वनवासी होने के बाद भी निस्तार नहीं मिला । जयद्रथ वन में भी उसे हरण करने गया । विराट राजा के घर में दासी होकर रहना पड़ा। कीचक के द्वारा भी कितना तिरस्कार सहन करना पड़ा ? तुम्हारे अभी क्या हुआ है ? अभी तक तुम्हें अपने गहने बेचने की नौबत नहीं आयी है। इतनी चिन्ता क्यों करती हो ?

एक बार बलि राजा की कथा पर विचार करो । राजा बलि त्रिलोकी के अधीश्वर थे। भगवान ने वामन रूप में छलना करके उनका सर्वस्व हरण कर लिया। बाद में उसको बन्दी बना लिया । ब्रह्माजी ने आकर कितनी विनती की ? भक्त प्रहलाद पौत्र की दुर्दशा देखकर स्तुति करने लगे, किन्तु भगवान न माने । बलि राजभ्रष्ट हो गये। विपक्ष के देवतागण हँसी उड़ाने लगे। उनके अपमान की सीमा न रही । तब बलि राजा की पत्नी विंध्यावलि कर जोड़ कर प्रार्थना करने लगी एवं वामन भगवान को बोली कि इस असुर को आप क्षमा कर दीजिए। यह मूढ़ है। वह यह नहीं जानता कि समस्त चराचर के आप ही स्वामी हैं। वह अपने को विश्वपति समझकर आपको तीन पद भूमि दान करने को वचन बद्ध हुआ था । **तब भगवान हँस कर बोले कि बलि मेरा परम भक्त है। मैंने उस पर क्रोध नहीं किया है। वह ऐश्वर्य के मद में मुझे भूल न जाये; इसलिए दया करके उसका सर्वस्व हरण कर लिया है । उसके बाद भगवान ने बलि को परम गति प्रदान की । बलि पाताल के राजा हुए और भगवान उस के द्वार में द्वारपाल बने ।**

इस जगत में मनुष्य स्वार्थ लेकर व्यस्त है । जो व्यक्ति धर्माचरण करने में प्रवृत्त होगा; सब उसके विपक्ष में हो जायेंगे। अधिक क्या ? माता, पिता तक शत्रुता आरंभ कर देते हैं । प्रहलाद ने पिता के हाथ से अनेक यातनाएँ भोगी थी । रावण ने विभीषण को पदाघात द्वारा लंका से

भगा दिया था। **जो लोग धर्म का आश्रय ग्रहण करेंगे; उनको दु:ख अनिवार्य है।**

गृहिणी - मैं देख रही हूँ, सभी लोग इस जगत में बड़े सुख पूर्वक दिन बिता रहे हैं। केवल हम लोगों को ही कष्ट उठाना पड़ रहा है ।

मैं - तुमने लोगों में इतना सुख क्या देखा ? और हमें भी इतना कष्ट किस प्रकार का है बताओ ?

गृहिणी - साधारण व्यक्ति हँस-खेल कर, आनन्द से आमोद-प्रमोद में दिन बिता रहा है और हम लोग केवल मन ही मन दग्ध हो रहे हैं ।

धर्मपत्नी की इन बातों को सुनकर मैंने उसको समझाया कि सांसारिक लोगों के सुख-दु:ख की तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि **हम लोग जिसको परम दु:ख समझते है, संसारी व्यक्ति उसे ही परम सुख समझता है।** देखो, सन्तान-संतति से लोगों को कितना सुख मिलता है ? एक लड़का होने से सांसारिक व्यक्ति आनन्द में विभोर हो जाता है । उसे अपनी गोद से उतारना नहीं चाहता। आँखों से ओझल नहीं करना चाहता । अपनी पुत्रवधू, जामाता, समधी, कुटुंब को लेकर कितना आमोद-प्रमोद करता है ? जिन लोगों के संतान नहीं है, वह भी एक पालित पुत्र को लेकर अपने सुख-विलास को पूर्ण करता है ।

हम लोगों के विचार उन लोगों से विपरीत हैं। उनसे संपूर्ण भिन्न हैं। हम लोग संतान-संतति को बंधन समझते हैं । ये लोग हमारे चिन्ता एवं उद्वेग के कारण हैं। इनके लालन-पालन में वृथा समय नष्ट होता है। ये सब झंझट न रहे तो शांति मिले-ऐसा अहसास होता है । मुक्ति पथ में यह सब बंधन प्रतीत होते हैं ।

विवाह आदि उत्सव में जागतिक लोगों को कितना आनन्द मिलता है ? कुंटुंबियों की हलचल, मौज-मस्ती, खाने-पीने का राजसिक आयोजन, साज-श्रृंगार में बेशुमार खर्च करते हैं । इन सब आमोद-प्रमोद एवं कोलाहल से दूर रहने में ही हमें शान्ति मिलती है ।

देखो, हम लोग किसी भोज-कार्य में भोजन कर नहीं सकते। अनाचारी लोगों के द्वारा निर्मित उच्छिष्ट (झूठा) भोजन हम लोगों को खाना निषेध है ।

इस कारण वहाँ उपस्थित न होने से सब लोग, हम लोगों को अहंकारी, धर्मध्वजी इत्यादि कितनी ही बातें कहते हैं, जिसे हमें चुपचाप सहन करना पड़ता है।

जागतिक लोग बड़े-बड़े होटलों में खाते पीते, ऐश-आराम करते हैं। हम लोगों के लिए यह फिजूल-खर्च है। उन रुपयों को यदि देश के दरिद्रों को भोजन, वस्त्र एवं गरीबों के बच्चों के लिए शिक्षा एवं रोग की चिकित्सा में व्यय किया जाय तो ज्यादा आनन्ददायक है ।

आमिष भोजन लोगों को रुचिकर है । पशु, पक्षी, मछली आदि को मारकर उनसे विविध प्रकार के व्यंजन बनाकर आहार करने से बड़े तृप्त होते हैं। हम लोग जीव हिंसा का नाम सुन कर ही दु:खी होते हैं। इसलिए आमिष आहार से वंचित हैं ।

लोग दूसरों के ऊपर अपना प्रभुत्व जमाकर आनन्दित होते हैं । हम लोग प्रभुता त्याग कर ''दास'' होना चाहते हैं । सेवा ग्रहण की अपेक्षा सेवा करने में सुख पाते हैं । अपने नौकर-चाकर पर भी शासन नहीं कर पाते जिससे कभी-कभी वे स्वेच्छाचारी भी हो जाते हैं ।

हम लोग ग्रहण की अपेक्षा दान को ही उत्तम मानते हैं । दूसरे की संपत्ति ग्रहण करने की अपेक्षा दु:खियों को दान करने से अपने को कृतार्थ समझते हैं । लोग छल-कपट, मिथ्या चातुरी से विषय एवं अर्थोपार्जन कर रहे हैं। हम लोग ऐसा करने में असमर्थ हैं ।

धन, मान, प्रतिष्ठा पाने के लिए लोग पागल हो रहे हैं । जन समाज में यशस्वी होने के लिए थोड़ा-बहुत दान करके पत्रिका में नाम छपाने को व्याकुल होते हैं । राजा-महाराजा उपाधि लेने के लिए विचारहीन होकर अर्थ का व्यय करते हैं । हम लोग ''अमानी'' होने के लिए, नाम, नियम, साधन करने का कष्ट उठाते हैं । हम लोगों के लिए प्रतिष्ठा, शूकरी विष्ठा है । लोग मान-सम्मान चाहते हैं; हम लोग ''मानद'' (दूसरों को मान देने वाला) होना चाहते हैं ।

यौन-सुख को परम सुख मानकर नर-नारी न मालुम क्या-क्या कर रहे हैं ? इसके लिए कितनी हत्याएँ एवं व्यभिचार हो रहे हैं। जिनकी यौनशक्ति नष्ट हो गई है, वे भी अनेक प्रकार की दवाईयों का सेवन

करके उसमें वृद्धि करने की चेष्टा कर रहे हैं । हम लोग, गृहस्थ में रहकर शास्त्रोक्त विधि से चलने का प्रयास कर रहे हैं। काम रिपु से रक्षा पाने के लिए संयम का पालन एवं साधन-भजन कर रहे हैं ।

जागतिक व्यक्ति सन्तान एवं स्वर्गादि की कामना से कितने याग-यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं। हम लोग सर्व कामना का परित्याग कर, हरि पाद-पद्म प्राप्ति की आशा लेकर साधन-भजन करके काल-यापन कर रहे हैं ।

जागतिक लोगों के घर - गृहस्थी चलाने और हम लोगों के गृहस्थी चलाने में फर्क है । जन-साधारण मनुष्य प्रवृत्ति के मार्ग पर दौड़ रहा है, हम लोग निवृत्ति के पथ पर जा रहे हैं । जागतिक लोगों के साथ हम लोगों का विपरीत संबंध है। जगत-संसार में कोई भी आनन्द स्थायी नहीं है। उसके पीछे समय नष्ट न करके, जो आनन्द एवं शान्ति अनन्त काल स्थायी होती है, उसे प्राप्त करने के लिए हम लोग भजन साधन कर रहे हैं। परन्तु प्रारब्ध कर्म एवं कष्ट भोग तो सबको करना ही पड़ता है।

गृहिणी - प्रारब्ध कर्म किसे कहते हैं ?

मैं - जीव अनंत काल तक अनेकों अपराध (एवं अच्छे कर्म भी) करता आ रहा है। जिस कर्म फल के भोग करने के लिए मनुष्य जन्म होता है, उसे तो भोगना ही पड़ता है। उसे प्रारब्ध कहते हैं ।

गृहिणी - कौन से कर्म स्वेच्छा कृत हैं और कौन से कर्म प्रारब्ध कर्म हैं, इसे जानने का कोई उपाय है ?

मैं - जिस कर्म को मेरी करने की एकदम इच्छा नहीं है, फिर भी मुझे बाध्य होकर करना पड़ रहा है, उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। जैसे मेरी वकालती । संसार-निर्वाह के लिए मुझे इसे करना ही पड़ रहा है ।

गृहिणी - क्या इस प्रारब्ध को क्षय करने का कोई उपाय नहीं है?

मैं - **हर कार्य को उनकी प्रीति के लिए करने से एवं अविश्रान्त नाम करने से प्रारब्ध की तीव्रता कम हो सकती है परन्तु प्रारब्ध कर्म ''नाम'' करने में बाधा पहुँचाता है । सद्गुरु-दीक्षा के समय सद्गुरु संचित भोग का क्षय कर देते हैं ।**

गृहिणी - दीक्षा के समय सद्गुरु शिष्य के जिन पापों को ग्रहण करते हैं, उसके लिए उन्हें भोग करना पड़ता है ?

मैं - हाँ, वे समर्थ होते हैं। वे अल्प समय कष्ट भोग करके विशाल भोग का क्षय कर सकते हैं । साधारण गुरुओं के लिए यह संभव नहीं है। मैंने कई समय देखा है कि दीक्षा के समय गोस्वामीजी का मुखमंडल काला पड़ जाता था ।

गृहिणी - प्रारब्ध कर्म क्षय करते-करते ही प्राण पखेरू उड़ जायेंगे, ऐसा प्रतीत होता है ।

मैं - **गोस्वामीजी कहते थे कि पूरा प्रारब्ध कर्म तुम लोगों को भोगना नहीं पड़ेगा, परन्तु कुछ तो आँच (प्रारब्ध कर्म रुपी आग की जलन) लगेगी ही। उसमें अधैर्य होने से कैसे चलेगा ? इसलिए तुम सहिष्णुता का अवलम्बन करते हुए नाम करते रहो। थोड़े समय में अवश्य ही शान्ति की प्राप्ति होगी ।**

गृहिणी - साधन भजन करने के लिए इतना क्लेश उठाना पड़ता है। पहले नहीं जानती थी। बाकी सब लोग मौज से रहते हैं ।

मैं - फिर दूसरे लोगों की बातें कहती हो ? जागतिक लोगों के लिए घर-गृहस्थी लेकर जीवन बिताना ही लक्ष्य है। उनको आत्म-जिज्ञासा उत्पन्न ही नहीं हुई है। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाना पड़ेगा ? मनुष्य जीवन का परिणाम या उद्देश्य क्या है ? ये सब प्रश्न उनके मन में आते ही नहीं हैं। वे सोचते हैं, शरीर के साथ ही आत्मा का विनाश हो जाता है, अत: वे लोग सांसारिक सुख, जो कि अनित्य है, उसे पाकर उसी में मग्न हो जाते हैं। क्षणभंगुर देह को संभालने, सँवारने में जिन्दगी बिता देते हैं। परमात्मा के साथ जीवात्मा का एक संबंध है, ये सब बातें वे धारण ही नहीं कर सकते। कोई-कोई नास्तिकता को स्वीकार करते हैं। वे लोग आत्म-तत्व के बारे में कुछ नहीं जानते ।

जीव का स्वरूप है, नित्य कृष्ण दास ।
कृष्ण को भूलकर जीव अनादि बहिर्मुख ।
इसलिए माया उसे देती, संसार-दु:ख ॥

कभी स्वर्ग उठाती, कभी नरक में ले जाती ।।

दुष्टों को राजा जैसे, नदी में डुबाती ।

माया मुग्ध जीव को नहीं होता स्वत: कृष्ण ज्ञान ।। चैतन्यचरि.

जागतिक लोगों को सब समय सुख मिलता है। यह तुमने कहाँ देखा है बताओ ? आज आनन्द, कल हाहाकार । एक बड़ी आपदा आ जाये तो सहन करने की सामर्थ्य नहीं होती । जन्म-मरण रूप दु:ख उन्हें अनन्तकाल तक भोग करना ही पड़ता है । भगवत् ''नाम'' करके तुम्हें जो आनन्द प्राप्त होता है, उस सुख का एक कण भी क्या जगत-संसार में पाया जा सकता है ? सांसारिक सुख के परिणाम में यातनायें ही प्राप्त होती हैं । भगवत् उपासना में जो सुख होता है, उसके परिणाम में ''नित्य आत्मप्रसाद'' की प्राप्ति होती है ।

गृहिणी - तुम वृद्ध हो गये हो, वकालती करने की प्रवृत्ति भी नहीं है। क्षमता भी नहीं है। ऋण के कारण सब कुछ विक्रय होने की संभावना है। मैं पुत्र-कन्याओं को लेकर कहाँ जाऊंगी ? इतनी बड़ी घर-गृहस्थी का खर्च कैसे चलेगा ?

मैं - तुम इसके लिए चिन्ता क्यों करती हो ? प्रभुजी ने हम लोगों के परलोक का ही केवल भार ग्रहण किया है, ऐसी बात नहीं है । उन्होंने इहलोक का भी संपूर्ण भार लिया है । वे ही धक्का दे रहे हैं। गोद में भी वही उठायेंगे । हम लोगों को कोई अभाव नहीं रहेगा । थोड़ा स्थिर रहने की चेष्टा करो। सब कर्ज वगैरह की भरपाई हो जायेगी ।

गृहिणी - जब सब उनकी इच्छा से हो रहा है, तो हम लोगों की इस प्रकार की दुर्गति क्यों हो रही है ?

मैं - इस प्रकार न होने से प्रकृत धर्मप्राप्ति में विलम्ब होगा । हम लोग ऐश्वर्य-मद में भगवान को भूल न जायें, इसलिए वे हम लोगों के धन-मान सब हरण कर रहे हैं इसलिए इसके लिए उनके पास कृतज्ञता स्वीकार करो । यह करुणामय की विशेष करूणा समझना ।

गृहिणी - हमारे और भी तो अनेक गुरुभाई हैं; उन लोगों की तो इस प्रकार की दुर्गति नहीं हो रही है ।

मैं - थोड़ा बहुत दु:ख भोग सबको हो रहा है। सबका अलग-अलग तरीके से प्रारब्ध क्षय होता है । जिनको अभी यंत्रणा शुरु नहीं हुई है, समझना उनको बाद में भोगना पड़ेगा ।

गृहिणी - हम लोगों की जिस प्रकार की परिस्थिति हो रही है, उसमे मुझे अब और जीने की इच्छा नहीं है ।

मैं - इस प्रकार की बातें मत कहो । तुम जिसे आपदा समझ रही हो, वह हम लोगों की परम सम्पदा है । मनुष्य जन्म दुर्लभ है । केवल इसी जन्म में भगवत् आराधना का अधिकार प्राप्त होता है। बाकी अन्य योनियों में वह अधिकार नहीं है । भगवान की प्राप्ति के लिए देवता भी मनुष्य जन्म ग्रहण करते हैं । मनुष्य जन्म में जिसे सद्गुरु की प्राप्ति हो गई है, वह तो और भी भाग्यवान है । जितने दिन आयु है, नाम करते हुए जीवन को सार्थक करो । इस जन्म में यदि चित्त निर्मल न हो, वासना, कामनायें रह जायें तो पुन: जन्म ग्रहण करना पड़ेगा एवं फिर अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ेंगे । जो भोग होना है, वह इस जन्म में ही हो जाना अच्छा है, जिससे फिर जन्म न लेना पड़े । धैर्य का अवलंबन लेकर ''नाम'' करती रहो ।

गृहिणी - स्त्रियों की विधवा अवस्था की यंत्रणा सबसे दु:खदायी होती है, इसलिए तुम्हें रखकर मैं चली जाना चाहती हूँ ।

मैं - विधवा होकर जीना क्लेशकर है, इसमें संदेह नहीं। पर तुम आगे चली जाओगी तो मेरी क्या दशा होगी ? तुम घर-गृहस्थी का सब भार लेकर रहती हो, इसलिए मैं भगवान को पुकार सकता हूँ। कुछ देर तक नाम कर सकता हूँ । तुम्हारे अभाव में पूरे गृहस्थी का भार मेरे कंधे में आ जायेगा । जिससे मुझे नाम करने का अवसर भी नहीं मिल पायेगा । तुम नहीं जानती हो, मैं रोज तुम्हें मन ही मन प्रणाम करता हूँ। तुम हो, इसलिए मैं निश्चिन्त होकर ''नाम'' कर सकता हूँ ।

गृहिणी - तुम पुरुष हो। तुममें यथेष्ट धैर्य है। घर-संसार की इस संकट की घड़ी में मेरा धैर्य टूट रहा है, मैं चारों ओर अंधेरा देख रही हूँ।

मैं- विपदा के समय में विपद-तारणहार मधुसूदन ही हम लोगों का बल भरोसा हैं। उनका स्मरण करो, अविश्रान्त नाम करो, सब संकट कट जायेंगे ।

मैं अपनी धर्मपत्नी को अनेक प्रकार से प्रबोध देने लगा, परन्तु डिगरीदारों के अत्याचार, पड़ोसियों की कानाफूसी, विरोधियों का उल्लास, उनकी शत्रुता वगैरह की विभीषिका उसके कोमल हृदय में सहन नहीं हुई। धर्मपत्नी निराश हो गई। उसे दुश्चिन्ता से बहुमूत्र की पीड़ा आरंभ हो गई। मैंने चिकित्सा की व्यवस्था की परन्तु उसने कुछ दिन औषधि खाकर बंद कर दी, रोग क्रमशः बढ़ने लगा ।

दीक्षा के बाद से मेरी सुशीला (जो कि दीक्षा में माध्यम थी) के साथ इतने दिनों तक मुलाकात नहीं हुई थी। उसके पिता श्री रसिक कृष्ण घोष से मेरी विशेष मित्रता थी। उनका घर मेरे घर के निकट था। हम लोग बोलपुर की एक ही अदालत में वकालती करते थे। सुशीला तब बालिका थी, मित्र की कन्या को मैं अपनी कन्या के रूप में ही देखता था। वह देखने में बड़ी ही सुंदर थी। उसका स्वभाव भी मधुर था। उसके पिता का मैं मित्र हूँ। इस नाते से वह भी मुझे खूब श्रद्धा-भक्ति करती थी। कभी-कभी सुशीला मेरी पत्नी से मिलने मेरे घर में भी आती थी।

विवाह के बाद से सुशीला के साथ हम लोगों की मुलाकात विशेष नहीं होती थी। केवल दीक्षा के समय शान्ति-निकेतन में उसके साथ साक्षात् हुआ था। सुशीला के पति हेमेन्द्र बाबू भी धार्मिक एवं अत्यन्त चरित्रवान व्यक्ति थे। उनको विपथगामी करने के लिए कई लोगों ने अनेक चेष्टाएँ की थी, परन्तु वे सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गये थे। कई लोगों ने अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए लाखों रुपयों का प्रलोभन भी दिया परन्तु उन्होंने उसे तृणवत् त्याग दिया। वे अपनी जमींदारी की प्रजाओं का पुत्रवत् पालन करते थे। प्रजागण भी उन्हें अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति करते थे। वे सत्यनिष्ठ, न्याय-परायण, कार्यकुशल एवं कर्त्तव्य-परायण थे। साथ में वे अति धीशक्ति सम्पन्न एवं एक सुलेखक भी थे ।

सुशीला, हेमेन्द्र बाबू की योग्य पत्नी थी। वह भी अति पति-परायणा एवं धर्मानुरागिनी थी। इन लोगों ने युवावस्था में ही ब्राह्मधर्म ग्रहण कर लिया था । बाद में, ब्राह्म व्यक्तियों में अनाचार, विलासिता, संकीर्णता वगैरह देखकर उन लोगों ने ब्राह्म समाज परित्याग कर दिया था। भले ही वे दोनों ब्रह्मोपासना करते थे, परन्तु उनमें वैष्णव भाव प्रबल था ।

मैं मूर्तिपूजा एवं गुरुवाद का घोर विरोधी था । मेरे लिए गुरुकरण एक असंभव बात थी । सुशीला के माध्यम से मुझे अलौकिक रूप से दीक्षा मिली। उसका विवरण पाठकगण जान चुके हैं। इसलिए मैं सुशीला को विशेष श्रद्धा-भक्ति करता हूँ । मेरी पत्नी भी सुशीला को खूब स्नेह करती थी । सन् 1915 में उसने अपने पति-पुत्र के साथ कुछ दिन बोलपुर में वास किया था । मेरे मुँह से पत्नी के रोग की खबर सुनकर वह कई बार मेरे घर में आकर धर्मपत्नी को देखकर गई थी ।

मैं जिस कर्ज से जर्जरित था, गुरुकृपा से धीरे-धीरे सब चुका दिया गया। मेरी घर-गृहस्थी की अवस्था फिर धीरे-धीरे पूर्ववत् अच्छी होने लगी । जो लोग शत्रुता करने के लिए विपक्षी डिगरीदारों के साथ थे, उनका मुँह सूख गया । पड़ौसियों की भी काना-फूसी बंद हो गयी परन्तु धर्मपत्नी का रोग ठीक नहीं हुआ । सन् 1915 के अक्टूबर महीने में उसके कान में एक फोड़ा दिखाई दिया । साथ ही साथ उसे बुखार हो गया । एक तो डाईबिटीज की रोगी, फिर साथ में फोड़ा, मुझे आशंका हुई । डाक्टर ने आकर फोड़ा आपरेशन कर दिया। चिकित्सा चलने लगी परन्तु कुछ भी फायदा नहीं हुआ ।

अगहन की पहली तारीख को मैं शाम को हेमेन्द्र बाबू के यहाँ घूमने गया। घर में जाते ही सुशीला ने दौड़ते हुए आकर मेरी पदधूलि ली। बैठने के लिए आसन दिया एवं हाथ पाँव धोने के लिए जल व गमछे की व्यवस्था की। मैं पाँव धोकर, हाथ पाँव पोंछकर आसन में बैठ गया। सुशीला मुझे भक्तिभाव से श्री चैतन्य चरितामृत सुनाने लगी। मैं जब भी उसके वहाँ जाता, वह मुझे चैतन्य चरितामृत का एक अध्याय पाठकर सुनाती। उसके पिता रसिक बाबू परम वैष्णव थे। मैं उस भक्तिमती के मुख से भक्ति-शास्त्र श्रवण करके कृतार्थ हो जाता। हेमेन्द्र बाबू सामने बैठकर कठिन श्लोकों की व्याख्या करके उनका श्लोकार्थ समझा देते ।

पाठ समापन के बाद मैंने जलपान करके विदा ली । हेमेन्द्र बाबू कुछ दूर तक मेरे साथ-साथ आये। उसके बाद विदा लेकर अपने घर वापस लौट गये ।

संध्या के समय मैं घर में उपस्थित हुआ। नौकरों ने कहा कि मेरी पत्नी को देखने पड़ौस की कुछ स्त्रियाँ आई हुई हैं । मैं इस कारण घर

में न घुसकर पास में ही, वकील श्री हृषीकेश बाबू के साथ वार्तालाप करने लगा। थोड़ी देर बाद जोर से रोने की आवाज आई । मैंने दुर्घटना की आशंका जानकर जल्दी-जल्दी घर में आकर देखा कि धर्मपत्नी ने प्राण त्याग दिये हैं । उसके हास्य मुखमंडल में पवित्रता मूर्त्तिमयी होकर विराज रही है । चारों तरफ घर के लोग क्रन्दन कर रहे हैं ।

जो लोग सद्‌गुरु के शिष्य हैं, गुरु स्वयं उपस्थित होकर शरीर से उसकी आत्मा को बाहर ले जाते हैं । धर्मपत्नी के मुख में प्रफुल्लता अवलोकन करके मैंने समझ लिया कि गुरु-दर्शन से उसे इतना आनन्द हुआ है । चेहरा देखकर नहीं लगता कि यह शव का मुखमंडल है।

पत्नी की मृत्यु मेरे हृदय को बिल्कुल स्पर्श न कर सकी । उसके मुखमंडल की प्रसन्नता एवं पवित्रता देखकर मेरे अंदर भी उसी भाव का उदय होने लगा । अभी भी किसी समय मन हताश होने पर वही दृश्य मेरे सामने प्रतिबिंबित होकर मन को शान्त एवं निर्मल कर देता है ।

मेरी कन्या नवनलिनी दासी ने रोते-रोते माता को गोपीवेश में सुसज्जित कर दिया । उसके द्वादश अंग में तिलक बना दिये । नासिका में हरिमंदिर तिलक एवं ललाट में हरिनाम अंकित कर दिया । गले में तुलसी की माला पहना दी । पैर में महावर लगा दी । गृहिणी के उस गोपीवेश को देखकर मेरे अंदर प्रबल वेग से गुरुशक्ति जाग्रत हो गई । मेरे अंदर नाम का स्रोत द्रुत गति से प्रवाहित होने लगा। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। मैं सुबक-सुबक कर रोने लगा ।

मेरे क्रन्दन को देखकर लोग सोचने लगे कि मैं अपनी पत्नी के शोक में रो रहा हूँ किन्तु वह गलत था। वह एक स्वर्ग की अमृतधारा के समान थी। अनुभवी व्यक्ति ही इसके मर्म को समझ सकता है ।

मेरे रोने की आवाज सुनकर लोग मुझे सान्त्वना देने लगे । ये लोग मेरे अंदर की अवस्था न जानकर जागतिक भाव से मुझे समझाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। मैंने देखा कि नई समस्या खड़ी होने जा रही है। उससे मेरी गुरु शक्ति म्लान हो रही है। अतः मैं बलपूर्वक भाव को रोकने के लिए बाध्य हुआ ।

मेरी पत्नी ने रोग के समय सुशीला को कहा था कि थोड़ी अच्छी होने पर तुम्हारे घर जाऊंगी किन्तु वह रोग-मुक्त न होने से उसके घर न

जा सकी । अगहन की पहली तारीख को जिस समय मेरी पत्नी का देहान्त हुआ, ठीक उसी समय सुशीला ने देखा कि मेरी पत्नी अकेली उसके घर के बाहर के गेट से मकान के अंदर प्रवेश कर रही है । सुशीला अपने कमरे के अंदर बैठी थी । आराम से वह उसके कमरे की ओर आने लगी एवं घर के अंदर प्रवेश करके अदृश्य हो गई । सुशीला यह देखकर आश्चर्यचकित हो गई । मेरी पत्नी की बीमारी का संवाद वह तो जानती ही थी फिर इस दृश्य को देखकर उसे निकट भविष्य में होने वाली विपदा की आशंका होने लगी । हेमेन्द्र बाबू घर में आने के बाद उसने उनसे पूछा -

सुशीला - हरिदास बाबू की पत्नी का स्वास्थ्य कैसा है ?

हेमेन्द्रबाबू - मैं उनके घर तक नहीं गया, मुझे कोई संवाद मालूम नहीं है ।

सुशीला - मैंने हरिदास बाबू की पत्नी को घर के अंदर प्रवेश करते हुए देखा फिर वह अदृश्य हो गई। मुझे लगता है, उनका देहांत हो गया है ।

हेमेन्द्र बाबू - आज रात्रि हो गई है। कल संवाद लूंगा। उसके दूसरे दिन हेमेन्द्र बाबू ने मेरे घर में आकर मेरी पत्नी के देहांत की घटना सुनकर कहा कि जिस समय मेरी पत्नी का देहांत हुआ था, सुशीला ने उसी समय उसे अपने घर में देखा था ।

अद्वैत प्रभु का जन्मोत्सव

इस बार अद्वैत प्रभु का बीसवाँ महोत्सव था । ईस्वी 1915 के माघ की सप्तमी में अद्वैत प्रभु का जन्मोत्सव मनाया गया । इस साल धर्मपत्नी न रहने से शून्यता का अनुभव हो रहा था। कौन इतने बड़े उत्सव का आयोजन कर सकेगा ? मेरी सास आँखों से अश्रु-विसर्जन करते-करते तैयारी करने लगी । मैं रोग-शय्या में शामिल था। कालीकृष्ण सरकार एवं तिनकड़ि सरकार का शरीर भी ठीक नहीं था। उत्सव में काफी लोग आते हैं। हम लोगों के द्वारा उनकी परिचर्या करना संभव नहीं होगा, इस बार केवल पूजा एवं भोग देकर नियम की रक्षा करूंगा। ऐसा

सोचकर सास को उत्सव की तैयारी करने के लिए मना कर दिया । गायक, वादक, पुजारी इत्यादि सभी को जवाब दे दिया। वे लोग दुःखी होकर अपने-अपने स्थान में चले गये । कलकत्ता के गुरुभाइयों में भी इस संवाद का प्रचार हो गया । मेरी सास के मन में अत्यन्त कष्ट हुआ।

मेरी तरफ से उत्सव बंद हो गया परन्तु प्रभु की इच्छा दूसरे प्रकार की थी । उत्सव के चार दिन पहले संध्या के समय श्रीचन्द्रकान्त दत्त बरिशाल से आकर उपस्थित हुये । वे आकर बोले ''सुना हूँ, इस बार उत्सव नहीं होगा, इसे सुनकर गुरुभाई सब दुःखी हो गये हैं, उत्सव बन्द मत कीजिये, जो कुछ करना होगा, मैं करूंगा। आप निश्चिन्त रहिये। सब जगह निमंत्रण-पत्र भेज दीजिए।'' उसके दूसरे दिन सब जगह निमंत्रण पत्र भेज दिया गया । सास खूब आनंदित होकर पुनः उत्सव की तैयारी करने लगी। जल्दी-जल्दी सब सामान बाजार से ही खरीदा गया । सतीर्थ नीलरतन पाल एवं गौर किशोर गोस्वामी अचानक उपस्थित हो गये। गौर किशोर ने पूजा एवं भोग देने का भार सम्हाला । नये गायक एवं नये वादक का जुगाड़ हो गया । उत्सव सुचारु रूप से संपन्न हो गया।

सतीर्थ नीलरतन सरकार का घर बोलपुर से तीन कोस की दूरी पर था। उत्सव के दूसरे दिन नर-नारायण सेवा के बाद रात से नीलरतन पाल को उल्टी एवं दस्त होने लगे । उन्होंने कालीकृष्ण भाई के बैठक खाने में रहने की सुविधा जानकर वहाँ जाकर अपना आसन लगाया। मैं दवाई देने लगा। डायरिया ठीक हो गया परन्तु फिर हल्का बुखार शुरू हुआ । कालीकृष्ण सरकार, उनकी माता, चन्द्रकांत दत्त, गौर किशोर सभी प्राणापन से उसकी सेवा करने लगे । कालीकृष्ण स्वयं अपने हाथों से उसके मल-मूत्र की सफाई करने लगे । रोग का प्रकोप बढ़ने से सब कोई भयभीत हो गये। कालीकृष्ण ने नीलरतन बाबू से पूछा-

कालीकृष्ण - घर में आपकी स्त्री, कन्या एवं संबंधी लोग हैं। वे लोग आपके रोग की खबर नहीं जानते हैं, उन्हें संवाद दे देता हूँ ।

नीलरतन - उन लोगों को कोई संवाद देने की आवश्यकता नहीं है। वे लोग आकर मेरा क्या करेंगे ?

कालीकृष्ण - वे लोग आपको घर पर ले जायेंगे एवं इच्छानुसार सेवा एवं चिकित्सा कर पायेंगे ।

नीलरतन - यहाँ जिस प्रकार सेवा एवं चिकित्सा हो रही है, वैसी सेवा घर में होना संभव नहीं है। वहाँ केवल सांसारिक बातें एवं कोलाहल है । बहुत दिन हो गये। रोग की यातना भोग मैं कर रहा हूँ। अब ज्वर-विकार भी शुरु हो गया है। मेरे जीवन की आशा नहीं है । यहाँ परम शान्ति से हूँ। मुझे घर भेजकर संसार-यातना मत दीजिएगा । यहाँ मृत्यु होने पर परम शांति से मरूंगा ।

कालीकृष्ण - आपकी स्त्री, कन्या, स्वजन संबंधी सभी वर्तमान हैं। आपके प्रति उनका दायित्व भी है । यदि उनको संवाद न दिया जाय तो उनके समक्ष हमें दोषी होना पड़ेगा । वे ही आकर जो उचित समझें करेंगे, वही ठीक होगा ।

नीलरतन- आप लोगों को मेरा मंगल या कल्याण जिसमें हो वही करना उचित है या स्वार्थपर संबंधियों के हाथों मुझे सौंपकर सारे जीवन के लिए मेरा सर्वनाश करना उचित है ? आप लोग मेरी कल्याण कामना करते हैं। वे लोग केवल स्वार्थ के लिए घूमते रहते हैं। किसमें मेरा मंगल होगा, वे लोग एक बार भी चिन्ता नहीं करते ।

कालीकृष्ण - यदि आपकी संपत्ति वगैरह की कोई व्यवस्था करनी पड़े ?

नीलरतन - फिर आप क्यों वैषयिक चीजों की बातें कर रहे हैं ? अब क्या विषय या सांसारिक चिन्ता का समय बाकी है ? अनेक वर्षों तक कुटुबियों की गुलामी की है। अब घर-गृहस्थी या विषय की बातें कृपा करके मेरे सामने न कहें। ईश्वर की जो इच्छा हो, वही होगा ।

कालीकृष्ण जी ने नीलरतन बाबू को और कुछ नहीं बोला । नीलरतन बाबू की कठिन पीड़ा सुनकर उनकी स्त्री, कन्या एवं भतीजा कालीकृष्ण के घर आ पहुँचे । कालीकृष्ण की माता व स्त्री उन लोगों की देखरेख में लग गये। डाक्टरी चिकित्सा चलने लगी । हम लोग अब सब समय उनके पास रह न सके, इससे नीलरतन बाबू दुःखी हुए। मृत्यु से तीन दिन पहले नीलरतन बाबू ने मुझे उनके पास आने के लिए संवाद

भिजवाया। मैं उनके पास उपस्थित हुआ। उनकी स्त्री एवं कन्या पास ही बैठी थी । मुझे देखकर नीलरतन बाबू ने कहा -

नीलरतन- भैया ! अब तो मैं चलने के लिए प्रस्तुत हूँ ।

मैं - तुम चले जाओगे, यह तो बड़े भाग्य की बात है। गुरु स्वयं आकर तुम्हें, तुम्हारे देह पिंजर से बाहिर करके ले जायेंगे। पृथ्वी के इस पचड़े में तुम्हे नहीं रहना पड़ेगा इससे ज्यादा सौभाग्य की और क्या बात है? मैंने बहुत अपराध किया है, इसलिए अभी भी संसार-यातना का भोग कर रहा हूँ । इस जगह का परित्याग कर सकने पर ही बचाव है ।

नीलरतन - भैया, बड़े कुकर्म किये हैं। समय रहते भजन नहीं किया। इस अनुताप से दग्ध हो रहा हूँ ।

मैं - अग्नि जिस प्रकार स्वर्ण को दग्ध करती है, अनुताप-रूपी अग्नि भी मनुष्य के सब पापों को दग्ध कर उसे पवित्र कर देती है। ठीक-ठीक अनुताप आने पर भगवान के चरणार्विन्द में एक बूंद चक्षु-जल गिरने पर भी मनुष्य धन्य हो जाता है । भैया, साधन भजन करके कोई भी भगवान को नहीं पा सकता, उनकी कृपा ही हम लोगों का एक मात्र भरोसा है । सद्‌गुरु ने जब दीक्षा दे दी है तब समझना कि भगवान ने तुम्हें अंगीकार कर लिया, फिर यम का भी कोई अधिकार नहीं होता । भगवान में चित्त समाधान पूर्वक अविश्रान्त नाम करते रहो । खट्‌वांग राजा ने मुहूर्त्त मात्र में ईश्वर की प्राप्ति की थी ।

नीलरतन - खट्‌वांग राजा की पूर्व जन्म की तपस्या थी ।

मैं - तुम्हारी भी क्या तपस्या नहीं थी ? यदि नहीं थी तो तुम्हें सद्‌गुरु की प्राप्ति कैसे हुई ? अभी नाम का प्रवाह कैसे चल रहा है ? बताओ ?

नीलरतन - नाम का प्रवाह सुन्दर चल रहा है ।

मैं - तुम बड़े भाग्यवान हो। तुम बिना बुलाये ही अचानक बोलपुर आकर श्री अद्वैत प्रभु के उत्सव में सम्मिलित हुए। प्रसाद पाये। संकीर्तन श्रवण किये। सतीर्थों के साथ भगवत् चर्चाएं करके समय बिताया । जागतिक मलिनता तुम्हें स्पर्श नहीं कर पाई ।

नीलरतन - जब आप लोगों के पास आ गया हूँ, तब मैं समझ गया कि यह मेरे अनेक जन्मों की सुकृति का फल है । घर में रहने से मुझे बहुत कष्ट होता। **यहाँ मरने पर भी सुख है ।**

मैं - गृहस्थ की चिन्ता छोड़ दो। भगवान में चित्त स्थिर कर नाम करो । तुम्हारे मन में कुछ शुष्कता या भय हो रहा है ?

नीलरतन - मेरे मन में मरने से कोई डर या खिन्नता नहीं है, मैं बड़े सुख से प्रसन्न चित्त हूँ ।

मैं - अब मैं जाता हूँ। तुम एकान्त मन से नाम करते रहो ।

यह कहकर मैं नीलरतन बाबू के पास से चला आया । चिकित्सा से कुछ नहीं हुआ। अन्त में दो दिन बाद रात्रि 3 बजे गुरुभाई लोग मिलकर उनको नाम सुनाने लगे । मैं दुर्बल व्यक्ति हूँ। रात्रि जागरण में असमर्थ हूँ। इसलिए प्रातः काल वहाँ उपस्थित हुआ । जाकर देखा, नीलरतन बाबू की दीर्घ स्वाँसें चल रही हैं। मृत्यु में अब ज्यादा विलंब नहीं है, यह जानकर उनसे पूछा -

मैं - अभी कैसे हैं ?

नीलरतन - (धीरे-धीरे) कोई कष्ट नहीं है, केवल श्वाँस-प्रश्वाँस लेने में असुविधा हो रही है ।

मैं - नाम चल रहा है ?

नीलरतन -(सिर हिलाकर) हाँ, चल रहा है ।

मैं - सावधान, नाम मत छोड़ना अन्यथा ज्यादा कष्ट का अनुभव होगा ।

नीलरतन बाबू नाम करने लगे । सतीर्थ कालीकृष्ण वगैरह पास में बैठकर हरिगुणानुकीर्तन करने लगे । श्री अद्वैत प्रभु के उत्सव के ठीक 8 दिन बाद सबेरे 8 बजे नाम करते-करते पूर्ण चेतना के साथ आनन्दित मन से नीलरतन बाबू, नश्वर देह का परित्याग कर अमरलोक चले गये।

नीलरतन बाबू की स्त्री एवं कन्यागण हाहाकार करके रोने लगी । नीलरतन बाबू के भतीजे एवं स्वजन-कुटुंबी, गंगातीर में उनके मृतदेह को अंतिम संस्कार करने के लिए लेकर चले गये ।

चिंता-निर्वाण

मनुष्य स्वाधीनता, स्वाधीनता कहकर चारों ओर कोलाहल मचा रहा है, परन्तु असली स्वाधीनता क्या है ? वह समझ नहीं सकता । जब तक काम-क्रोध आदि रिपुगणों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ रहा है, दुष्प्रवृत्तियाँ जब तक हमें बंदर की तरह नाच करवा रही हैं, तब तक प्रकृत स्वाधीनता कैसे प्राप्त हो सकती है ?

जब तक सांसारिकता है, तब तक चिन्ता, भय, उद्वेग आदि रहते हैं। संसार क्षय होने से चित्त शुद्ध होता है । चित्त की मलिनता रहने से कृष्ण प्रेम का उदय होना कठिन है ।

कुकर्म न करने से या असत् संग का त्याग करने से पर्याप्त हो गया। यह सभी सोचते हैं। परन्तु जब तक कुचिन्ताएँ नहीं जाती हैं, तब तक समझना होगा, कुकार्य या कुसंग में आसक्ति है एवं हमारे द्वारा कभी भी गलत कार्य किये जा सकते हैं, अतः धर्मराज्य में कुचिन्ताओं, कुवासनाओं का परित्याग अत्यन्त आवश्यक होता है। मन में उदय होने के साथ ही साथ उनका बहिष्कार करना जरूरी है ।

लीला तत्व अत्यन्त दुर्लभ है । प्रेम प्राप्ति के लिए आमित्व का संपूर्ण त्याग जरूरी है । काम-क्रोधादि रिपुगणों का आधिपत्य; हिंसा, द्वेष, परनिन्दा, परचर्चा, लोभ, प्रतिष्ठा, धनैश्वर्य, स्त्री-पुत्रादि में आसक्ति इत्यादि रहने से प्रेम प्राप्त होना कठिन है। प्रेम प्राप्ति करने के लिए सर्वप्रकार की कामना-वासनाओं को छोड़ना पड़ता है । कुसंसर्ग एवं वृथा व मिथ्या बातों का परित्याग करना होता है।

सांसारिक सुख चाहना का लेशमात्र भी अंदर में रहते कृष्णप्रेम प्राप्ति नहीं होती। पार्थिव किसी सुख से जब तक मन में तृप्ति प्राप्त होगी, तब तक मन भगवान की ओर किस प्रकार से स्थिर हो सकता है ?

हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रहलाद को विद्याशिक्षा के लिए अपने गुरुपुत्र के पास भेजा। प्रहलाद ने मातृगर्भ में रहते समय देवर्षि नारद से भगवान का नाम प्राप्त किया था । वे गुरु-गृह में भी भगवान का नाम जप करते, कीर्तन करते। गुरुगृह में शिक्षा समाप्त होने पर पिता के पास उपस्थित होने पर हिरण्यकशिपु ने गोद पर बिठाकर प्रेम से उससे पूछा

कि बेटा, तुमने गुरुगृह में कौन सी उत्तम शिक्षा प्राप्त की ? प्रहलाद ने कहा - इस जगत में श्रीहरि के नाम कीर्तन एवं गुणगान के सिवा कोई उत्तम वस्तु नहीं है ।

यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने क्रोधान्ध होकर पुत्र को गोद से दूर हटाकर कहा कि तू नहीं जानता, मैं कौन हूँ ? मैंने सारे शत्रुओं को जय किया है। सारा त्रिलोक मेरे वशीभूत है। तू मेरे शत्रु का नाम उच्चारण करता है। मैं तुझे टुकड़े-टुकड़े करके काट दूंगा । तब प्रहलाद ने निर्भय चित्त से हाथ जोड़ कर कहा था - **पिताजी, काम, क्रोधादि रिपुओं की अपेक्षा प्रबल शुत्रु कोई और नहीं है, जब इन्हें आप जय नहीं कर सके हैं, तब आप कैसे बोल रहे हैं कि मैंने समस्त शत्रुओं को जय कर लिया है ? जब तक मन को वशीभूत नहीं कर पाये हैं, तब तक त्रिलोक वशीभूत मैंने कर लिया है, ऐसी वृथा डींग क्यों हाँक रहे हैं ?**

मनुष्य रिपुओं को वस्तुतः पूर्ण वशीभूत नहीं कर सकता । अपने उद्यम, चेष्टा द्वारा थोड़ा शान्त भले ही कर ले, परन्तु फिर समय एवं संयोग पाकर वे प्रबल वेग से पुनः आक्रमण कर सकते हैं । इनके हाथ से रक्षा पाने का उपाय एक मात्र भगवत् नाम ही है । नाम किस तरह करना है - महाप्रभु ने कहा है -

तृणादपि सुनीचेन, तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना, मानदेन, कीर्तनीय : सदा हरि : ।। (श्लोक)
उत्तम होकर अपने को माने तृणाधम ।
दो प्रकार सहिष्णुता करे वृक्ष सम ।।
वृक्ष जैसे काटने से कुछ नहीं बोलता ।
सूख जाने पर भी पानी नहीं माँगता ।।
जो उससे मांगता, उसे देता अपना धन ।
ग्रीष्म, वर्षा सहकर, करता दूसरों का पोषण ।।
उत्तम होकर वैष्णव, होगा निर अभिमान ।
जीव को सम्मान देगा, जानकर कृष्ण अधिष्ठान ।।
इस प्रकार से जो, कृष्ण नाम लेता ।
श्रीकृष्ण चरण में उसका प्रेम होता। (चैतन्य चरितामृत-अंत्यलीला-बीसवाँ परि.)

मैं पहले ही कह चुका हूँ, नाम करना बहुत कठिन है । पुरुषार्थ से नाम करते-करते मनुष्य निराश हो जाता है । कभी-कभी नाम में अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। यह एक संकटपूर्ण अवस्था है । उस समय ''साधू संग'' एवं शास्त्रपाठ के साथ धैर्य पूर्वक नाम करना पड़ता है । नाम करते-करते विश्वास उत्पन्न होता है। शुष्कता दूर होती है । साधन राज्य में सहिष्णुता का विशेष प्रयोजन है । नाम की कृपा प्रारंभ होने से फिर कोई चिन्ता नहीं रह जाती । गुरुशक्ति के बल से नाम सर्वदा ही होता रहता है, बाद में एक अवस्था आती है जब उसे बंद करना असंभव हो जाता है ।

मैं एक वकील हूँ। उच्च पदस्थ व्यक्ति हूँ। बुद्धिमान एवं धनवान कहकर लोग परिचय देते हैं । समाज में मेरा यथेष्ट मान-संभ्रम एवं प्रतिष्ठा है । मेरा प्रभाव एवं प्रताप भी कम नहीं है। कई लोग मेरे आज्ञाकारी हैं । मेरे अंदर ''तृनादपि सुनीचेन'' श्लोक का भाव आना असंभव है ।

गोस्वामीजी ने कई संकटों से मेरी रक्षा की है । महारौरव नरक से मेरे सिर की चोटी पकड़कर, अपने चरणों में लाकर स्थान दिया है । वे चाहते तो मुझे दुकान के संकट से उबार सकते थे। मुझे इतना कष्ट भी झेलना नहीं पड़ता। बाह्यत: देखा जाये तो मैंने उतना कोई गलत कार्य नहीं किया था जिसके लिये मुझे इतनी यंत्रणा भोग करनी पड़ी, परन्तु सद्-वैद्य रोगी के प्राणों की रक्षा के निमित्त उसकी इच्छा के विरूद्ध उसके शरीर में हुए फोड़े को बलपूर्वक चाकू से चीर देता है। रोगी कितनी भी विनती करे, पर वह उसकी नहीं सुनता । उसी प्रकार सद्-गुरु भी शिष्य की आत्मा में लगे आवरण को परिष्कृत करने के लिए ''निर्मम'' होकर अस्त्र-प्रयोग करते हैं। उसकी कातर प्रार्थना को भी उसी प्रकार नहीं सुनते । उसे आवश्यकतानुसार उसके हित के लिए दंड देते हैं ।

सद्गुरु, शिष्य के शत्रु नहीं हैं, परम हितैषी हैं । वे निष्ठुर नहीं हैं, दयावान हैं । कृष्ण प्रेम प्रदान करने के लिए उन्हे इतना आयोजन करना पड़ा । उन्होंने सुकौशल से चिता सजाकर, प्रज्वलित करके मुझे हाथ पैर बाँधकर उसमें फेंक दिया । मेरे कल्याण के लिए उन्हें कितना कुछ करना पड़ा ?

कोई-कोई यह भी कह सकते हैं कि मेरा यह संकट, मेरी अदूरदर्शिता, आलस्य या मूर्खता का परिणाम था । जो लोग अदृष्ट-वादी हैं, वे इसे अदृष्ट का लेखन कहेंगे । कर्मवादीगण इसे प्रारब्ध कर्म का भोग कह सकते हैं। **कोई कुछ भी बोले, मैं तो स्पष्ट यह कहूँगा कि यह गुरुदेव की विशेष करुणा है ।** वे इस उपाय का प्रयोग करके मेरे समान, दुर्दमनीय, अहंकारी, दंभी, व्यक्ति को सही रास्ते पर ले आये । जैसा कुत्ता होता है, उसे उसी प्रकार की लाठी की जरूरत होती है । पुलिस, बदमाशों को दंड के द्वारा ही, शासन करती है ।

मैं ''चितानल'' में दग्ध होने के समय समझ गया था कि किसी न किसी समय इसकी अग्नि शांत हो जायेगी । जितने दिन तक मेरा दुष्ट मन सही मार्ग नहीं पकड़ेगा, **जितने दिन लोगों के प्रति हेय भावना रहेगी, अपने बड़प्पन की भावना बनी रहेगी तब तक यह अग्नि नहीं बुझेगी ।** इस कारण धैर्य पूर्वक सब कष्टों को सहन करने लगा । इसके बाद दुष्टमन का दमन होने से, ईस्वी 1915 के अंत में इस दारूण चिता की अग्नि बुझ गई ।

पारिवारिक अशान्ति दूर हो गई। स्वजन संबंधियों से सद्भावना स्थापित हुई । विरोधी जमींदार लोगों के साथ मन-मुटाव मिट गया । फौजदारी व दिवानी मुकदमा हट गया। रुपया पाने वाले व्यक्तिगण, उनको उत्तेजित करने वाले मेरे विपक्षीगणों का परित्याग करके, समझौता कर लिये । उन लोगों ने मेरी दयनीय अवस्था देखकर काफी रुपये माफ कर दिये। मैंने अपने खेत, तालाब, बगीचा, कुछ जमीन आदि बेचकर एवं कई जगह से जो रुपये मुझे मिलने थे, उन्हे संग्रह करके, उन लोगों का समस्त कर्ज चुका दिया। शरीर यात्रा के निमित्त जितनी संपत्ति जरूरी है, वह भी रह गयी। किसी को कुछ कहना नहीं पड़ा। सब अपने आप हो गया। जो स्वप्न में भी नहीं सोचा था, वह संपूर्ण हुआ। मैं इन सब घटनाओं को देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

मेरी समस्त चिन्ता, उद्वेग, भय आदि दूर हो गये। अहंकार, अभिमान, प्रभुत्व, प्रतिपत्ति, मान-संभ्रम, प्रतिष्ठा सब चली गई थी। स्वयं संकट में गिर चुका था इसलिए लोगों का सम्मान करना सीखा। गर्व का नाश हो गया । इस पृथ्वी के सब धन, ऐश्वर्य, सुख-विलास अनित्य हैं,

इसका पूर्ण ज्ञान हुआ । इस उपाय से गोस्वामीजी ने प्रेम-भक्ति पाने के लिए मुझ पात्र को तैयार कर लिया । मेरे प्राणों की अवस्था एक दूसरे प्रकार की हो गई। मैं जैसे अन्य राज्य में वास करने लगा । प्रभु ने मुझे जैसे पहाड़ से गिराकर धूल में समा दिया ।

नव-जीवन की प्राप्ति

धर्मः स्वनूष्ठितं पुंसाम् विष्वक्सेन कथासुयः ।

नोत्पादयेत् यदि रतिम् श्रम एवहि केवलम् ।। - भागवत्

सूत ने कहा कि हे ऋषिगण ! अति प्रसिद्ध धर्म भी सुन्दर रूप में अनुष्ठित होकर, यदि ''श्रीहरि'' कथा में रति उत्पादन नहीं करे, तो वह केवल ''श्रम'' मात्र है ।

पाठकगण, आप लोगों ने अबतक मेरा पूरा परिचय पा लिया होगा । मैं जिस प्रकृति का मनुष्य हूँ, एवं मेरी जिस प्रकार की जीविका है, उसमें धर्मराज्य में प्रवेश पाना मेरे लिए असंभव था। गोस्वामीजी ने क्यों इतना घुमा फिराकर मुझे अपने चरणों में ले लिया ? यह मैं समझा नहीं सकता। यह बात सत्य है। ''कृपा'' योग्य-अयोग्य का विचार नहीं करती इसलिए उन्होंने दया-परवश होकर मेरी रक्षा की एवं मुझे नरकाग्नि से बाहर निकाला ।

प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने स्वभाव या प्रकृति को लेकर जन्म ग्रहण करता है । जिसकी जो प्रकृति है, वह नहीं बदलती । एक मात्र सद्गुरु की कृपा से ही प्रकृति में परिर्वतन हो सकता है । कहा भी गया है ''कोयला का मयला छूटे जब आग करे प्रवेश''। कोयले का स्वाभाविक रंग काला है किन्तु अग्नि के संयोग से वह भी रंग बदलने में मजबूर हो जाता है । मनुष्य कितना भी नारकी क्यों न हो ? सद्गुरु की कृपा होने से देव-दुर्लभ अवस्था की प्राप्ति कर सकता है । मैं दृढ़ता के साथ बोल रहा हूँ कि मनुष्य जन्म पाकर हताश होने की आवश्यकता नहीं है। कोई कितना भी नारकी क्यों न हो ? सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करे, निश्चय ही उसका जीवन मधुमय हो जायेगा ।

जिस प्रकार बीज नहीं सड़ने से अंकुर उत्पन्न नहीं होता। उसी

प्रकार मनुष्य का अहंकार नाश न होने से धर्मप्राप्ति होना असंभव है। जीवन्मृत होना पड़ेगा । इन्द्रिय गण की लालसा, संसारिक सुख की वासना इत्यादि रहते धर्मजीवन प्राप्त करना कठिन है ।

मेरे भीतर एक भयावह जंगल था। उस अरण्य में काम, क्रोध आदि भीषण दानव-दैत्य, पिशाचों की आवास भूमि थी । वहाँ विषय-वासना, इन्द्रिय-लालसा आदि विविध बड़े-बड़े वृक्ष उत्पन्न हुए थे । हिंसा-द्वेष, मात्सर्य, दूसरों की मलिनता ही देख सकना इत्यादि विविध विषधर सर्प उस अरण्य में विचरण करते थे । दम्भ, अहंकार रूपी सिंह, शेर, भालू आदि हिसंक जानवर भयानक गर्जन करते हुए उस वन में भ्रमण करते थे। किसकी क्षमता है जो उस वन के पास जा सके ?

सद्गुरु के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है । कोयले को आग में डालने के समान मुझे भी अग्नि में डाल दिया गया। मेरे प्राण कठिन हैं, सहज में मृत्यु नहीं होगी, इसलिए दीर्घसमय तक मुझे दग्ध होना पड़ा। आग को बुझाने की बहुत चेष्टा की। परन्तु किसी भी प्रकार से कृतकार्य न हो सका । इस अग्नि ने मुझे ही सिर्फ नहीं जलाया, साथ ही साथ उस भीषण अरण्य को भी जलाने लगी। उसमें स्थित सिंह, शेर आदि पशु, दैत्य, पिशाच आदि सबकुछ जलकर भस्म हो गये । वृक्ष, लता, कन्टक आदि किसी का नामो निशान तक न रहा । गोस्वामीजी ने खाण्डव वन दाह कर दिया। किसकी शक्ति है जो इसे बुझा सके ? चिताग्नि मुझे भस्मावशेष में परिणत कर, अपने आप बुझ गई ।

भगवान ने प्रत्येक मनुष्य के अंदर दया, धर्म, परोपकार, परदुःख कातरता, प्रेम आदि अच्छी वृत्तियों के बीज रोपन कर रखे हैं । मेरे अंदर घना जंगल, कन्टकाकीर्ण होने के कारण यह बीज अंकुरित नहीं हो सका। मैं परिवर्तित हो गया हूँ। वृक्षों के भस्मावशेष खाद का काम कर रहे हैं। गुरु कृपा करके अविश्रान्त श्रवण कीर्तन रूपी जल वर्षण कर रहे हैं। क्रमशः वनभूमि उत्कृष्ट उर्वरा भूमि में परिणत हो गई।

दया, परोपकार, परदुःख कातरता, प्रेम आदि साधूवृत्ति इत्यादि के जो सब बीज मेरे अंदर निहित थे, वे अनुकूल वातावरण पा कर अंकुरित होकर सुन्दर वृक्ष में परिणत हो रहे हैं। इसी बीच किसी किसी में फूल उगना प्रारंभ हो गया है । फूल की शोभा एवं सुगंध चारों तरफ

फैल रही है । कन्टकाकीर्ण भीषण अरण्य अब नन्दनकानन में बदल रहा है । गोस्वामीजी के समान माली मैंने कभी नहीं देखा । जो एकदम असंभव था, उसे कार्य रूप में परिणत करके दिखा दिया ।

सद्गुरु ने कृपा करके इस जंगलभूमि में जो भक्ति रुपी लता का बीजारोपण किया था, वह बीज अंकुरित होकर बगीचे के अंदर सुन्दर लता के रूप में फैलने लगा। उस लता के पौधे की वे यत्नपूर्वक रक्षा कर रहे हैं । श्रवण, कीर्तन रूपी जल से उस लता को सिंचित कर रहे हैं । लता के पास लोभ, प्रतिष्ठा इत्यादि कोई उपशाखा का उद्गम न हो, इसलिए उन्होंने विशेष सतर्कता का अवलम्बन किया है । लता दिन प्रतिदिन परिवर्धित हो रही है । समय होने पर यह श्रीकृष्ण चरण रूपी कल्प-वृक्ष से जकड़ नहीं जायेगी, ऐसा कहा ही नहीं जा सकता अपितु मुझे संपूर्ण विश्वास है कि यह लता उपयुक्त समय में प्रेम-फल उत्पन्न करेगी। मैं इसका आस्वादन करके कृतार्थ होउंगा ।

सद्गुरु अनन्त हैं। उनकी लीला भी अनन्त है। लीला समाप्त नहीं हुई है। लीला अनन्त काल तक चलेगी । गोस्वामीजी की लीला वर्णन करूँ, इस प्रकार की मेरी इच्छा तथा सामर्थ्य भी नहीं है । मेरे इस अल्प जीवन की कुछेक दिन की लीला का किंचित् मात्र अंश पाठक-पाठिकाओं को उपहार दे रहा हूँ । गोस्वामीजी के हजारों शिष्य हैं। प्रत्येक के जीवन में उन्होंने अनन्त रूप में लीला की है एवं कर रहे हैं । ये सब लीलाएँ जन-साधारण लोगों में प्रकाशित नहीं हुई हैं क्योंकि कोई भी अपने जीवन की घटनायें बाहर व्यक्त नहीं करना चाहता ।

किसी-किसी गुरुभाई के विशेष अनुरोध से मैंने मेरे जीवन में गोस्वामीजी की लीला जो हुई, उस का एक आभास दिया ।

मैं अब इतना लिखकर अपनी लेखनी को विराम देता हूँ । पाठकगणों से विनीत निवेदन है कि वे निरपेक्ष भाव से मन लगाकर इस ग्रन्थ को सम्पूर्ण पढ़ें । इस ग्रंथ को पाठ कर यदि किसी का थोड़ा भी उपकार हो तो मैं अपना श्रम सार्थक हुआ, ऐसा समझूँगा ।

इतने बड़े ग्रंथ में कुछ त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। इस कारण मैं अवनत मस्तक होकर प्रार्थना करता हूँ कि पाठकगण मुझे क्षमा करें - इति -

परिशिष्ट

श्री हरिदास वसुजी ने बंगला में एक और किताब लिखी थी जिसका नाम **''सद्गुरु साधन तत्व''** है। उस पुस्तक से उनके द्वारा लिखित कुछ लेखों का, जिसमें उन्होंने अपने मौलिक विचार अनूठे ढंग से व्यक्त किए है, हिन्दी में अनुवाद करके प्रकाशन किया जा रहा है। सद्गुरु ने विभिन्न भक्तों पर किस प्रकार से कृपा की है ? इस संदर्भ में भी उनके द्वारा लिखित कुछ प्रसंगों का उल्लेख किया जा रहा है। आशा है पाठक भक्तगण इससे लाभान्वित होगे -

अनुवादक

भक्तों के प्रसंग

नव-नलिनी

मेरी तीसरी कन्या नवनलिनी ने सात वर्ष की उम्र में गोस्वामीजी से दीक्षा ली थी । नाम मिलने के बाद उसके शरीर में अनेक प्रकार के भावों का विकास देखा गया । नाम करते-करते उसकी चेतना लुप्त हो जाती। कभी संकीर्तन में इतने वेग से नृत्य करती थी कि उसे रोकना मुश्किल होता। कभी-कभी वह गिर भी जाती थी। इसलिए उसके भावावेश के समय उसके गहने वगैरह खोल दिए जाते थे ।

हुगली जिला में अमरनाथ मित्र के साथ उसका विवाह हुआ था । ससुराल में उसके भाव को लोग समझ न सके और ''मूर्च्छा रोग'' समझकर उसकी अनेक प्रकार की चिकित्सा कराने लगे, परन्तु उससे उसको कोई लाभ न हुआ ।

श्री अद्वैतप्रभु के उत्सव में बोलपुर में मेरे घर में हर साल उत्सव होता था । एक बार उत्सव के समय वह आई थी। वहाँ जब उसका भावावेश हुआ तब मैं घर के अंदर जाकर उसे देखने गया । मैंने नलिनी, नलिनी कहकर उसे बुलाया परन्तु कोई उत्तर मुझे न मिला। उसे धक्का लगाकर भी देखा, परन्तु उसे कोई बाह्य चेतना न थी । उसकी आँखें बंद थी। एक पलंग पर कर-मुद्रा करके बैठी थी । वह क्रमागत, हा कृष्ण, करूणा सिंधो, दीनबंधु जगत्पते, गोपेश गोपिकाकान्त राधाकान्त नमोस्तुते, हरि बोल, हरिबोल, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे-राम राम राम हरे हरे'' इत्यादि मुख से उच्चारण करती जा रही थी, रूकती न थी ।

मैंने अपने साधनशील गुरुभाई एवं भग्नियों के द्वारा उसकी अनेक प्रकार से जाँच कराई । उन्होंने कहा कि यह हिष्टीरिया नहीं है। इसके भीतर नाम चल रहा है, धीरे-धीरे प्राणायाम भी हो रहा है । हम लोगों का विश्वास है कि यह गुरुशक्ति की क्रिया है । रोग होने से ऐसा नहीं होता। करीब तीन घंटे बाद उसको चेतना हुई । मैं निश्चिन्त हुआ ।

एक बार नलिनी ने ससुराल में अपने पति के साथ किसी बात में अभिमान होने से बालिका स्वभाव के कारण आत्महत्या करने के मतलब से रात को अफीम खा ली । सुबह जब वह नींद से न उठी तब अनेक प्रकार से कोशिश करने से थोड़ी चेतना आने पर वह बोली कि मैंने अफीम खा ली है । उसके पति ने उससे पूछा कि ऐसा तुमने क्यों किया? पर वह उत्तर न देकर पुन: बेहोश हो गई ।

उसके पति ने बाजार जाकर दुकान से लायी गई उल्टी करने की दवाई वगैरह खिलाकर उसे स्वस्थ किया। पूर्ण स्वस्थ होने में उसे तीन दिन लग गये। नलिनी ने कहा था, जब वह बेहोश हो गयी थी, उस समय उसने नरक का दर्शन किया था। जिसमें कुछ व्यक्ति जिनका गला कटा हुआ था, देखने में वीभत्स थे। उनके शरीर से रक्त बहा जा रहा था। कुछ व्यक्ति जमीन में गिरकर छटपटा रहे थे। चील एवं गीध आकर उनकी जीवित अवस्था में ही चोंच से नाड़ियाँ वगैरह निकाल रहे थे। किसी की आँख को निकाल रहे थे। किसी के हाथ पाँव के माँस वगैरह नोच कर खा रहे थे ।

किसी-किसी स्थान में विष्ठा से भरे हुऐ बड़े-बड़े कुंडों में यमदूतगण, जिनकी आकृति भीषण थी, कुछ लोगों को बार-बार डुबा रहे थे और निकाल रहे थे। किसी स्थान में बड़े-बड़े अंकुशों से यमदूतगण व्यक्तियों पर प्रहार कर रहे थे एवं वे लोग यंत्रणा से चीत्कार कर रहे थे। कोई अग्नि में छटपटा रहा था एवं दुर्गंध बाहिर आ रही थी। कहीं गर्म तेल की कढ़ाई में मनुष्यों को यमदूतगण फेंक रहे थे । इस प्रकार के विविध भयावह दृश्य देखकर वह घबड़ा गई। उसका हृदय जोर-जोर से कंपन करने लगा। उसी समय उसने उसी अवस्था में देखा कि सामने गोस्वामीजी खड़े हैं। हाथ में दण्ड, कंमडल, मस्तक में जटा एवं गेरुवा वसन पहने हैं । उन्होंने कहा कि नलिनी अपराध करने से क्या सजा मिलती है ? वह तुम देख रही हो ? डरो मत, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी ।

नलिनी ने गुरु को सामने देखकर एवं उनकी अभय वाणी सुनकर प्राणों में शान्ति प्राप्त की एवं उन्हे प्रणाम करके प्रार्थना की, ''प्रभु, यह दृश्य अब मैं देखना नहीं चाहती, मेरे शरीर में कंपन हो रहा है।'' उसके बाद ही उसकी चेतना धीरे-धीरे वापस लौटी ।

नलिनी आत्महत्या रूपी अपराध कर रही थी, गोस्वामीजी ने उसकी रक्षा की एवं नरक का दृश्य दिखाकर उसे चेतावनी दी कि इस प्रकार आत्महत्या करने से विषम दुर्भोगों को भोगना पड़ता है ।

आनन्द चन्द्र मजूमदार

भक्त आनन्दचन्द्र एवं उनकी धर्मपत्नी गोस्वामीजी के शिष्य थे । वे अपने छोटे पुत्र एवं कन्या के साथ कुमिल्ला (बंगला देश) में एक कम वेतन की नौकरी करके जीविका चलाते थे ।

एक बार वे रोग से पीड़ित होकर अपने कमरे में सोये हुए थे । उस समय बंगाल देश में काफी आँधी-बरसात होने लगी । जिस कमरे में आनन्दचन्द्र सोये हुए थे, वह घर नष्ट होने से उनकी स्त्री उन्हें एवं अपने बच्चों को लेकर दूसरे कमरे में चली गई । परन्तु आँधी के प्रबल वेग से उस कमरे की छत भी हवा से उड़ गई । घर में और कोई दूसरी जगह नहीं थी, जहाँ जाकर वे लोग आश्रय ले सकें । निकट में कोई परिचित घर भी नहीं था, जिसमें जाकर वे अपने प्राण बचा सकें ।

उनकी पत्नी ने उन से कहा कि अब हम क्या करें ? अब तो हमारी इसी अवस्था में मृत्यु हो जायेगी । हमारे प्राण किस प्रकार से बचेंगे ? तब उनके पति आनन्द चन्द्र ने कहा कि अब हमें कुछ करने की जरूरत नहीं है । गुरु को पुकारो। यदि उनकी इच्छा होगी तो जीवन की रक्षा हो सकती है अन्यथा उनका स्मरण करते-करते प्राणों का त्याग हो जायेगा । वे ही हमारी एकमात्र रक्षा करने में समर्थ हैं । तब सब मिलकर प्रार्थना एवं नाम जप करने लगे । अचानक उन्हें, गोस्वामीजी के दर्शन मिले। वे सामने खड़े थे। उनकी जटायें हवाके प्रबल वेग से उड़ रही थी, एवं जटा के अग्रभाग से जल की धारा गिर रही थी । उन्होंने इन्द्र देवता एवं पवन देव के प्रति तीव्र कटाक्ष किया । वे लोग वहाँ आकर उन्हें प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे । चारों ओर वर्षा की प्रबल धारा गिरने लगी परन्तु मजूमदारजी जिस छत विहीन कमरे में खड़े थे, वहाँ एक बिन्दु वर्षा भी नहीं हुई एवं हवा का कोई वेग भी उन्हें महसूस नहीं हुआ । मजूमदारजी सपरिवार सुरक्षित रहे ।

लेखक को इस प्रकार की अनेक घटनायें मालुम हैं परन्तु इस अविश्वास के युग में ज्यादा लिखना मैं उचित नहीं समझता । इस घटना से आपको सद्गुरु की महिमा का आभास होगा ।

अध्यात्म राज्य बहुत ही दुर्बोध्य है । हम लोग इस जगत में जो घटनायें घटित हो रही हैं, उसका भी पूरा-पूरा कारण समझने में असमर्थ होते हैं, अतः इन सब घटनाओं में पूर्ण विश्वास होना कठिन ही है ।

हरकान्त बनर्जी

हरकान्तजी फैजाबाद में सहायक सिविल सर्जन थे । एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक छोटा सा शालग्राम मुख खोलकर बोल रहा है कि तुम मेरी सेवा नहीं करते हो ? निद्राभंग होने पर उन्होंने अपनी पत्नी को कहा-

हरकान्त - आज मैंने एक मजेदार स्वप्न देखा ।

धर्मपत्नी - कैसा सपना ?

हरकान्त बाबू- एक छोटे से शालग्राम आकर मुख खोलकर कह रहे हैं कि मेरी सेवा नहीं करते हो ?

धर्मपत्नी - आप ब्राह्मण वंश के हो। शालग्राम जी ने कृपा करके दर्शन दिया है। आपको शालग्राम जी की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।

हरकान्तजी* पहले ब्राह्मसमाज से जुड़े हुए थे। साकार पूजा आदि में उन्हें कोई रूचि नहीं थी। बाद में गोस्वामीजी से इन्होंने दीक्षा ली थी। इस घटना के करीब एक सप्ताह बाद, वे अपनी बैठक के कमरे में बैठे थे। उसी समय उन्होंने देखा कि एक वैष्णव एक क्षुद्र शालग्राम शिला (जैसा उन्होंने स्वप्न में देखा था), सिंहासन के साथ उनके घर के सामने से हाथ में लेकर जा रहे हैं । तब उन्होंने उनसे पूछा-

हरकान्त - आप इस शालग्राम को कहाँ ले जा रहे हैं ?

वैष्णव - इसकी सेवा करने वाला कोई नहीं है।

---

* हरकान्तजी, श्रीमत् कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी के बड़े भाई थे । इनकी अनेक घटनाएँ ब्रह्मचारीजी लिखित ''श्री श्रीसद्गुरु संग'' नामक पुस्तक में हैं ।

अतः इसे किसी अखाड़े या मंदिर में देने जा रहा हूँ ।

हरकान्त जी - मुझे दे सकते हैं ?

वैष्णव - लीजिए ।

हरकान्त जी - कितने रूपये लोगे ?

वैष्णव - मैं तो इसे अखाड़े में देने जा रहा था। आप यदि सेवा करना चाहते हैं तो खुशी से लीजिए। मुझे कुछ देने की जरूरत नहीं है।

यह कहकर उस वैष्णव ने सिंहासन के साथ वह शालग्राम हरकान्त जी के हाथ में दे दिया । हरकान्तजी ने उस शालग्राम शिला को बैठक खाने की एक कुलंगी में रख दिया एवं अपनी पत्नी को सब बातें बतायी। उनकी पत्नी बहुत खुश हुई एवं बोली कि अब भक्तिभाव से इनकी पूजा करते रहना ।

हरकान्तजी नहाने के बाद प्रतिदिन केवल एक तुलसी-पत्र शालग्राम को अर्पण करते थे । इसके अलावा न कोई पूजा-उपकरण रखते और न मंत्र वगैरह ही पाठ करते थे । कभी-कभी भूल भी जाते थे। किसी दिन भोजन करने के बाद याद आता कि आज तो पूजा नहीं हुई, तब एक तुलसी-पत्र इष्ट नाम करते हुए शिला को अर्पण कर देते । कभी भोजन करने के बाद अस्पताल जाने के लिए पैन्ट पहन रहे हैं, तब याद आया कि शालग्राम की पूजा नहीं हुई है, तब नौकर को बोलते, ''जा, एक तुलसी-पत्ता तोड़ कर ला।'' नौकर द्वारा तुलसी पत्र हाथ में देने से उसे धोकर वे शालग्राम शिला पर चढ़ा देते और अस्पताल चले जाते । कुछ दिन इसी प्रकार से ही शालग्राम की सेवा-पूजा चलने लगी ।

हरकान्त बाबू को फिर एक दिन स्वप्न में शालिग्राम ने आकर कहा- अद्भुत सेवा पूजा कर रहे हो। किसी दिन एक तुलसी पत्र देते हो, किसी दिन वह भी नहीं मिलती। एक बताशा भी तो साथ में दे सकते हो? स्वप्न देखकर उन्होंने अपनी पत्नी को सब वृतान्त कहा। तब उनकी पत्नी ने कहा कि शालग्रामजी तो ठीक ही कह रहे हैं। जब आपने सेवा हाथ में ली है; तब ठाकुरजी को उपवासी नहीं रखना चाहिये ।

स्त्री की बात को सुनकर हरकान्तजी ने नौकर को कहा कि एक सेर छोटे-छोटे बताशे खरीद कर ला । नौकर ने बताशे खरीदकर उनके

हाथ में दिये । हरकान्त जी ने शालिग्राम के पास में एक दूसरी कुलंगी में बताशे रख दिये । रोज पूजा के समय अब वे एक बताशा शालिग्राम को भोग लगाने लगे ।

हरकान्तजी में पहले हिन्दू-आचार विचार कुछ नहीं था। यद्यपि वे चरित्रवान एवं सरल व्यक्ति थे। बाद में दीक्षा लेने से धीरे-धीरे आचार, विचार का पालन करने लगे । कभी-कभी उनके मित्रगण आकर घर में निमंत्रण खाने की जिद करते। अतः रसोइया के द्वारा एक बार उन्होंने मित्रों को बुलाकर पूड़ी, कचौड़ी, मालपूआ एवं विविध व्यंजनों की दावत खिलाई । रात्रि मे उन्होंने स्वप्न में देखा कि शालिग्राम अभिमान करके बोल रहे हैं कि घर में इतने बड़े निमंत्रण का आयोजन किया गया। कितने लोगों ने खाया ? नौकर तक बाकी न रहे, और मुझे कुछ भी नहीं दिया।

पत्नी को यह बात बोलने से उन्होंने कहा कि आपने बहुत बड़ी गलती की। ठाकुरजी को बिना भोग लगाये इस प्रकार का कार्य नहीं करना चाहिए था । कुछ दिन बाद हरकान्त जी का भान्जा वहाँ आया। हरकान्त जी को छुट्टी मिली। भान्जे को हिन्दूधर्म के प्रति आस्था थी। अतः वह बड़े प्रेम से पूजा-पाठ, मंत्र, स्त्रोत वगैरह के साथ शालग्राम की पूजा करने लगा।

कुछ दिन बाद घर में किसी उपलक्ष में फिर खूब बड़े निमंत्रण का आयोजन हुआ। मित्रों ने खूब छककर भोजन किया । रात्रि को हरकान्त जी को स्वप्न में फिर शालग्राम ने आकर कहा- जैसा मामा-भान्जा भी वैसा। घर में इतने प्रकार के व्यंजन बने । सब ने खाये, मुझे किसी ने कुछ नहीं दिया। उनकी पत्नी ने यह बात सुनकर कहा कि आप को कुछ याद नहीं रहता । ठाकुरजी को घर पर रखकर भी भोग वगैरह नहीं देते हो। यह बड़ा ही अपराध है । भविष्य में ऐसा कार्य मत करना ।

धीरे-धीरे हरकान्त जी के मन में परिवर्तन हुआ एवं अंदर में भक्ति एवं वैराग्य वर्द्धित होने लगा। फिर वे बड़े साधननिष्ठ, साधु-सेवी, भक्त बन गये एवं बड़ी निष्ठा के साथ शालग्रामजी की सेवा करने लगे थे ।

बहुत दिन बाद उन्होंने एक और विचित्र स्वप्न देखा कि वे घर से अस्पताल जा रहे हैं। उसी समय एक पहलवान उनके सामने आकर कह रहा है कि मेरा पैसा तुम वापस करो ।

हरकान्तजी - कौन सा पैसा ? मैंने किसी से पैसा नहीं लिया है।

पहलवान - तुमने मुझसे पाँच पैसा लिया था, यह देखो रसीद ।

यह कहकर उसने एक रसीद दिखलायी, उसे देखकर वे खूब डर गये एवं कांपने लगे। इसी समय निद्रा भंग हो गई । हरकान्त जी ने कभी भी असत् उपाय से अर्थार्जन नहीं किया था, किसी से कभी रिश्वत भी नहीं ली थी। वे बड़े नीति-परायण व्यक्ति थे।

हरकान्त जी को, इस प्रकार का कोई कर्ज किसी से लिया हो, यह स्मरण नहीं हुआ। उन्होंने गोस्वामीजी को पत्र लिखा । पत्रोत्तर में उन्होंने लिखकर भिजवाया कि स्वप्न यथार्थ है। समय एवं दिन भी बताया जा सकता है। कहीं मन्दिर आदि में कुछ दान कर दें ।

बाद मे पता चला था कि एक व्यक्ति के पास से उन्होंने पाँच पैसे का पान-सुपारी वगैरह कुछ लिया था। वह व्यक्ति मर गया था। उसका कोई उत्तराधिकारी भी नहीं था ।

ऋण-ग्रस्त व्यक्ति यदि ऋण बिना चुकाये ही शरीर त्याग देता है तो उसे परलोक में यंत्रणाऐं भोगनी पड़ती हैं इसलिये हमारे शास्त्रों में कर्ज लेकर उसे परिशोध न करने को ''पाप'' कहा गया है । इस दृष्टान्त से हमें यह शिक्षा मिलती है कि ऋण लेकर उसका प्रतिशोध न करना, ठीक नहीं है ।

हरकान्त जी का अंतिम जीवन जगन्नाथपुरी में गोस्वामीजी की समाधि स्थान में बीता । दिवारात्रि भजन-पूजन में मग्न रहकर वहीं नश्वर देह का उन्होंने त्याग किया ।

भक्त कैलाशचन्द्र

ई. 1919 में मैं गोस्वामीजी के जन्मोत्सव के उपलक्ष में कलकत्ते गया था । वहाँ श्री हेमेन्द्र मित्र जी अलीपुर के पब्लिक प्रॉसिक्यूटर थे। हर साल उनके यहाँ यह उत्सव होता है । वहाँ एक तालाब में नहाने से मुझे अचानक मलेरिया हो गया। इसलिए मुझे मेरे गुरुभाई श्री अतुल चन्द्र सिंहजी के घर में कुछ दिन रहना पड़ा ।

मैं सुबह 7 बजे अपने पलंग पर लेटा हुआ था । मुझे अस्वस्थ जानकर कैलास बसु जी, जो कि गोस्वामीजी के ही शिष्य थे, देखने आये । वे चांदसी, बरिशाल के रहने वाले थे । मेरे पलंग पर ही बैठकर उन्होंने मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा। फिर मेरे शरीर में हाथ फेरने लगे एवं सत्चर्चा करने लगे । उसके बाद वे वहीं बैठकर मन ही मन नाम जप करने लगे । नाम स्मरण करते-करते वे संपूर्ण बाह्यज्ञान रहित हो गये। वे पलंग से गिर न पड़ें, इसकी मुझे चिन्ता होने लगी । मैंने उन्हे पलंग से हटाकर किसी अन्य अच्छी जगह में बिठाने की कोशिश की परन्तु मैं उन्हे स्थानांतरित न कर सका । तब मैंने सोचा कि वे नामानन्द में हैं, नाम (गुरु) ही उनकी रक्षा करेंगे ।

दोपहर का एक बज गया, उनकी स्त्री एवं परिवार के लोग उनकी प्रतीक्षा में बिना खाये पीये इंतजार करते रहे । शाम के 4 बज गये, तब भी उन्हें चेतना नहीं आयी । उस समय भक्त सुरेन्द्रनाथ एवं 1-2 गुरुभाई भी आकर वहाँ उपस्थित हो गये । संध्या होते देख उनकी धर्मपत्नी कैलाशबाबू को सचेतन करने के लिए सबसे अनुरोध करने लगी । सुरेन्द्र बाबू ने उनके कान के पास बहुत देर तक नामोच्चारण किया फिर भी चेतना न लौटी। फिर वे मधुर कण्ठ से वाद्य के साथ भजन संकीर्तन करने लगे। इसके बाद भी बड़ी मुश्किल से उनकी चेतना लौटी।

यद्यपि उन्हें होश आ गया था, परन्तु हाथ-पाँव में चलने की शक्ति नहीं रही। बात भी नहीं बोल पा रहे थे। नाम की मस्ती तभी भी पूरी नहीं छूटी थी । मित्रगण उन्हें सहारा देकर धीरे-धीरे उनके घर ले गये । कैलाश बाबू की ऐसी नाम-समाधि प्राय: होती है । कैलाश बाबू एक गृहस्थ व्यक्ति हैं। सामान्य नौकरी करके अपनी स्त्री, पुत्र, परिवार लेकर जीवन यापन करते हैं । सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे तक ऑफिस में पूरी ड्यूटी देते हैं, उसके बाद भी उनकी भगवत् नाम में इतनी तल्लीनता आश्चर्यजनक ही है ।

मनोरमा देवी

भक्तिमती मनोरमा देवी, स्वनामधन्य श्री मनोरंजन गुहठाकुरता की धर्मपत्नी थी । गोस्वामीजी ने गृहस्थ में रहते ही उन्हें आकाश वृत्ति व्रत

दिया था । इस व्रत में किसी से कुछ मांगना एवं अर्थ उपार्जन करना निषिद्ध था । अति दरिद्रता में भी वे सदा भजन साधन में तल्लीन रहती थी । गृहकार्य करती एवं अतिथि अभ्यागतों की यथासाध्य सेवा करती। अपने बच्चों का पालन पोषण भी करती। उसके बाद भी 48 घंटे तक वह समाधिस्थ रह चुकी हैं । उनको रोज आसन में बैठने नहीं दिया जाता था क्योंकि इससे सांसारिक कार्यों में बाधा आती थी । वे आसन में बैठने के साथ ही समाधि में डूब जाती । उनका गोद का बच्चा जब दुग्ध पान के लिए रोता था, तब मनोरंजन बाबू बच्चे को लेकर समाधि अवस्था में ही दुग्धपान करा कर ले आते । गोस्वामीजी ने मनोरमा के देहान्त के बाद कहा था कि **सर्वत्र खोजने पर भी इस अवस्था की साधिका 2-3 भी मिलना मुश्किल है।** इनकी जीवनी (बंगला में) उनके पति श्री मनोरंजन बाबू ने दो खंडों में विस्तार से लिखी है । पाठकगण इसे पढ़कर अवश्य ही लाभान्वित होंगे। अत: मैं विस्तार से यहाँ नहीं लिख रहा हूँ ।*

सुरेन्द्र की माँ

इनका असली नाम कुसुम था। पति का नाम गोसांईदास वसु था। वह मेरी दूर की रिश्तेदार थी। कुलीन ग्राम में रहती थी । खूब कम उम्र में ही वह विधवा हो गई थी। तब इसकी गोद में एक शिशु संतान थी। उसका नाम सुरेन्द्र था, इसलिए लोग उसे ''सुरेन्द्र की माँ'' कहते थे ।

ससुराल में पति के देहान्त के बाद अत्यन्त गरीबी के कारण अन्न-वस्त्र की कोई व्यवस्था न होने एवं उपयुक्त अभिभावक के अभाव से वह अपनी शिशु संतान को लेकर अपने पित्रालय दत्तपाड़ा में आकर रहने लगी। वह घर में पूरा काम करती एवं पिता की सेवा करती। जब मैं कुलीन ग्राम वासियों को कलकत्ते में दीक्षा दिलवाने ले गया था, उस समय सुरेन्द्र की माँ भी गई थी एवं दीक्षा लेकर आयी थी ।

पिता के घर में वह खूब साधन-भजन करती एवं नाम करते-करते

* श्री श्रीसद्गुरु संग (श्री कुलदानन्द जी रचित) के चतुर्थ खंड में भी मनोरमा देवी का थोड़ा विवरण मिलता है ।

चेतनाशून्य हो जाती। इससे संसार के कार्य में विघ्न उपस्थित होता। इस कारण पिता बड़े ही क्रोधित होते एवं उसका तिरस्कार करते तथा उसकी भजन-प्रणाली की निंदा करते ।

पिता के तिरस्कार की बात को गोस्वामीजी से कहने पर उन्होंने कहा-

गोस्वामीजी - तुम अपने स्वसुर के घर में चली जाओ ।

सुरेन्द्र की माँ - यहाँ पिता की सेवा करने वाला कोई नहीं है ।

गोस्वामीजी - यह दायित्व तुम्हारा नहीं है ।

सुरेन्द्र की माँ - वहाँ मैं जाकर क्या खाऊंगी ? वहाँ कोई व्यवस्था नहीं है ।

गोस्वामीजी - वह सब तुम्हें सोचने की जरूरत नहीं हैं। किसी भी प्रकार से व्यवस्था हो जायेगी ।

सुरेन्द्र की माँ ने गुरु की बात सुनकर ससुराल जाने की सोची परन्तु वहाँ निवास आदि की व्यवस्था किस प्रकार से होगी ? इसी सोच में पड़ गई । एक दिन वह आसन में बैठकर नाम कर रही थी, उसी समय उसके पिता ने क्रोध में आकर कहा -

पिता - तू मेरे घर को बरबाद कर रही है। अभी घर से निकल जा।

सुरेन्द्र की माँ - मेरे जाने से तुम्हारी सेवा कौन करेगा ?

पिता - तुझे मेरी सेवा करने की जरूरत नहीं है। तू अभी घर से चली जा ।

सुरेन्द्र की माँ - पिताजी, मैं अभी जा रही हूँ । मेरा कोई अपराध ग्रहण मत करना । आपका यदि कभी शरीर अस्वस्थ हो तो खबर देना, मैं आकर सेवा करूंगी ।

पिता - तू अभी जा। तुझे आने की जरूरत नहीं ।

सुरेन्द्र की माँ अपने पिता को प्रणाम करके अपने पुत्र को गोद में लेकर फिर वहीं स्वसुरालय (कुलीन ग्राम) आकर रहने लगी । वहाँ उसकी एक खुद की झोंपडी में एक छोटा कमरा एवं रसोई घर था ।

वर्द्धमान के सुप्रसिद्ध वकील श्री देवेन्द्रनाथ मित्र ने सुरेन्द्र को अपने घर में रख लिया एवं उसे अंग्रेजी पढ़ाना शुरु किया । सुरेन्द्र की माँ अकेली कुलीन ग्राम में किसी तरह अपना गुजारा करने लगी ।

एक दिन सुरेन्द्र की माँ सबेरे अपने रसोईघर को गोबर से लेप रही थी। उस समय उसने देखा कि चूल्हे के पास नमक के कुछ डले (टुकड़े) पड़े हुए हैं, उसमें कुछ चींटियाँ झूम रही हैं । सुरेन्द्र की माँ, चींटियों को नमक खाते देखकर अत्यन्त दु:खी हुई, वह मन ही मन चींटियों को बोलने लगी कि अरे, तुम लोग किसी दूसरे के घर रहती तो मिठाई, शक्कर वगैरह तुम्हें खाने को मिलता। इस अभागिनी के घर में तुम नमक का टुकड़ा चबा रही हो। मेरे घर में थोड़ा सा गुड़ भी नहीं है कि मैं तुम लोगों को खाने को दूँ ।

यह सब कहते हुए सुरेन्द्र की माँ रोने लगी । आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी । गुरुशक्ति जाग्रत हो गई । शरीर में कंपन शुरु हो गया। स्वाँसों का वेग बढ़ गया। प्रबल वेग से प्राणायाम होने लगा । नाम अति तीव्रता से चलने लगा । सामने तुलसी के पौधे के पास पछाड़ खा कर गिर पड़ी एवं उसका बाह्य ज्ञान लोप हो गया। उस अवस्था में सुरेन्द्र की माँ ने देखा कि गोस्वामीजी दण्ड-कमंडल लेकर खड़े हैं। उन्होंने उससे कहा कि सुरेन्द्र की माँ उठ, आज मैं तेरे घर खाऊंगा। जल्दी मेरे लिए भोजन बना ।

सुरेन्द्र की माँ - मेरे घर में कुछ भी नहीं है। मैं कैसे तुम्हें खिलाऊँ?

गोस्वामीजी - जा कर कुलंगी में देख, वहाँ चावल रखा है, इतना कहकर गोस्वामीजी अदृश्य हो गये । सुरेन्द्र की माँ ने उठकर देखा कि एक सेर अन्न (चावल) लक्ष्मीजी की फोटो के पास रखा है। वह जल्दी से तालाब में जाकर नहा आई । तालाब के किनारे से कुछ साग पात तोड़ लाई। अपने पड़ोसियों से थोड़ा आलू वगैरह मांग कर ले आई और रसोई बनाने लगी ।

रसोई बनाने के बाद वह एक पत्थर की थाली में भोजन रखकर एक आसन भूमि में बिछाकर, एक ग्लास जल रखकर, गुरु को भोजन निवेदन कर, घर का कपाट लगाकर, बाहर आकर, बैठकर रोने लगी एवं

मन ही मन कहने लगी कि आज गोस्वामीजी ने स्वयं मेरे पास से भोजन मांगा, पर मैं इतनी गरीब हूँ कि केवल शाक-अन्न ही बनाकर उन्हें भोग लगा सकी ।

उसी समय बसु परिवार की एक अन्य महिला (यह भी गोस्वामीजी की शिष्या थी) कुछ आम, केला, दूध, मिठाई लेकर सुरेन्द्र की माँ के घर आकर कहने लगी कि सुना है, तुम गोस्वामीजी को भोग लगा रही हो। मैं कुछ सामान लाई हूँ। इसे भी भोग में लगा देना । यह कहकर वह फल वगैरह रखकर चली गई ।

सुरेन्द्र की माँ ने वे सब सामान लेकर धीरे से कपाट खोलकर कमरे के अंदर प्रवेश किया। उसने देखा कि गोस्वामीजी साक्षात् आसन पर बैठकर प्रसाद पा रहे हैं। उन्होंने सुरेन्द्र की माँ को कहा मेरा भोजन हो गया है। इस सामान को रख दो। मुहल्ले के बच्चों को बुलाकर प्रसाद दे दो । सुरेन्द्र की माँ ने गोस्वामीजी को प्रणाम कर उनकी आज्ञा का पालन किया ।

कुछ दिन बाद मैंने सपरिवार पुरी जाने का विचार किया। यह बात ग्राम में प्रचार हो जाने से सुरेन्द्र की माँ की भी प्रबल इच्छा हो गई कि वह मेरे साथ पुरी जायेगी। परन्तु बाद में वह इस बात से दु:खित हो गई कि पुरी का आने-जाने का किराया वह कैसे जुगाड़ करेगी ? उसके पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है और उसे दूसरों के पास से पैसे मांगना भी अच्छा नहीं लगता ।

दु:ख के कारण वह भावावेश में आ गई। उस समय फिर गोस्वामीजी ने दर्शन देकर कहा कि तू रूपये के लिए इतना क्यों सोच रही है ? मैं तेरे रुपये की व्यवस्था कर दूंगा ।

गुरु की इन बातों को सुनकर वह अपने को धिक्कार देते हुए विलाप करते हुए उनसे कहने लगी कि यह दुर्गति मेरी क्यों हुई ? आप के पास से मैं रुपया कैसे ले सकती हूँ ? मुझे अर्थ की कोई आवश्यकता नहीं है। आप ही मेरे परम-अर्थ हैं। मैं पुरी नहीं जाऊंगी। आप ही मेरे जगन्नाथ हैं। आपमें पुरी, वृन्दावन, काशी, गया, गंगा सब वर्तमान हैं। मुझे केवल अपने चरणों में स्थान दें ।

यह कहकर वह उन्हें प्रणाम करके नाम में तल्लीन हो गई। इस घटना के बाद वह पुरी नहीं गई एवं दरिद्रता से संघर्ष करते रहने पर भी किसी से कुछ याचना नहीं की ।

इस घटना से यह ज्ञात होता है कि सद्‌गुरु सर्वत्र, सब समय वर्त्तमान हैं। वे पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं । शिष्य की किसी भी इच्छा को, कभी भी पूर्ण कर सकते हैं। वे शिष्य को क्षण मात्र के लिए भी परित्याग करके नहीं जाते। उन्होंने शिष्यों का संपूर्ण भार ग्रहण कर लिया है ।

ज्ञानेन्द्र बाबू की माता

कलकत्ते के कॉलेज स्ट्रीट में श्री ज्ञानेन्द्र चन्द्र हालदार जी की पुस्तक की दुकान है । उनकी माता को गोस्वामीजी ने कलकत्ते में सीतारामघोष स्ट्रीट में रहते समय दीक्षा दी थी । मंत्रदान करते ही वे नाम की शक्ति से भावावेश में आ गई। धीरे-धीरे उनकी चेतना लुप्त हो गई । गोस्वामीजी ''हरि ॐ'' का उच्चारण करने लगे एवं उन्होंने बाबू महेन्द्रनाथ घोष की माता एवं जगबंधु जी को ज्ञान बाबू की माता के मेरूदंड को उपर से नीचे की ओर मलने का आदेश दिया।* काफी देर बाद उनकी चेतना वापस लौटी । तब ज्ञान बाबू की माता दुःखित होकर गोस्वामीजी को बोली -

माता - मैं एक रमणीय सुखकर स्थान में चली गई थी, मैं बड़े आनन्द में वहाँ थी। आप मुझे देह में वापस लौटाकर यहाँ क्यों ले आये ?

गोस्वामीजी - यदि यह स्थान कोई वन, जंगल या पहाड़-पर्वत होता तो तुम्हें वापस न लाने से भी चलता परन्तु यह कलकत्ता शहर है, यहाँ चारों ओर पुलिस घूम रही है। यदि तुम्हें देह में वापस न लौटाता तो वे समझते कि तुम्हारी, हम लोगों ने, दरवाजा बंद कर, हत्या की है । कोई चिन्ता मत करो। प्रेम से नाम करती रहो। कुछ वर्ष यहाँ रहकर भजन साधन करो। **बाद में फिर तुम्हें उस रमणीय स्थान में ले जाने की व्यवस्था कर दी जायेगी ।**

---

* कुण्डलिनी शक्ति को नीचे उतारने के लिए यह प्रक्रिया सहायक है ।

शक्तिपूर्ण मंत्र, सद्‌गुरु से प्राप्त करने के बाद बहुतों में विचित्र प्रकार की अनुभूति सुनने में आई है । कुलीन ग्राम वासियों के भक्तगणों का वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ ।

लीला दर्शन

लीला दर्शन करने के लिए कतिपय संप्रदायों में कल्पना का आश्रय लेकर चिन्तन का अभ्यास किया जाता है परन्तु शक्तिपूर्ण सद्‌गुरु के पास मंत्र दीक्षा लेने के बाद सिर्फ नामजप से ही अनेक प्रकार के दर्शन मिल सकते हैं । इस संदर्भ में मैं अपनी एक अनुभूति लिख रहा हूँ।

एक बार मेरे बड़े जामाता जगतप्रिय नंदी कहीं से श्रीराधाकृष्ण की एक मृन्मय मूर्ति खरीद कर लाये। उसमें श्री राधाकृष्ण एक कमल के फूल के ऊपर युगलरूप में खड़े हैं । एक ही वंशी दोनों पकड़े हुए हैं। मूर्त्ति बहुत ही दर्शनीय थी । यह मूर्त्ति देखकर मैंने जामाता से पूछा-

मैं- मूर्त्ति बहुत ही सुन्दर है। यह क्यों लाए हो ?

जामाता - दुकान से खरीद कर लाया हूँ। मुझे पसन्द आ गई, इसलिए ले आया ।

मैं - इस मूर्त्ति को लेकर क्या करोगे ?

जामाता - मैं इसे लेकर क्या करुंगा ? बच्चे लोग इससे खेलेंगे ।

मैं - यह ठीक नहीं है। भगवान की मूर्त्ति खेलने या घर सजाने के लिए रखना ठीक नहीं है । उसकी एक मर्यादा है। या तो रोज उसकी पूजा करो नहीं तो जल में विसर्जन दे दो ।

मेरी बात सुनकर जामाता जगतप्रिय कुछ बोल न सका। मैं समझ गया कि वह पूजा भी नहीं कर सकेगा एवं जल में विसर्जन देने की भी उसकी इच्छा नहीं है। अतः मैंने पुनः उससे कहा, ''जाओ, उसे ठाकुर घर में सिंहासन के उपर रख आओ, मैं उसकी रोज पूजा करूंगा ।'' जगतप्रिय यह सुनकर आनन्दित हुआ । मैं रोज पूजा करने लगा ।

मैं उस समय ठाकुर-कमरे के एक किनारे में सोता था । एक दिन रात्रि के दो प्रहर के समय मैंने देखा कि राधाकृष्ण आपस में धीरे-

धीरे बात कर रहे हैं। फिर दोनों सिहासंन से उतर कर मेरे पास आकर खड़े हो गये । मैं एक दृष्टि से सब कुछ देखने लगा । मैं मन ही मन सोचने लगा कि वाह ! यह तो मजेदार बात है। मिट्टी के ठाकुरजी चलते भी हैं और बातचीत भी करते हैं ।

उसी समय श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा कि मुझे भूख लगी है। कुछ खाने को दो । मैंने कृष्ण की बात सुनकर सोचा कि बड़ी मुश्किल है। इतनी रात्रि में मैं इसे क्या खाने को दूँ ? उसी समय राधा रानी जल्दी से मेरे सामने आकर अपने बाँये हाथ को बार-बार हिलाकर कहने लगी कि वे इस समय कुछ नहीं खाते। जानबूझ कर वे तुमसे खाने के लिए कह रहे हैं ।

इस बात को कहकर वह श्रीकृष्ण के हाथ को पकड़कर सिंहासन में चढ़कर पूर्ववत् युगलरूप में विराज गये । प्रत्यक्ष इस घटना को देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया ।

मृन्मय मूर्त्ति के चरणों में मैंने रोज चन्दन, तुलसी देकर पूजा करते-करते कुछ दिन बाद देखा कि चरणों में क्षत हो गया है। इस प्रकार की मूर्त्ति की पूजा नहीं करनी चाहिए। यह जानकर मैंने उसे गंगाजी में विसर्जन कर दिया। **इस प्रकार के दर्शन होने से साधन भजन में निष्ठा, उत्साह एवं रूचि बढ़ती है। हम ठीक पथ पर चल रहे हैं, इसका आभास होता है परन्तु अहंकार होने से पतन की संभावना भी है ।**

इस प्रकार के कई दर्शन मुझे होते रहते हैं। साधन पथ में इस तरह के दर्शन होते हैं । इसमें किसी कल्पना या चिंतन का आश्रय लेने की जरूरत नहीं पड़ती। गुरुकृपा का ही एक मात्र भरोसा है । पाठकगण मुझे कोई महात्मा न समझें। मैं एक सामान्य साधक हूँ । गुरुकृपा से जब सच्चिदानन्द विग्रह के दर्शन होते हैं, तभी साधक पूर्णत: मायामुक्त एवं निरापद अवस्था लाभ कर सकता है, उसके पहले नहीं ।

बालक नरेन्द्र

बालक नरेन्द्र घोष का स्वभाव बहुत ही मधुर एवं शान्त था । जब उसकी 15 वर्ष की आयु थी, तब वह बरिशाल (बंगला देश) के अंग्रेजी

विद्यालय में अध्ययन करता था । धर्मभाव अत्यन्त प्रबल होने के कारण वह गोस्वामीजी से दीक्षा लेकर खूब साधन-भजन करता एवं एकान्त में गोस्वामीजी की फोटो लेकर पूजा करता ।

नरेन्द्र के पिता श्री नारायण घोष, शाक्त वंश में जन्मे थे । वे एक बड़े जमींदार थे। अगाध विषय संपत्ति के अधिकारी थे। जीवहिंसा, प्रजापीड़न, सुरापान इत्यादि सभी दुष्कर्म वे करते थे। धर्मानुष्ठान एकदम पसंद नहीं करते थे। नरेन्द्र को भजन-साधन करते देखकर वे सहन न कर सके। वे संतान को पीड़ित करने लगे । परन्तु नरेन्द्र ने अपना भजन-साधन, नियम, आचार निष्ठा न छोड़ी ।

हिरण्यकशिपु-रुपी, नरेन्द्र के पिता ने जब देखा कि वह उनकी बात नहीं मान रहा है, तब वे क्रोध के मारे पागल हो गये । एक दिन नरेन्द्र जब एकान्त में भक्तिभाव से गोस्वामीजी की छवि की पूजा कर रहा था, उस समय उसके पिता ने दौड़ते हुए आकर, पुत्र का तिरस्कार करते हुए फोटो को उठाकर, दूर फेंक दिया । इस घटना से नरेन्द्र* बहुत दु:खित हुआ एवं उसी समय वहीं से गोस्वामीजी को प्रार्थना की ''हे गुरुदेव, मैं अब सहन नहीं कर पा रहा हूँ, मुझे इस स्थान से हटा दो।'' यह कहकर नरेन्द्र बरिशाल चला गया । उस दिन से उसके पिता के घर के लोग भयभीत हो गये । कुछ दिन बाद बरिशाल से खबर मिली कि अचानक कालरा होने से नरेन्द्र की मृत्यु हो गई ।

नरेन्द्र के मृत्यु-संवाद को सुनकर उनके पिता एवं परिवारीजन बड़े दु:खी हुए। वे समझ गये कि नरेन्द्र के ऊपर अत्याचार एवं गुरु की फोटो का अपमान करने से यह घटना घटी है । गुरु-भक्त पुत्र का अपमान ही इसका मुख्य कारण है ।

उस समय गोस्वामीजी, गेण्डारिया आश्रम, ढाका में ही थे । नरेन्द्र के काका श्री योगेन्द्र नारायण घोष ने अत्यन्त शोकाभिभूत होकर एक पत्र गोस्वामीजी को दिया। उसका सारांश इस प्रकार था - हम लोगों ने आपकी निन्दा करके महा अपराध किया है। आप हमें क्षमा

* कुलदानंदजी रचित ''सद्गुरु संग'' चतुर्थ खण्ड में गोस्वामीजी के साथ नरेन्द्र का आध्यात्मिक वार्तालाप विस्तृत रूप से लिखा गया है ।

कीजिएगा। हम आपकी महिमा इतने दिनों में समझ सके हैं। आपने ही नरेन्द्र को हटा लिया है एवं अपने पास रख लिया है। हमें दृढ़ विश्वास है कि आप नरेन्द्र को हमें दिखा सकते हैं। आपसे विनीत निवेदन है कि एक बार आप उसको हमें दिखाकर हमारा शोक दूर करें । ....इत्यादि।

उस समय गोस्वामीजी कोई पत्राचार नहीं करते थे। श्री जगबंधु मैत्र जी ने पत्र को पढ़कर गोस्वामीजी को सुनाया। तब गोस्वामीजी ने जगबंधु जी के हाथों से पत्र का उत्तर इस प्रकार लिखवाया - आपका पत्र सुनकर आपकी प्रार्थना ज्ञात हुई। **नरेन्द्र को दिखा सकता हूँ परन्तु नरेन्द्र गर्भस्थ हो गया है । उसको गर्भ से बाहर लाने के लिए एक और आत्मा को गर्भ में प्रेषित कराकर गर्भ की रक्षा करनी पड़ेगी। आप लोग नरेन्द्र को पुन: तो वापस पा नहीं सकते। एक बार देखकर क्या लाभ होगा ? केवल शोक वृद्धि होगी अत: आप लोग शोक संवरण करें एवं नरेन्द्र को देखने की इच्छा का परित्याग करें।**

इस पत्र को पाकर नरेन्द्र के चाचा योगेन्द्र जी घोष ने नरेन्द्र को देखने का संकल्प त्याग दिया।

आयु: श्रेयं, यशो, धर्मम् लोकानाशिष एव च ।

हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रम: ॥ - भागवत्

श्री शुकदेव जी ने कहा है कि हे परीक्षित् ! साधुजनों के प्रति विद्वेष करने से अशेष पुरुषार्थ संपन्न व्यक्ति की भी आयु, श्री, यश, धर्म स्वर्गादिक लोक, कल्याण एवं सर्वप्रकार का श्रेय विनष्ट हो जाता है ।

एक दिन नरेन्द्र के पिता नारायण घोष नौका द्वारा नदी पार कर रहे थे । नाव, एक बड़े स्टीमर के तरंगाघात में आ गई । नारायण घोष नाव के ऊपरी भाग में थे, अत: वे शायद बच जाते परन्तु उन्होंने अपने दलील वगैरह की पेटी को निकालने के लिए ज्योंही नाव के भीतरी भाग में प्रवेश किया, उसी समय नाव में पानी भर गया। नाव डूब गयी। वे बाहर निकल न सके । जलमग्न होकर काल के ग्रास में चले गये । संसार का ऐश्वर्य, प्रभुत्व सब खत्म हो गया ।

फकीर पंडा

फकीर ने यद्यपि ब्राह्मण कुल में जन्मग्रहण किया था परन्तु यौवन में उसका चरित्र ठीक न था । वह उड़ीसा का रहने वाला था। बाद में घर बार छोड़कर वह कलकत्ते में आकर रसोइये का काम करने लगा एवं अपनी जीविका चलाने लगा ।

सन् 1887 में गोस्वामीजी जब हैरिसन स्ट्रीट में रहते थे, तब वह वहाँ रसोई का काम करता था। वहीं वह गोस्वामीजी से दीक्षा पा गया था। दीक्षा लेने के बाद वह एक नये राज्य में प्रवेश कर गया। उसकी दिनोंदिन आध्यात्मिक उन्नति होने लगी ।

गोस्वामीजी तीसरी मंजिल में रहते थे और नीचे की मंजिल में फकीर रसोई का काम करता था। जब गोस्वामीजी तीसरी मंजिल में संकीर्तन के समय नृत्य करते, फकीर अपने को संभाल नहीं पाता। नाम श्रवण करते ही वह भोजन बनाना छोड़कर, हाथ में करछुल लेकर भावावेश में ऊपर जाकर मधुर नृत्य करने लगता । हाथ में पलटा या करछुल लिये उसका नृत्य जिसने देखा है, वह उसे भूल नहीं सकता। उसकी आंखें भावावेश में बंद रहती। बाह्य ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता था। उसका भावावेश में नृत्य मैंने कई बार देखा है ।

जब गोस्वामीजी पुरी चले गये तब फकीर कलकत्ते में ही रह गया । गोस्वामीजी के साथ उसकी मुलाकात फिर नहीं हुई । पुरीधाम में गोस्वामीजी के देहान्त का संवाद पाकर वह बड़ा ही दु:खी हुआ था। इस घटना के कुछ साल बाद गोस्वामीजी की पुण्यतिथि के अवसर पर जब गुरुभाई लोग पुरी जाने लगे, तब उसकी बहुत इच्छा हुई थी कि वह भी समाधि के दर्शन एवं प्रणाम करे। परन्तु उस समय फकीर कठिन स्वाँस रोग से ग्रसित था। उसमें शय्या से उठने की शक्ति भी नहीं थी। इसलिए गुरुभाईयों की इच्छा होने से भी कोई साहस न कर सका। उन्होंने सोचा कि यदि रास्ते में, ट्रेन में मृत्यु हो गई तो असुविधा हो सकती है ।

फकीर को उसी अवस्था में छोड़कर सब गुरुभाईगण हावड़ा में ट्रेन पकड़ने चले गये । फकीर दीनभाव से उच्चस्वर में रोने लगा ।

पुरी यात्रीगण को खुरदा रोड़ में ट्रेन बदलनी पड़ती थी। पुरी की सीधी गाड़ी तब नहीं थी । गोस्वामीजी के शिष्यगण खुरदा रोड़ में जब पुरी जाने वाली गाड़ी के डिब्बे में बैठने गये, तब उन्होंने देखा कि फकीर वहाँ बैठा हुआ है । सब लोग आश्चर्यचकित होकर उससे पूछने लगे-

गुरुभाईगण - तुम यहाँ कैसे पहुँच गये ?

फकीर - आप लोग तो मुझे साथ में नहीं लाये । गोस्वामीजी मेरे कष्ट को देखकर, कृपा करके मुझे साथ में लाये हैं ।

गुरुभाईगण - वे अब कहाँ गये ? ।

फकीर - गोस्वामीजी बराबर मेरे साथ ही थे । मुझे अभी इसी गाड़ी में बैठाकर, मेरे कपड़ों की गठरी को उतारकर अभी चले गये ।

फकीर के ऊपर गोस्वामीजी की अहैतुकी करूणा देखकर शिष्यगण उसका अभिनन्दन करने लगे। वे इस प्रकार की अनहोनी घटना को सुनकर दंग रह गये । उसको अनेक आदर के साथ पुरी समाधि आश्रम में ले गये।

फकीर ने गुरुजी की पुण्यतिथि में समाधि के दर्शन, उत्सव व संकीर्तन में आनन्द प्राप्त किया। तीन दिन तीर्थवास के बाद उसका पुरी में ही देहान्त हो गया । गोस्वामीजी के शिष्यगणों ने मिलकर उसका सुचारू रूप से अंतिम संस्कार किया।

श्रीमत् प्रबोधानंद सरस्वतीजी ने महाप्रभु के संबंध में लिखित स्तोत्र में कहा है -

धर्मस्प्रष्टः सतत परमाविष्ट एवात्यधर्मे

दृष्टं प्राप्तो नहि खलु सत्यं सृष्टिषुक्वापि नो सन् ।

यद्दत्त श्री हरिरस सुधास्वादमतः प्रनृत्य

तूच्चैर्गाय त्यथविलुन्ठते स्तौमितं कंचिदी - शम् ॥

जिस व्यक्ति ने कभी भी धर्म का स्पर्श नहीं किया है; जो सर्वदा अतिशय अधर्म में आविष्ट है; जिसने कभी भी पापपुन्ज नाशक साधुजनों के दृष्टिपथ में गमन नहीं किया है; वह व्यक्ति भी, जिसके द्वारा, श्री राधाकृष्ण प्रेमरससुधा के आस्वादन में मस्त होकर नृत्य गीत

एवं भूमि में लोटपोट करता है, उस अनिर्वचनीय ईश्वर की, मैं स्तुति करता हूँ ।

जीवन अनन्त है। हम लोग किसी मनुष्य की कुछ दिन की घटनाओं को देखकर उसके अच्छे-बुरे का विचार करते हैं। महापुरुषगण उसे नहीं देखते। वे लोग उसकी आत्मा की अवस्था को देखते हैं। हो सकता है फकीर प्रथम जीवन में अपना प्रारब्ध का भोग भोगा होगा। वह कर्म समाप्त होते ही उसकी प्रकृत अवस्था प्रकाशित हो गई। इसलिए किसी के कार्य कलापों को देखकर कटाक्ष नहीं करना चाहिए।

वृन्दावन चन्द्र

शक्तिपूर्ण नाम करने से पूर्वजन्म के संस्कार अनुसार योग के विभिन्न आसन, प्राणायाम वगैरह भी प्रकाशित हो सकते हैं । इन क्रियाओं, मुद्राओं का गुरु कृपा से अपने आप प्राकट्य होता है, इससे देहशुद्धि एवं नाम में रूचि बढ़ती है ।

श्री वृन्दावन चन्द्र हालदार नारायणपुर में रहते थे। जिला वीरभूम (पं. बंगाल) के अन्तर्गत रामपुरहाट स्टेशन से 8 मील दूर ब्रम्हाणी नदी के किनारे यह ग्राम है । इन्होंने श्री जगबंधु मैत्र जी (गोस्वामीजी के जामाता) से ई. 1907 में दीक्षा ली थी ।

दीक्षा ग्रहण के 7 महीने बाद से ही उनके शरीर में अति सुन्दर एवं स्पष्ट रूप से योग की क्रियायें एवं मुद्रायें प्रकाशित होने लगी। वे प्रतिदिन प्रातः, दोपहर में नहाने के बाद एवं संध्या तीन समय नाम साधन करते थे । एक मिनट नाम करने के साथ ही शरीर उनके वश में नहीं रहता था । नाम का प्रवाह अपने आप शुरु हो जाता। उन्हें इच्छापूर्वक ''नाम जप'' करने की जरूरत नहीं होती। उनके स्वयं का कर्त्तव्य समाप्त हो जाता एवं विभिन्न प्रकार के आसन जैसे पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन, वीरासन अपने आप होने लगते। स्वस्तिकासन होने से शरीर घूमने लगता ।

धेनुमुद्रा, कूर्ममुद्रा, गालिनीमुद्रा, मत्स्य मुद्रा, चक्रमुद्रा, आवाहमी मुद्रा, गदामुद्रा, योनि मुद्रा, संबोधिनी मुद्रा, मृगमुद्रा इत्यादि अनेक मुद्रायें

शरीर में प्रकाशित होती । जब प्राणायाम होने लगता, तब उनका शरीर मेरूदण्ड में स्थापित रहता । दोनों पैर पद्मासन के कारण भूमि से ऊँचे रहते। सिर उपर की ओर रहते, उसके नीचे दोनो हाथ एक प्रकार मुद्राबद्ध होकर सिर के नीचे रहते एवं इस अवस्था में भस्त्रिका प्राणायाम शुरु हो जाता । श्वाँस प्रबल वेग से देह के अंदर प्रविष्ट होता। देह के अंदर अनेक क्रियायें होती । नवद्वार कुंभक भी होता । कुल 2 घंटे विभिन्न क्रियाएं होने के बाद साष्टांग प्रणाम करके योग की क्रियाएं समाप्त हो जाती । हाथ, पैर, जानु, छाती, मस्तक, चक्षु इत्यादि द्वारा अष्ट अंग से जिस प्रकार से प्रणाम होता, वैसा प्रणाम साधारणत: देखा नहीं जा सकता ।

भजन में बैठने के साथ ही क्रियायें शुरु हो जाती । रोज कुल 7 घंटे क्रियायें होती थी । वे कहते थे कि क्रियाओं के बाद शरीर एकदम हल्का हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे मैं आकाश में उड़ सकता हूँ । क्रियाएँ शुरु होने पर वे उसे रोक नहीं सकते थे। क्रियाएँ बन्द होने के साथ ही साथ नाम का प्रबल वेग भी धीमा हो जाता था । स्वयं की चेष्टा से वे एक भी क्रिया नहीं कर सकते थे ।

मैंने वृन्दावन चंद्र हालदार जी के पास बैठकर शुरु से अंत तक इन सब क्रियाओं का बार-बार दर्शन किया है। इसमें संदेह करने की कोई बात नहीं है । हरिनाम के द्वारा और भी कई गुरुभाईयों के अंदर कुछ-कुछ क्रियायें मैंने देखी हैं ।

मृगांकनाथ

मृगांकनाथ पालित वर्द्धमान जिले के किसी गाँव का रहने वाला था। इसने अंग्रेजी शिक्षा नहीं पाई थी। बंगला भाषा का पूरा ज्ञान था। जमींदारी के व्यावहारिक कार्य में इसकी विशेष दक्षता थी । शरीर भी बलिष्ठ था ।

इस पृथ्वी में ऐसा शायद कोई भी पापाचरण बाकी नहीं था जिसे उसने नहीं किया हो । जीव-हिंसा, सुरापान, व्यभिचार, गृहदाह, मिथ्या-मुकदमा करना, मिथ्या साक्ष्य देना इत्यादि किसी भी कार्य से वह विमुख

न था । दस्युदलों के साथ भी लिप्त था । उसकी माँ उसे बार-बार समझाती, परन्तु वह किसी की बात नहीं मानता था । पिता का देहान्त पहले ही हो चुका था । जो जैसे चरित्र का होता है, उसे वैसे ही संगी भी मिल जाते हैं। ग्राम के प्रतापी जमींदार ने अपने शत्रुओं को दमन न कर सकने के कारण मृगांक से सहायता मांगी । मृगांक ने आनन्द के सहित उसका प्रस्ताव स्वीकार करके विपक्ष को एक मिथ्या फौजदारी मामले में फंसाकर जेल की सजा दिलवा दी । जमींदार मृगांक की (कु) बुद्धिमता देखकर अत्यंत आनन्दित हुआ । जमींदार से उसकी विशेष मित्रता हो गई । प्राय: रोज मृगांक जमींदार के घर जाता एवं मौज मस्ती, ऐश-आराम में समय बिताकर वापस आता ।

जमींदार का युवक पुत्र गोस्वामीजी का शिष्य था । एक बार उसने अपने पुत्र को घर से निकाल भी दिया था क्योंकि उसका पुत्र धार्मिक भावापन्न था । संसारासक्त व्यक्ति, धार्मिक अनुष्ठान को सहन नहीं कर सकता। संसार की यही रीत है । मृगांक जब जमींदार के घर जाता तो वह रोज ही देखता कि जमीदांर का पुत्र अपनी पूजा में मग्न है। एक दिन मृगांक ने कौतूहल वश उसके पास आकर पूछा -

मृगांक - भाई, तुम क्या कर रहे हो ? सामने किसका फोटो रखे हो ?

युवक - मैं अपनी साधना कर रहा हूँ। यह मेरे गुरुदेव श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी का चित्र है ।

युवक ने उसे एक बताशा प्रसाद दिया । मृगांक ने उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण किया। फिर युवक से पूछा -

मृगांक - तुम कितने पवित्र एवं धार्मिक स्वभाव के हो ? मैंने तो सारा जीवन पाप कार्य करते हुये ही बिताया, क्या मेरी कोई गति हो सकती है ?

युवक - पतितों के उद्धार के लिए ही भगवान ने पतित-पावन नाम धारण किया है । उनके प्रति अनुराग, श्रद्धा होने से ही सब सहज मे हो जाता है । महापुरूष गण, भगवान के ही दूसरे रूप हैं ।

मृगांक - मैंने तो अनेकों पाप किये हैं। मेरे किये कर्मों के अपराधों का भार कोई महापुरूष ग्रहण कर सकता है ?

युवक - हाँ, सद्गुरु का आश्रय मिलने से सभी संभव है ।

मृगांक - ऐसी बात तो मैंने कभी नहीं सुनी ।

उस दिन मृगांक फिर जमींदार से मिलने नहीं गया। वहीं से घर लौट गया । इसके बाद वह रोज जमींदार के घर आता परन्तु उससे न मिलकर उसके पुत्र से वार्तालाप कर चला जाता । एक दिन जमींदार बाबू ने उसे अपने पुत्र से बात करते हुए देखकर कहा -

जमींदार - मृगांक, क्या बात है ? आजकल तुम हम लोगों की मजलिश में नहीं आते ?

मृगांक - आता तो रोज हूँ परन्तु आपके पुत्र से वार्तालाप में समय बीत जाता है ।

जमींदार - मेरे लड़के को जरा समझाना। जमींदारी का कोई काम नहीं देखता। उम्र बढ़ती जा रही है। जीवन बरबाद कर रहा है। पढ़ाई लिखाई भी ठीक से नहीं किया । तुम्हारे द्वारा सब कार्य संभव है ।

मृगांक ने सोचा कि मैं उसे क्या समझाऊँ ? उसी के द्वारा मैं समझ जाऊँ तो काफी है, परन्तु बाहरी भाव से जमींदार को बोला- आप चिन्ता मत कीजिये, मैं अवश्य चेष्टा करूंगा ।

साधू संग एवं सत् संग की महिमा सर्व शास्त्रों में कही गई है ।* मृगांक को सत्संग मिला । उसका चित्त द्रवीभूत हो गया । विषय कर्मों में अनासक्ति होने लगी। व्याकुलता आने लगी ।

उसी समय मृगांक को खूनी आँव की बीमारी हो गई। उसने आयुर्वेदिक चिकित्सा करना प्रारंभ किया परन्तु उससे कोई लाभ न हुआ। शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया । उसे अचानक उसी समय जमींदारी के काम के लिए बरिशाल जाना जरूरी हो गया । वह जमींदार के पुत्र के पास से गोस्वामीजी का प्रसाद एवं चरणामृत लेकर आयुर्वेदिक औषधियों को फेंककर, बरिशाल की ओर रवाना हुआ । उसे गोस्वामीजी के ऊपर विश्वास हो गया था ।

* रामचरित मानस में भी तुलसीदासजी ने लिखा है । (अनु.)
बिनु सत्संग विवेक न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

मृगांक वहाँ पहुँचकर किसी वकील के यहाँ गया। शरीर उसे थोड़ा स्वस्थ अनुभव हुआ। वह वकील, जमींदार का जानकार था। मृंगाक ने उसे सब समझाकर - वहाँ से जाते समय उसके कमरे में गोस्वामीजी का एक चित्र देखा। मृंगाक ने उनसे कहा कि यह फोटो मुझे दीजिये ।

वकील एवं उसके घरवाले गोस्वामीजी के ही शिष्य थे। वे मृगांक का स्वभाव जानते थे। अत: मृगांक गोस्वामीजी की छवि की पवित्रता या मर्यादा रख नहीं सकेगा, यह सोचकर फोटो देने में असम्मत हुए ।

मृगांक वहाँ से हताश होकर निकलकर चिंतामग्न हो गया । रात्रि के 8 बजे लगभग एक शिवमंदिर के बाहर बैठकर अपने गतजीवन के कुकर्मों के बारे में सोचने लगा । सोचते-सोचते दु:ख से वह व्याकुल होकर, मूर्छित सा हो गया । अचानक उसने देखा कि सामने गोस्वामीजी दण्ड, कमंडल लेकर खड़े हैं। मस्तक में जटाभार एवं परिधान में गैरिक वसन है । उन्हें देखकर उसने उनकी पदधूलि लेकर सर्व शरीर में लगाकर उन्हे दण्डवत् प्रणाम किया । अचानक उसकी चेतना वापस लौटी। देखा तो अंधेरे में अकेला शिवमंदिर के बाहर पड़ा हुआ है ।

इस घटना के बाद मृंगाक का मन और व्याकुल हो उठा । केवल गोस्वामीजी का ही स्मरण एवं उनके रूप की चिंता करने लगा । वह घर में स्थिर होकर नहीं रह सका। कलकत्ते की ओर निकल पड़ा । तब गोस्वामीजी हैरिसन रोड़ में निवास कर रहे थे । मृगांक ने उन्मत्त की तरह वहाँ उपस्थित होकर गोस्वामीजी को प्रणाम किया एवं देखा कि गोस्वामीजी अपने अनेक शिष्यों एवं भक्तवृन्दों के साथ बैठे हैं । मृगांक सबके सामने बिना किसी हिचक के अपने जीवन में किये सब कुकर्मों को बोलने लगा । जो सब बातें मनुष्य किसी के सामने कह नहीं सकता, वह सब बातें लगातार बोलते ही गया । उपस्थित लोगों ने समझा कि यह कोई पागल होगा । कुछ देर बाद गोस्वामीजी ने हाथ के इशारे से उसे शान्त होने के लिए कहा । सब व्यक्ति आश्चर्य-चकित होकर उसकी ओर ताकने लगे । तब मृगांक ने गोस्वामीजी से कहा -

मृगांक - मेरे पाप जीवन की कथायें आपने सुनी। पूरी बात तो मैं सुना भी नहीं पाया, आपने रोक दिया । इस अपराधी के उद्धार का कोई उपाय आपके पास है ?

गोस्वामीजी - चिन्ता मत करो । पर्वत के समान रूई के ढेर को थोड़ी सी अग्नि मुहूर्त मात्र में जला दे सकती है ।

मृगांक - मैं अनेक आशाएँ लेकर आपके पास आया हूँ। मेरी कोई गति कीजिये ।

गोस्वामीजी - अभी तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता, पहले कुछ तीर्थ दर्शन करके आओ ।

मृगांक - तीर्थ किसे कहते हैं ? मैं नहीं जानता, कहाँ कहाँ जाऊँ ?

गोस्वामीजी - अधिक जगह जाने की जरूरत नहीं है। कालीघाट (कलकत्ते) में जाकर माँ के दर्शन कर आओ । गंगास्नान करो फिर तारकेश्वर एवं वैद्यनाथ धाम जाकर शिवजी के दर्शन करो । मुंगेर के कष्टतारिनी घाट में जाकर गंगा स्नान करो ।

मृगांक - मेरे पास अभी रूपये भी नहीं हैं ।

गोस्वामीजी ने अपने पुत्र योगजीवन को बुलाकर प्रयोजन अनुसार रूपये दिलवाये । मृगांक रूपये लेकर गोस्वामीजी को प्रणाम कर तीर्थ पर्यटन में निकल गया ।

वैद्यनाथ जाने के उद्देश्य से वर्द्धमान स्टेशन में मृंगाक को देखकर मेरे संबंधी कालीकृष्ण सरकार से उसका परिचय हुआ। उसने उसे बोलपुर साथ जाने को कहा । मृगांक, श्यामाकान्त पंडितजी को पहचानता था। परन्तु मृगांक ने कहा कि मैं संकल्प करके तीर्थ दर्शन के लिए निकला हूँ। अत: अभी बोलपुर नहीं जा सकता। बाद में कभी जाऊंगा ।

मृगांक तीर्थ दर्शन करके गोस्वामीजी के पास फिर गया परन्तु गोस्वामीजी ने कहा कि अभी भी तुम्हारा समय नहीं हुआ है। समय होने से संवाद दूंगा । गोस्वामीजी की बात सुनकर मृगांक दु:खी हुआ। वह अपने घर लौट गया । कुछ दिन बाद गोस्वामीजी पुरी चले गये ।

घर जाकर मृंगाक केवल गोस्वामीजी का ही चिन्तन करने लगा। वैषयिक कार्य उसे विष के समान प्रतीत होने लगे । केवल जमींदार पुत्र के साथ सत्संग करता एवं गोस्वामीजी के पत्र की प्रतीक्षा करता ।

इस प्रकार कई माह बीतने के बाद पुरी से गोस्वामीजी का पत्र मिला कि पुरी आने से उसे दीक्षा की प्राप्ति होगी । उसे पाकर मृगांक

आनन्दित हो उठा परन्तु उस समय उसके पास जाने के लिए रुपये नहीं थे। वह जमींदार या घर के किसी से रुपये जुगाड़ कर सकता था परन्तु पुरी जाने में देरी न हो जाये, इस चिन्ता से उसने अपनी परिचित एक मुसलमान महिला के पास जाकर रुपये की मांग की। उस सहृदया मुसलमान महिला ने बड़े ही प्रेम से उसे यथोचित रूपये दे दिये। मृगांक रुपये लेकर महिला को बोला कि यदि वापस लौटा तो ऋण का परिशोध कर दूंगा अन्यथा आप सोचना कि ये रूपये मैंने दान कर दिये हैं। मैं आपको माँ के समान समझता हूँ। आपका उपकार मैं आजीवन नहीं भूलूंगा। यह कहकर मृगांक महिला को प्रणाम कर पुरी की ओर रवाना हुआ ।

मृगांक घर नहीं गया। घर में एक पत्र दे दिया। जमींदार को भी पत्र लिखा कि आप मेरे अन्नदाता हैं। अनेक वर्षों तक आपने मेरा प्रतिपालन किया है। आप मेरे पिता सदृश हैं एवं आजीवन पिता के समान ही समझूंगा। मैं और अब मनुष्य के अधीन में नौकरी नहीं करूंगा। आज से मैं आपके कार्य से इस्तीफा देता हूँ। मेरा छोटा भाई आपका कार्य कर सकता है। वह बेरोजगार है। यदि उसे कार्य में नियुक्त करें तो मुझपर बड़ी कृपा होगी ।

मृगांकनाथ के पुरी में पहुंचने के बाद यथासमय उसकी दीक्षा हो गई। गोस्वामीजी ने उसे रोज पितरों के तर्पण करने की आज्ञा दी । कुछ दिन पुरी में रहकर मृगांक वापस घर लौटा ।

अब वह पहले का मृगांक नहीं रहा । ग्राम के वृद्ध, बालक, युवा जिसे भी देखता, सबके पैर में गिरकर रोता एवं पदधूलि ग्रहण करता । कुछ लोग उसे पागल समझने लगे। कुछ लोग यह भी सोचने लगे कि यह कोई नई चाल तो नहीं चल रहा है क्योंकि लोग उसके दुष्चरित्र को जानते थे। परन्तु ग्राम के अन्य भक्तगण, धार्मिक लोग यही बोलने लगे कि मृगांक के ऊपर महापुरुष की कृपादृष्टि हो गई है। इससे उसके स्वभाव में परिवर्तन हो गया है ।

कुछ समय बाद मृगांक शांत हुआ। फिर उसने अपने घर में ढाई हाथ लंबी एवं एक हाथ चौड़ी एक ईंट के द्वारा चबूतरा बनवाया एवं सीमेन्ट के द्वारा उसे अच्छी तरह से पलस्तर कर चिकना करवाया ।

उसकी इच्छा थी कि वह गोस्वामीजी की एक फोटो स्थापित कर वहाँ नित्य पूजा करेगा एवं भक्ति-ग्रंथ आदि पाठ करेगा । चबूतरे के पास तुलसी के पौधे को रखने की भी व्यवस्था कर दी ।

चबूतरा (वेदी) बनकर तैयार हो गया। अगले दिन सुबह गोस्वामीजी की छवि की प्रतिष्ठा की पूरी तैयारी कर ली गई । सुबह आकर उसने देखा कि चबूतरे के ऊपर दो पैरों के चिन्ह, सीमेन्ट के पलस्तर में गहरे रूप से दिख रहे हैं । यह चिन्ह देखकर मृगांक अत्यन्त क्रोधित हो उठा। उसने सोचा कि उसके पहले के शुत्रगण ने रात्रि में आकर वेदी के ऊपर चढ़कर उसे अपवित्र कर दिया है । मृगांक खूब गाली-गलौच करने लगा।

बाद में उसने गोस्वामीजी के पुत्र को पुरी में एक पत्र लिखा कि मैं एक सीमेन्ट की वेदी बनाकर गोस्वामीजी की छवि की स्थापना करने वाला था परन्तु किसी ने वेदी में चढ़कर उसे अपवित्र कर दिया है। चिन्ह को रगड़कर साफ भी नहीं कर पा रहा हूँ। चिन्ह काफी गहरा है। जिसने ऐसा किया है मैं उसको पकड़ने की तलाश कर रहा हूँ, अब मैं वहाँ फोटो स्थापना कैसे करूँ ? .... इत्यादि।

पत्र को पाकर योगजीवन ने गोस्वामीजी को सुनाया । गोस्वामीजी ने हंसकर कहा कि ''मृगांक को लिख दो कि वेदी के ऊपर जो चरण चिन्ह उभरा है, उसे वह मिटाये नहीं। उसकी ही नित्य पूजा करे''।

योगजीवन का पत्र पाकर मृगांक को होश हुआ एवं वह समझ गया कि यह चरण चिन्ह किनका है । गुरुदेव की अपार कृपा को अनुभव कर वह पदचिन्ह में सिर रखकर फूट-फूट कर रोने लगा ।

मृगांकनाथ की वह वेदी एवं पदचिन्ह अभी भी वर्तमान है । वह रोज उठकर, नहा-धोकर भक्ति भाव से चरणों की पूजा करता है एवं भजन साधन करता है । नित्य तुलसी की सेवा एवं भक्तिग्रंथ वहाँ बैठकर पाठ करता है । कभी बाहर जाने से अपनी कन्या या दूसरे किसी को पूजा का भार सौंप जाता है ।

दीक्षा के बाद मृगांक की माता जितने दिन तक जीवित थी, वह प्रतिदिन माँ की फूल, चन्दन के द्वारा पूजा करता था। मातृ-आज्ञा

अवनत मस्तक से पालन करता था । माँ की आज्ञा का उसने कभी भी उल्लंघन नहीं किया । जब भी बाहर जाता, मातृ-आज्ञा लेकर जाता। जाने के समय माँ का चरणामृत साथ में ले जाता एवं प्रतिदिन पान करता ।

जिस दिन से गोस्वामीजी ने तर्पण करने को कहा था, उस दिन से एक दिन भी उसमें नागा नहीं करके नित्य पितृ तर्पण करता । मृगांक का भजन, पाषाण की रेखा के समान था। किसी भी अवस्था या परिस्थिति में उसके नियम में व्यतिक्रम नहीं होता था ।

श्री चैतन्य महाप्रभु के समय जगाई-मधाई उद्धार का प्रसंग मृगांक को देखकर स्वत: याद आ जाता है । गोस्वामीजी ने अपने विभिन्न शिष्यों के साथ कितनी विचित्र प्रकार की लीलायें की हैं, उसका यह एक दृष्टान्त है? ''कोयला का मैला छूटे जब आग करे प्रवेश'' इस बात की सत्यता मृगांक के चरित्र से जानी जा सकती है। गुरु कृपाहि केवलम् ।

***

नाम

शुद्धा भक्ति लाभ करने का एक मात्र उपाय कलियुग में ''नाम'' ही है। ''हरेर्नामैव केवलम्''। भक्त एवं भगवान जिस प्रकार अभिन्न हैं, उसी प्रकार नाम एवं नामी अभिन्न हैं । शास्त्र में नामी की अपेक्षा नाम की ही महिमा अधिक कही गई है । चैतन्य महाप्रभु ने कहा है -

नाम चिन्तामणि : कृष्णस्चैतन्य रस विग्रहः ।

पूर्ण शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वात् नाम नामिनोः ॥

नाम और नामी में भेद न रहने से चैतन्य रसमूर्त्ति सर्वविध शक्ति से पूर्ण, मायागन्ध विवर्जित एवं नित्यमुक्त चित्तामणि के समान सर्व अभीष्ट प्रद श्रीकृष्ण ही नाम रूप में आविर्भूत हुए हैं ।

नाम, विग्रह, स्वरूप, तीनों एक रूप ।

तीनों में भेद नहीं, तीनों एक रूप ॥

देह देही, नाम-नामी, कृष्ण में नहीं भेद ।

जीव का धर्म नाम है, देह स्वरूप विभेद ॥

अतः कृष्ण का नाम, देह विलास ।

प्राकृत इन्द्रिय रहित, होता स्वप्रकाश ॥

कृष्ण नाम, कृष्णगुन, कृष्ण लीला वृन्द ।

कृष्ण के स्वरूप-समान, सब है चिदानंद ॥

- श्री चैतन्य चरितामृत, 17 वां अध्याय

नाम-नामी अभिन्न हैं। इसलिए यदि किसी को ''नाम'' पूर्णतः प्राप्त हो जाये तो समझना होगा नामी की भी प्राप्ति हो गई । ''नाम'' स्मरण करते-करते जितना मुझे उसका परिचय मिला, वह पाठकगणों को उपहार स्वरूप दे रहा हूँ ।

(1) नाम सत् वस्तु है, ये शब्द के समान शून्य नहीं हैं ।

(2) नाम नित्य वस्तु है । नाम अनंत काल से वर्तमान है, इसका आदि-अंत नहीं है । वे देशकाल के अतीत हैं ।

(3) नाम जीवन्त हैं । यह अचेतन पदार्थ नहीं हैं । इसकी अनुभूति अंतःकरण में उपलब्ध होती है ।

(4) नाम स्वाधीन एवं स्वतंत्र हैं - ये किसी के वशीभूत नहीं हैं, ये मनुष्य के पास रहना नहीं चाहते। नाम साधन शुरु करने से ये कुछ देर में ही भाग जाने की इच्छा प्रगट करते हैं एवं छिद्र देखने से वे चले जाते हैं । अपनी चेष्टा से (पौरूष से) ज्यादा देर तक इनका सानिध्य पाना कठिन है। यदि नाम की इच्छा हो तो वे गंगा के स्रोत के समान अंतःकरण में प्रवाहित होते हैं। इसलिए नाम के पदावनत होकर नाम की कृपा के भिखारी होकर नाम करना चाहिए ।

(5) नाम सर्वदा शुद्ध (शुचि) हैं - नाम सब समय पवित्र है, वो पापी, पुण्यवान किसी के मुख से भी श्रवण किया जा सकता है । इनकी इच्छा सब समय पवित्र जगह में रहने की होती है इसलिए अपवित्र अंतःकरण या मन में कलुषित भाव रखने से वे चले जाते हैं । नाम स्वयं शुचि हैं इसलिये वे कदाचार, अपवित्र आहार, कुस्थान में वास, कदालोचना, कुसंग, अपवित्रता सहन नहीं कर पाते। अतः जो व्यक्ति ठीक से नाम करना चाहते हैं, उनको इन सबका परित्याग करना चाहिये।

(6) नाम नीतिपरायण हैं - वे दुर्नीति सहन नहीं कर सकते । मिथ्या, प्रवंचना, परनिंदा, परचर्चा, आलस्य, परपीड़ा, निष्ठुरता का सर्वप्रकार से वर्जन करना चाहिये ।

(7) नाम ज्ञानमय हैं - मनुष्य भ्रान्त है। किससे उसका कल्याण होगा ? वह यह नहीं जानता । मनुष्य स्वयं चिंतन करके उचित-अनुचित नहीं जान सकता। प्रवृत्ति उसको जिस पथ पर ले जाती है, वह उसी पथ पर परिचालित होता है। वह अपने मन पसंद पथ को पकड़ लेता है। अच्छा-बुरा नहीं समझता । किन्तु ''नाम'' अभ्रान्त है, पूर्ण ज्ञानमय है । नाम मनुष्य की भ्रान्ति को दूर कर देता है। उसे प्रकृत कल्याण पथ पर परिचालित करता है। उसे विवेक, बुद्धि देता है । नाम का आन्तरिकता के साथ आश्रय ग्रहण करने से मनुष्य विपथ-गामी नहीं हो सकता ।

(8) नाम सर्वशक्तिमान है - इसकी शक्ति अवर्णनीय है । नाम जो कोई नहीं कर सकता, उसे भी करके दिखा देता है। वे सर्व समर्थ हैं। सत् प्रवृत्तियों को जगा देता है। दुष्प्रवृत्तियों को दूर करता है। रिपुओं का दमन करता है। मन में एकाग्रता लाता है। चित्त स्थिर एवं शान्त करता है। उसके लिए अलग से यौगिक क्रियायें करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। नाम में जिस प्रकार चित्त एकाग्र एवं स्थिर होता है, वैसा अन्य उपाय से नहीं होता । मनुष्य में प्रकृत मानवता का विकास कर देता है। कृपण को दानी एवं उदार बना देता है ।

(9) नाम निर्गुण है - नाम में माया का लेश नहीं है । यद्यपि मायिक इन्द्रियों द्वारा नाम उच्चारण होता है तथापि माया इसको स्पर्श नहीं कर सकती ।

(10) नाम सुखद है - नाम मधुर से मधुर है । इसका अलौकिक स्वाद भी है । इसके समान आनन्ददायक वस्तु जगत में और नहीं है । इस जगत में इन्द्रिय-भोग्य सुखद वस्तुयें अनेक हैं परन्तु वे सब क्षणस्थायी हैं एवं दु:ख मिश्रित हैं । आज पुत्र की प्राप्ति में मनुष्य आनन्दित हो रहा है। कल उसकी मृत्यु हो जाने से हाहाकार कर रहा है। आज धन-प्राप्ति होने पर खुशी हो रही है। कल नुकशान होने पर दु:खी हो रहा है ।

इस जगत में सब सुख अनित्य एवं दु:ख मिश्रित हैं किन्तु नाम नित्य सुखदाता है । ये जिस प्रकार से सुख देते हैं, इस पृथ्वी में वैसे सुख की तुलना नहीं दी जा सकती है। इसका आस्वादन स्वतंत्र है ।

वे त्रिताप दग्ध जीव के लिए शान्ति वारि स्वरूप हैं । गर्मी में सुशीतल छाया के समान हैं। क्षुधा के समय आहार एवं पिपासा के समय जल के समान हैं । नाम का आनंद अनुभव होने से भूख-प्यास भी कम हो जाती है । थके हुए शरीर में बल का संचार होता है। शरीर के कष्ट का लांघव होता है ।

हम लोग जो नाम का आनंद प्राप्त नहीं कर पाते, उसका मूल कारण है, अनंत जन्मों के अपराध । जिस प्रकार पित्त के रोग में मिश्री भी कड़वी लगती है। उसी प्रकार भवरोग ग्रस्त मनुष्य के लिए नाम

का सुखमय रस भी विषवत् प्रतीत होता है । फिर जब पित्त का रोग धीरे-धीरे ठीक होता जाता है, मिश्री मीठी लगती है। उसी प्रकार जिस परिमाण में मनुष्य का अपराध नष्ट होता जाता है, वह उसी परिमाण में नाम सुधारस का आस्वादन करने में समर्थ होता है ।

(11) नाम स्वास्थ्यप्रद - नाम से मस्तिष्क शीतल होता है। बुद्धि वृत्ति प्रखर होती है। धारणा शक्ति की वृद्धि होती है। शरीर भी पवित्र एवं स्वस्थ होता है। व्याधियों, रोगों में कष्ट, यंत्रणा काफी मात्रा में कम अनुभव होती है ।

(12) नाम मादक है - इसमें मादकता है, नाम करते-करते नशा सा होने लगता है। इससे उत्तरोत्तर आनन्द ही प्राप्त होता है। कोई नुकशान नहीं होता ।

(13) नाम कर्मक्षयकारी है - शुभाशुभ कर्मों से मनुष्य चौरासी लाख योनी भ्रमण कर रहा है। पुन: पुन: कर्मसूत्र में जड़ित होता जा रहा है। कर्मक्षय नहीं होने से जीव का उद्धार होना भी असंभव है । ''नाम'' मनुष्य के कर्म का क्षय कर देता है । नाम यदि कर्मक्षय नहीं करता तो जीव का उद्धार होना असंभव था ।

(14) नाम अनर्थ-निवृत्तिकारी-आध्यात्मिक, पारिवारिक, वैषयिक, आर्थिक, शारीरिक ....इत्यादि जितने भी भजन के प्रतिबंधक हैं - वे सब अनर्थ हैं । नाम समस्त प्रतिबंधकों को समूल नष्ट कर डालता है ।

साधन भजन में प्रवृत्त होने से शारीरिक, मानसिक अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं। जो मनुष्य को साधन-भ्रष्ट करते हैं । मनुष्य के ऊपर माया का अत्याचार प्रारंभ होता है। माया-शक्ति मनुष्य को साधन पथ में स्थिर नहीं रहने देती। जो जिस प्रकार की प्रकृति का है, उसे उसी प्रकार की माया के द्वारा संघर्ष करना पड़ता है ।

पारिवारिक रोग, शोक, मृत्यु, वैषयिक नुकसान, विवाद, मुकद्दमा, अपमान, लांछन, निन्दा, द्वेष, हिंसा ....इत्यादि अनेक प्रकार के उत्पात प्रारंभ होते हैं । काम, क्रोधादि रिपुगण भी अत्याचार करने लगते हैं। हृदय सर्वदा दग्ध होता रहता है ।

मैं अपने इस क्षुद्र जीवन में करीब 7-8 साल तक इस प्रकार के दावानल में दग्ध हुआ था । ''सद्गुरु लीला'' पढ़ने में आप लोगों को सब ज्ञात हुआ होगा । अर्थनाश, मनस्ताप, पारिवारिक अशान्ति, अपमान इत्यादि कुछ भी बाकी न था। एकमात्र नाम ने ही कृपा करके इन आपदाओं से मेरी रक्षा की थी। मुझे पाठकगणों को आशा की वाणी सुनाने के लिए शायद जीवित रखा था अन्यथा प्राण-धारण करना संभव न था ।

संसार हिरण्यकशिपु के समान है। प्रहलाद साधक है । प्रहलाद के ऊपर हिरण्यकशिपु का अत्याचार मैंने अपने जीवन में स्पष्ट दर्शन किया है। जिस प्रकार भगवान ने प्रहलाद को गोद में रखकर हिरण्यकशिपु के अस्त्राघात एवं निर्यातन से रक्षा की थी, उसी प्रकार उस विपत्ति के समय एक मात्र ''नाम'' ने ही मुझे अयाचित रूप से आच्छादन कर रक्षा की थी । इस जगत में ''नाम'' के समान, अपना कहलाने वाला कोई नहीं है । ऐसा हितैषी मिलना कठिन है । पाठकगण ! प्रेम से भगवत् नाम का आश्रय ग्रहण कीजिये। ऐसा उपकारी मित्र कहीं नहीं मिलेगा। **यह मेरे स्वयं का अनुभव है ।**

आप लोग माया के अत्याचार की बात सुनकर भयभीत न हों । जो अपराध आजतक जाने-अनजाने हम लोग कर चुके हैं, उसका क्या कुछ भी दण्ड नहीं मिलेगा ? एकमात्र भगवत् नाम एवं सद्गुरु की कृपा से ही अल्प दण्ड भोगकर मुक्ति मिल जाती है ।

(15) नाम संसार-क्षयकारी-स्त्री, पुत्र, परिवार, घर, संसार नहीं कहलाता। उनके प्रति मनुष्य की जो आसक्ति है, वह आसक्ति ही संसार है। ऐसा गोस्वामीजी कहते थे । नाम करने से जिस प्रकार धीरे-धीरे आसक्ति नष्ट होती जाती है, इस प्रकार सहज में अन्य पथ का अवलंबन करने से नहीं होती ।

नामाभ्यास करते-करते ही नाम की कृपा होने लगती है । नाम की कठोरता, शुष्कता देखकर साधक को निराश होने की जरूरत नहीं है। स्वयं को अपराधी समझकर दीन-हीन कंगाल होकर नाम के पदानुगत होकर उनकी कृपा भिक्षा करने से नाम करना आसान होने लगता है । नाम में रूचि उत्पन्न होती है । चैतन्य महाप्रभु ने भी कहा है -

तृणादपि सुनीचेन, तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिन, मानदेन, कीर्तनीय सदाहरिः ॥

तृण के समान नीच होकर, वृक्ष के समान सहिष्णु होकर, स्वयं अमानी होकर, दूसरों को मान देकर हरिनाम व कीर्तन करना चाहिए। वास्तविक रूप से ''तृणादपि'' होना बहुत कठिन है, इसमें संदेह नहीं है। मैं धनी, मानी, पदस्थ, विद्वान, बुद्धिमान हूँ। लोग मेरी जो-हजूरी करते हैं। मेरी बातों का कोई प्रतिवाद करने का साहस नहीं करता। मैं रूपवान, गुणवान हूँ, इत्यादि अनेकानेक भावों से मनुष्य ग्रसित है परन्तु नाम के अचिन्त्य शक्तिबल से मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन होकर धीरे-धीरे नाम का रसास्वादन होने लगता है ।

साधक नाम की कृपा पाने के लिये सत्संग, दान, परोपकार आन्तरिक भाव से नर-नारी एवं जीवों की सेवा (कपटता वर्जित) अहिंसा, तीर्थ पर्यटन, पूजा, भक्ति शास्त्र पाठ इत्यादि सदानुष्ठान करते रहें । बाद में नाम में रुचि आने से अन्य अंगों को धीरे-धीरे कम करके नाम-अभ्यास में ज्यादा से ज्यादा समय देने से उसकी मधुरता का आस्वादन अवश्य होगा ।

नाम का गुरुत्व

''श्री राम के नाम से हनुमान जी सागर पार हो गये, श्री रामजी के लिए सेतु निर्माण किया गया'', यह कहावत प्रचलित ही है । पुराण में एक कथा और है -

एक बार सत्यभामा ने एक व्रत कर अपने पति श्रीकृष्ण के वजन के परिमाण में धन-रत्न राशि दान करने की सोची । वह एक बड़े तराजू में एक तरफ श्रीकृष्ण को बैठाकर दूसरे में धन रत्न राशि चढ़ाने लगी। परन्तु काँटा टस से मस न हुआ । तब वह सोचने लगी कि अब क्या किया जाये ? जितनी धन संपत्ति थी, सब चढ़ाने के बाद भी कुछ नहीं हो रहा है । तब वह रोने लगी ।

उसी समय देवर्षि नारद जी आये । सत्यभामा ने सब बात उनसे कही । नारदजी ने सब रत्न राशि पलड़े से हटाने के लिए कहा, फिर

एक तुलसीपत्र में कृष्ण नाम लिखकर सत्यभामा के हाथ में दिया और कहा कि इसे दूसरे पलड़े पर रख दो । सत्यभामा द्वारा उनके कहे अनुसार कार्य करने से काँटा ''नाम'' की ओर झुक गया । कृष्ण का पलड़ा हल्का हो गया एवं ऊपर की ओर उठ गया । सत्यभामा आनन्दित हो गई। इस घटना से ''नाम के गुरुत्व'' का प्रमाण मिलता है । भगवान से ''भगवान का नाम'' बड़ा है, यह प्रतीति होती है। यद्यपि तत्त्व की दृष्टि से नाम, नामी एक ही हैं । इस संबंध में मुझे जो किन्चित उपलब्धि हुई है, उसे लिख रहा हूँ ।

भ्रम के कारण या प्रवृत्ति के कारण प्रत्येक मनुष्य अपराध कर बैठता है। उसे अपराध का भोग इस जीवन में या परलोक में भोगना पड़ता है ।

भगवान की दया इत्यादि प्रवृत्ति के वशीभूत नहीं है । कोई प्रवृत्ति उनको विमोहित नहीं कर सकती इसलिए क्लेश के समय भगवान को पुकारने की अपेक्षा नाम की शरणागत होकर नाम करने से नाम के द्वारा कष्ट का निवारण जल्दी होता है ।

जो व्यक्ति भगवान के शरणागत है, उसके प्रति भगवान उदासीन हो सकते हैं परन्तु नाम की शरणागत होने से क्षणमात्र के लिए भी नाम उसके प्रति उदासीन नहीं होते ।

मनुष्य भ्रमांध है। कौन सा सुपथ है ? कौन सा कुपथ है ? वह समझ नहीं पाता। भगवान उसे विपथगामी होते देखकर भी निष्क्रिय रहने से नाम उसको सुपथ में ले आता है ।

साधक भगवान को त्याग देने से भगवान उदासीन भले ही हो जायें परन्तु सद्गुरु प्रदत्त शक्तिपूर्ण नाम साधक का त्याग नहीं करता ।

नाम साधक का कल्याणकारी है। नाम सेवा-परायण है। दुख के समय यथोचित आनन्द प्रदान करता है। नाम सुख में सुखी एवं दु:ख में दु:खी होता है परन्तु भगवान तटस्थ रहते हैं ।

मनुष्य भगवान की मायाशक्ति से मोहित है। उसका ज्ञान सीमाबद्ध एवं भ्रमपूर्ण है । नाम माया-मोह को दूरकर पूर्णज्ञान प्राप्त करा सकता है।

भगवान के दर्शन या वाणीश्रवण साधक को हो न हो, पर नाम का श्रवण सब समय हो सकता है। भगवान अवतीर्ण होकर कुछ लोगों को ही तारते हैं परन्तु नाम ने असंख्य लोगों को तार दिया है एवं अभी भी उद्धार कर रहे हैं ।

भगवान कठोर एवं निर्मम प्रतीत होते हैं, भले ही वे न्यायकारी हैं, परन्तु नाम कोमल एवं दयालु हैं। नाम समस्त गुण के आधार हैं। वस्तुत: भगवान पहले स्वयं प्रत्यक्ष न आकर नाम रूप में आकर अपनी कृपा वितरण करते हैं। जय नाम, जय नामी, जय नामदाता।

नाम का स्वभाव

नाम स्नेह पसंद करते हैं । थोड़ा भी अनादर होने से उनका दर्शन मिलना मुश्किल है। इसलिए सब समय सावधान रहना चाहिए जिससे वे सर्वदा परम आदर एवं सम्मान के साथ हृदय में रहें । जितना उनका सम्मान करोगे, उतना वे तुम्हारे अनुगत होंगे ।

नाम ईर्षालु हैं । दूसरों के प्रति आदर करना वे पंसद नहीं करते। नाम की इच्छा यह रहती है कि केवल उन्हें ही आदर करें। वे दूसरों से प्रेम नहीं चाहते । घर-गृहस्थी, संसार को प्रेम करेंगे और नाम को भी स्नेह करेंगे, ऐसा वे नहीं चाहते । ''नाम'' चाहते हैं, स्त्री, पुत्र, धन, मान, ऐश्वर्य, प्रताप, प्रभुत्व, प्रतिपत्ति समस्त की आसक्ति या आकांक्षा त्याग कर दीन-हीन, कंगाल होकर केवल उनको (नाम) ही लेकर रहे। जगत की तरफ अधिक ध्यान देने से वे क्रोधित हो जाते हैं। अभिमान की सीमा नहीं रहती । वे गुस्से से मुझको त्याग करके चले जाते हैं ।

नाम परम कारुणिक हैं - मेरी दीनता एवं दु:ख-यातना में दया परवश होकर मुझे अपने आश्रय में लेकर उन्होंने अभय दान दिया है। वे पापी, तापी, दुष्कृत समझकर घृणा नहीं करते। कैसा भी पापी हो? **दीनभाव से शरणापन्न होने से वे किसी को परित्याग नहीं करते।** उनके पास केवल कपटी, निन्दक एवं अभिमानी की नहीं चलती। वे यदि दया नहीं करते तो मेरे जैसे पातकी की रक्षा होना असंभव था।

नाम परम सुहृद हैं । इस जगत में कदाचित् निःस्वार्थ प्रेम दिखता है । स्वार्थ की हानि होने से मित्र, संबंधी, स्वजन सब शत्रु हो जाते हैं परन्तु नाम का प्रेम निःस्वार्थ है। उसमें स्वार्थ का नामोनिशान नहीं है।

पहले नाम मुझे कितना शासन करते थे ? बात-बात में मेरे साथ झगड़ा लगा देते थे एवं क्रोधित होकर मुझे छोड़कर चले जाते। फिर अनेक अनुनय-विनय करके क्षमा प्रार्थना करके उन्हें वापस लाना पड़ता। कभी-कभी उनका शासन कठोर प्रतीत होने पर, मैं भी उन्हें कठोर बातें सुना देता। बीच-बीच में दोनों में झगड़ा होता ।

नाम का तिरस्कार, भर्त्सना करने पर वे फिर ज्यादती नहीं करते। फिर नरम हो जाते । एक दिन मैदान में घूमने जा रहा था। अभ्यास दोष से मैं नाम के निकट पल-पल अपराधी हो जाता। नाम मुझे त्याग कर चले गये, मैं शरीर एवं मन से जल-भुन कर दग्ध होने लगा ।

मैं क्षोभ में आत्मविस्मृत होकर ''नाम'' को तिरस्कार करके बोलने लगा कि मैं संसार ताप से पीड़ित होकर तुम्हारे पास थोड़ी शान्ति पाने के लिए तुम्हारे आश्रय में आया हूँ और तुम इस प्रकार व्यवहार करते हो ? बात बात पर गुस्सा करते हो ? मेरे पास थोड़ी देर भी नहीं रहते हो । तुम मुझे सर्वदा शान्त एवं अनासक्त रहने के लिए कहते हो । यदि मैं वैसा ही रह सकूँ तो फिर तुम्हारे पास क्यों आऊंगा ? तुम्हारे शरणापन्न क्यों होऊंगा ?

मेरे मन में नितांत दुःख है। इसलिए तो मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। कहाँ तुम मेरे दग्ध प्राणों में सान्त्वना देते, प्राणों में शीतलता देते, वह न करके आँखे लाल करके मुझे परित्याग करके मेरे हृदय की ज्वाला को और बढ़ा रहे हो ? मुझे तुम कठोर दण्ड दे रहे हो। मुझे भय प्रदर्शन कर रहे हो। मेरी दुखावस्था देखकर तुम्हें थोड़ी भी दया नहीं आती ? जाओ, अब मैं तुम्हारे साथ मित्रता नहीं करूंगा। मैं भले ही डूब जाऊँ पर अब तुम्हारी खुशामद नहीं करूंगा। मेरे भाग्य में जो होना होगा, होगा।

इन बातों को बोलने के साथ ही साथ नाम तूफान की तरह आकर मुझमें प्रविष्ट हो गये। पूरे शरीर व मन में अमृतधारा का वर्षण होने लगा।

मैं घूमने जा रहा था परन्तु एक पाँव भी आगे चल न पाया। मैं प्रेमाश्रु विसर्जन करने लगा ।

फिर कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर नाम की स्तुति करने लगा कि मैंने साधुओं के मुख से तुम्हारे अपार गुणों की कथायें सुनी हैं। आज उसका प्रत्यक्ष परिचय मिला । मेरा हृदय पाषाण के सदृश्य है । मैं तुम्हें स्नेह करना नहीं जानता। तुम्हारी सेवा कैसे करनी पड़ती है ? मैं कुछ भी नहीं जानता। तुम मेरे अन्तर की कालिमा को दूर करो । मैं जानता हूँ कि मेरे इस कलुषित हृदय में तुम्हारा स्थायी आसन लगाना कठिन है। फिर भी तुम अपने कृपालु स्वभाव से अपना सिंहासन मेरे हृदय में स्थापित करो। तुम सर्वशक्तिमान हो। इस अधम पर कृपा बनाये रखना। मैं अब साध्यानुसार अपना अंतःकरण अवश्य साफ रखने की कोशिश करूंगा। तुम्हारे दुःख से अब मेरा क्लेश ज्यादा हो रहा है ।

नाम बड़े प्रेमिक हैं । आश्रित जन के लिए वे लगातार परिश्रम करते हैं। उसमें उन्हें कोई थकान नहीं होती। किससे उसका मंगल होगा ? सदा उसकी चिन्ता लगी रहती है । नाम, आश्रितजन से कोई प्रतिदान नहीं चाहते । ऐसा प्रेमी कहाँ मिलेगा ?

मैं वृद्ध हो गया हूँ। कठोर भजन साधन करने की मुझमें शक्ति नहीं है। नाम मुझसे मेहनत न करवाकर अब स्वयं ही परिचालित हो रहे हैं। सबेरे, दोपहर, शाम, दिन-रात अहर्निश प्रति श्वाँस-प्रश्वाँस में मेरे अन्दर प्रवाहित हो रहे हैं। **अब मुझे चेष्टा करके नाम नहीं करना पड़ता।** मैं द्रष्टा मात्र हूँ ।

मुझे सांसारिक कार्य में लिप्त रहना ही पड़ता है। पर नाम कृपा करके मुझे त्याग नहीं करते । मैं शरीर धर्म के नियमवश होकर निद्रा लेता हूँ, किन्तु नाम में कोई आलस्य नहीं है। वे मेरे हृदय में बैठकर रात्रि जागरण करके मेरे अन्दर विहार करते हैं ।

मेरा मन बड़ा संदिग्ध है । गोस्वामीजी जितने दिन शरीर में थे, उनका हर समय छिद्र (दोष) खोजता फिरता । वह कु-अभ्यास मेरा अभी तक नहीं गया । साधू-सज्जन, लोगों का केवल गुण दर्शन करते हैं। असाधू व्यक्ति ही छिद्रानुसंधान करता फिरता है। मैं सब समझता हूँ परन्तु अभ्यास-दोष किसी भी प्रकार से त्याग नहीं पाता ।

नाम, कब क्या कर रहे हैं ? उसके क्रिया कलापों का बारीकी के साथ निरीक्षण करता रहता हूँ। किसी समय मुझे छोड़कर चालाकी से भाग तो नहीं जाते ? उस ओर मैंने तीक्ष्ण दृष्टि रखी है । मैं देखता हूँ, नाम कभी सूक्ष्म, कभी स्थूल, कभी धीर, कभी द्रुत, कभी प्रबल वेग से नदी की बाढ़ की तरह शरीर, मन को बहाकर ले जाते हैं ।

नाम का विश्राम मुझे नहीं दिखता। कम से कम मुझे उसके विश्राम का पता नहीं चलता । मेरी यह धारणा है कि निद्रा के समय एवं गृहकर्म में मन दूसरी ओर रहने से शायद नाम चालाकी से विश्राम कर लेते होंगे। नाम की इस चालाकी को पकड़ने के लिए मैं बहुत दिन से चेष्टा कर रहा हूँ । गृहकर्म के समाप्त होते ही देखता हूँ कि नाम ठीक तरह से चल रहा है या नहीं ? फिर निद्रा भंग होने के बाद श्वाँस की ओर दृष्टिपात करने से देखता हूँ, कि नाम प्रवाहित हो रहा है या नहीं ?

ऐसा कुअभ्यास हो गया है कि निद्रा के समय भी स्वप्नावस्था में भी नाम की परीक्षा करता हूँ । किसी किसी दिन स्वप्न देखता हूँ कि मैं सो रहा हूँ । मेरी निद्रा टूट गई। नाम चल रहा है कि नहीं ? यह देखने के लिए जल्दी से स्वाँस की ओर दृष्टि देता हूँ तो देखा कि नाम ठीक से चल रहा है । निद्रा भंग होने पर सोचता कि यह सब क्या कर रहा हूँ ?

नाम के क्रिया कलाप की ओर दृष्टि देने से मैं देख रहा हूँ कि नाम मेरा कोई भी अपराध ग्रहण नहीं कर रहे हैं । अविश्राम परिश्रम करके मेरे इस कलुषित हृदय को परिष्कृत करके निर्मल करने में लगे हुए हैं । कामादि रिपुगणों को हटा दे रहे हैं। हिंसा-द्वेष-परपीड़न इत्यादि दुष्प्रवृत्तियों को दूर कर रहे हैं। दया, परोपकार आदि सत्प्रवृत्तियों को जगा दे रहे हैं। आसक्ति का बंधन छिन्न कर दे रहे हैं। अन्त:करण में आनन्द प्रदान कर नाम, गुण, लीला का मधुर आस्वादन करा रहे हैं ।

मैं जब रोग-शय्या में पड़ा रहता हूँ, नाम प्रबल वेग से प्रवाहित होकर मेरी रोग-यंत्रणा को भुला देते हैं । विपदाओं से घिरे रहने पर सांत्वना प्रदान करते हैं। मेरे आँसुओं को पोंछ देते हैं। कान में कितनी आशा की वाणी का संचार करते हैं ?

मैं नाम के गुण से दिन-दिन उनके प्रति आकृष्ट होता जा रहा हूँ। नाम के बिना जीवनधारण क्लेशकर प्रतीत होता है। मैं देख रहा हूँ कि इस पृथ्वी में जितने प्रकार के दु:ख हैं, उनमें नाम विमुख होकर जीवनधारण करने की अपेक्षा बड़ा दु:ख और नहीं है । तथा संसार में जितने प्रकार के सुख हैं, उनमें नाम की अपेक्षा अधिक सुख किसी वस्तु में नहीं है। नाम ही जीवन है, नाम-हीन जीवन प्राणहीन देह मात्र है ।

***

हिन्दू धर्म

मनुष्य जन्म दुर्लभ है । जीव को चौरासी लाख योनी क्रमागत भ्रमण करते-करते मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है । इसी जन्म में भगवत् उपासना द्वारा दु:ख की पूर्ण निवृत्ति हो जाती है, तभी उसका आना जाना बंद होता है। प्रकृत धर्म की प्राप्ति होती है। मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर अनंतकाल परमानन्द उपभोग करता है। इसलिए हिन्दू धर्म में मनुष्य जन्म इतना दुर्लभ माना जाता है। अन्य योनियों में जन्म होने से यह संभव नहीं होता ।

पृथ्वी के सुख-ऐश्वर्य आदि को प्राप्त करना एवं भोग करना, यह हिन्दू धर्म में मनुष्य का लक्ष्य नहीं है । हिन्दू जानता है कि पृथ्वी के सब सुख क्षणस्थायी हैं। स्थायी सुख इससे प्राप्त नहीं हो सकता ।

धर्म की प्राप्ति ही हिन्दू-मात्र का लक्ष्य है। वह भगवान को प्राप्त कर नित्यानन्द प्राप्त करना चाहता है । धर्म प्राप्ति के लिए हिन्दू के द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं, जो वह नहीं कर सकता ।

अपराध के प्रायश्चित के लिए हिन्दू इच्छापूर्वक तुषानल में अपने देह को विसर्जन तक कर सकता है। धर्म प्राप्ति के लिए स्त्री पति के साथ चितानल में अपने देह को भस्मीभूत कर देती है। इस प्रकार का दृष्टान्त हिन्दू धर्म में ही देखने को मिलता है ।

धर्म की रक्षा के लिए महाराजा कर्ण, अपने प्रियतम पुत्र वृषकेतु का विनाश करके भी अतिथि सेवा किये हैं। दूसरी ओर बालक वृषकेतु, उसके नश्वर देह से जन्मदाता पिता की धर्म रक्षा होगी; सोचकर आनन्दित हो रहा है । हिन्दू जानता है-

पिता धर्म :, पिता स्वर्ग, पिताहि परंतप: ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता ॥

रामचन्द्रजी अपने पिता की आज्ञा पालन करने के लिए राज-सिंहासन का परित्याग करके वनचारी हो गये । सीता राजपुरी त्याग करके पति की सहभागिनी हो गई। लक्ष्मण अपने बड़े भ्राता एवं भाभी की सेवा एवं रक्षा करने के लिए राजसुख का परित्याग करके उनके साथ वनवासी

हो गये । भरत, बड़े भाई के वन गमन की वार्ता सुनकर शोकाभिभूत हो गये एवं पूरे राज्य के लोगों के साथ अपने भ्राता को वापस लौटाने के लिए चल पड़े । वन में जाकर रामचन्द्रजी को किसी भी प्रकार से राज्य में न लौटा सके तब अपने बड़े भाई की पादुका मस्तक में धारण कर राजसिंहासन में स्थापित कर पूजा करने लगे। चौदह साल तक तप करते हुए प्रतिदिन हिसाब से राज्य शासन करने लगे ।

गुरुजनों, बड़ों के अनुगत रहना ही हिन्दू धर्म है, यही हिन्दू की प्रकृति है। समस्त पृथ्वी के अधिपति इन्द्रप्रस्थ की राजमहिषी कुरूसभा में अपमानित होने लगी । महावीर भीम-अर्जुन इच्छा करने से तभी प्रतिशोध ले सकते थे, परन्तु वे बड़े भाई युधिष्ठिर की ओर अनुमति प्राप्त करने के लिए बारम्बार दृष्टिपात करने लगे। युधिष्ठिर धर्म के प्रति निष्ठा के कारण अनुमति न देकर नतमस्तक हो गए । भीम-अर्जुन क्षोभ से दग्ध होने के बावजूद अपने बड़े भ्राता की अनिच्छा देखकर चुप रह गये। इस प्रकार का आनुगत्य हिन्दू के अलावा कौन, कब दिखा सका है ?

हिन्दू नारी की बात मैं क्या कहूँ ? रामचन्द्रजी ने राजधर्म नियम के कारण अपनी प्राणप्रिया जानकीजी को वनवास देने के लिए लक्ष्मण को आदेश दिया । लक्ष्मण, भाभी की माँ के समान भक्ति करते थे। उनकी सेवा के लिए वनवासी हुए थे। सीता उद्धार के लिए भीषण युद्ध में शक्तिबाण को हृदय में धारण किया था ।

निर अपराधिनी सीता के प्रति वनवास का आदेश सुनकर वे अत्यन्त मर्माहत हुये । उनके मस्तक में जैसे वज्रपात हो गया । अपने बड़े भाई की आज्ञा, विशेषत: राज-आज्ञा प्रतिपालन सनातन धर्म है। यह सोचकर लक्ष्मण ने प्रतिवाद नहीं किया । मन की घोर यातना मन में ही सहकर, निर अपराधिनी सीता को वन में ले गये ।

अनेक वर्षों से मुनियों के तपोवन एवं आश्रमों के दर्शन की इच्छा सीता के अन्त:करण में थी । इसी बहाने से लक्ष्मण, सीता को लेकर हिंसक जंतुओं से घिरे भयानक जंगल में गये एवं नि:सहाया सीता को परित्याग करके मन की वेदना को रोक न सके, उच्चस्वर में रोने लगे ।

सीताजी तब अपनी अवस्था सब समझ गई। वे राजरानी थी। अब वनवासिनी हो गई। सीता अपनी इस विपदा के कारण, उसके विरूद्ध

एक भी बात न बोली। उसने लक्ष्मण को कहा कि आर्यपुत्र (श्रीरामचन्द्रजी) मुझे जिस प्रकार प्रेम करते हैं, उसे मैं जानती हूँ परन्तु कठोर राजधर्म के अनुसार उन्होंने बाध्य होकर मेरा परित्याग किया है । वे मेरे विरह में जीवन धारण करने मे असमर्थ होंगे। तुम शीघ्र लौट जाओ और उन्हें जाकर सान्त्वना दो। तुम सर्वदा उनके पास रहकर उनकी सेवा करते रहना।

पति के धर्म की रक्षा के लिए पतिव्रता स्त्री प्राण तक देने में पीछे नहीं हटती थी। वे पति-देवता के लिए कठिन से कठिन दण्ड को आनन्दपूर्वक सहन कर सकती थी । सीताजी ने अपने जीवन के लिए एक बार भी नहीं सोचा कि इस जंगल में मैं अकेली कैसे रहूंगी ? स्वयं के लिए लक्ष्मण को भी कोई बात नहीं बोली ।

पुन: कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद दुरात्मा अश्वत्थामा ने रात्रि के समय निद्रित द्रौपदी के पाँच पुत्रों का दस्यु के समान वध कर दिया । द्रौपदी एक साथ अपने पाँच-पुत्रों के शोक से व्यथित हो गई । युधिष्ठिर आदि सभी शोक में डूब गये । दुरात्मा अश्वत्थामा को वध करने के लिए अर्जुन धावित हुए एवं उसके केशों को पकड़कर घसीटते हुए ले आये। उसका वध करने के लिए कृतसंकल्प हुए ।

शोकाभिभूता द्रौपदी ने तब कहा कि अश्वत्थामा, गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र हैं। वे गुरुपुत्र हैं। उनका वध मत करो । पुत्र शोक क्या होता है ? मैं उसका अनुभव कर रही हूँ। गुरुपुत्र का वध करने से उनकी माता भी मेरे समान शोकसंतप्त हो जायेगी । इनके बंधन को खोल दो। ब्राह्मण अवध्य होता है । द्रौपदी की इस करुणामिश्रित निस्वार्थ बात को सुनकर पाण्डवों ने अश्वत्थामा के सिर से मणि लेकर उसे मुक्ति दे दी ।

हिन्दूओं में इतनी सहन शक्ति कहाँ से आती थी ? इसका एक मात्र कारण था कि वे धर्म के नियमों का मन एवं प्राण से पालन करते थे । हिन्दू पृथ्वी के इस अनित्य, क्षणस्थायी विषयभोग में अपने जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा धर्म के पालन को ही श्रेष्ठ समझता था ।

हिन्दू शरीर की पुष्टि के लिए, बल प्राप्त करने के लिए आहार करता था, जिह्वा की लालसा से नहीं । शरीर रक्षा नहीं होने से धर्म की

रक्षा नहीं होगी, भजन साधन भी नहीं होगा इसलिए हिन्दू आहार करता था। सन्तान प्राप्त कर, पितृपुरुषों को पितृलोक में, जल-पिंडदान से, तृप्ति लाभ होगी, इसलिए वह विवाह करता था । हिन्दू के द्वारा हर कार्य धर्म की दृष्टि से किया जाता था, इन्द्रिय भोग या तृप्ति के लिए नहीं ।

हिन्दूओं के इतिहास, काव्य, नाटक, उपन्यास आदि साहित्य ग्रंथ जो कुछ भी पढ़िये, उसमें धर्म की बातें एवं मानव हृदय के महत्व की बातें ही मिलेंगी । धर्म की बात छोड़कर हिन्दू को अन्य बातों में रूचि नहीं थी। आज भी इस विलासिता के युग में लाखों साधू अपने संसार-सुख को छोड़कर गिरि-गुहाओं मे धर्म साधना करने में प्रवृत्त हो रहे हैं। पृथ्वी में अन्यत्र, यह नहीं दीख सकता ।

राज-द्रोह हिन्दू नहीं जानता था । वह राजा को विष्णु का अंश जानकर उसकी आज्ञा का पालन करता। हिन्दू राजा भी महत् थे। वे प्रजा का पुत्रवत् पालन करते थे। प्रजा के सुख के लिए अपने सुख का भी विसर्जन कर देते थे ।

महाराज परीक्षित की बात ही सोचिये । वे वन में शिकार करने के लिए जाकर, प्यास से व्याकुल होकर शमीक मुनि के आश्रम में उपस्थित हुए। मुनि ध्यानस्थ थे। अत: कोई उत्तर न सुनकर, प्यास के कारण राजा अचानक क्रोधित हो गये। मुनि ने आश्रम धर्म का पालन नहीं किया, यह सोचकर धनुष से एक मरे साँप को मुनि के गले में लटकाकर वे लौट गये ।

मुनिपुत्र बालक श्रृंगी ने परीक्षित को अभिशाप दिया कि सात दिन में सर्प के काटने से उसकी मृत्यु हो जायेगी। उसे अपने पिता का अपमान सहन न हुआ क्योंकि वह पितृ-भक्त था । परीक्षित के चले जाने के बाद मुनि के ध्यान भंग होने पर, उन्हें सब बातों का पता चला तब वे अत्यन्त दु:खित हुए ।

शमीक मुनि ने अपने पुत्र को तिरस्कार करते हुए कहा कि राजा विष्णु का अंश होता है। वे हमारे प्रतिपालक एवं रक्षक हैं । राजा दस्युओं का निवारण करता है। प्रजा का पालन करता है। कृषि-वाणिज्य की उन्नति साधन करता है। इससे देश में शांति रहती है एवं साधकगण

भी निश्चित होकर भजन साधन कर सकते हैं । राजा प्यासे थे। वे निरपराध थे। हम ही दोषी हैं । आश्रम धर्म का पालन न कर सके। वे अतिथि थे। यथोचित अतिथि सत्कार न करना अधर्म है ।

पिता की बात सुनकर बालक दुःखी हुआ। उसने पिता को कहा कि मैं अज्ञानी बालक हूँ । बिना सोचे समझे गलती कर बैठा हूँ । मुनि ने भगवान से अपने पुत्र के अपराध के लिए क्षमा प्रार्थना की ।

उधर राजा परीक्षित ने अपने अचानक क्रोधावेश में किये गये अपराध के लिए अत्यन्त पश्चाताप किया एवं स्वयं को शत् शत् धिक्कार दिया कि मात्र थोड़े से जल की प्राप्ति के लिए मैंने क्यों मुनि का अपमान किया ? फिर बाद में उन्होंने प्रायश्चित करने के लिए उपवासी रहकर व्यासपुत्र शुकदेव से भागवत श्रवण किया । उन्हें अंतःकरण में खुशी भी हुई कि यह नश्वर शरीर एक दिन तो नष्ट होता ही, अच्छा ही हुआ कि मुनिपुत्र ने मेरी मृत्यु का समय निश्चित कर दिया जिससे अंत में, मैं सत्संग एवं हरिकथा श्रवण कर देह त्याग कर सकूंगा। नहीं तो पता नहीं मृत्यु के समय मुझे हरिस्मरण होता या नहीं ? शमीक मुनि, उनके पुत्र एवं राजा परीक्षित के विचारों एवं वाणी का ठीक से विवेचन कीजिये, विचार कीजिये। स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि सभी के अंतःकरण में पूर्ण धर्मनिष्ठा एवं आत्म-त्रुटि-विश्लेषण की कितनी विलक्षण भावनायें थीं ?

अब वे हिन्दू राजा भी नहीं हैं। भारत में पाश्चात्य प्रणाली से शासन चल रहा है । विदेश की शिक्षा से हिन्दू युवकगण की प्रकृति भी परिवर्तित हो रही है । वे अपने धर्म को त्यागकर, कदाचार एवं कदाहार की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। पार्थिव सुख की ओर उनका मन धावित हो रहा है ।

भोग लालसा को चरितार्थ करने के लिए अपने धर्म को जलांजलि देने का यदि विषमय फल देखना चाहते हो तो यूरोप के प्रति दृष्टिपात करो । स्वामीहीना विधवा, पुत्र शोकातुरा जनक-जननी, माता-हीन भग्नि एवं अनाथ शिशुओं के क्रन्दन से यूरोप का आकाश विदीर्ण हो रहा है । सब अपने स्वार्थ में रत हैं । वहाँ गरीबों से कोई सहानुभूति करने वाला नहीं है । कोई किसी पर विश्वास नहीं करता। घर में बैठकर भी अनर्थ

होने की आशंका बनी रहती है। हत्याएँ, लूट, बम-बाजी, कब हो जाये ठीक नहीं है ? वहाँ मानसिक शान्ति नहीं है ।

यूरोप की क्षणिक मधुर चकाचौंध से स्वयं के धर्म-निष्ठा को मत नष्ट करो - यही निवेदन मैं सबको करूंगा । तुम लोग आर्य ऋषि की संतान हो, अपने पूर्वजों के प्रतिष्ठित धर्म, नियम, सदाचार, सदाहार को मत त्यागो । धर्म साधन में प्रवृत्त हो ! महापुरुषों का आश्रय ग्रहण करो- जीवन धन्य हो जायेगा ।

***

श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी से सम्बन्धित
हिन्दी ग्रन्थ एवं प्राप्ति स्थान

क्रं. सं.	ग्रन्थ का नाम	लेखक
1.	**श्री श्रीसद्गुरु संग**	- कुलदानन्द ब्रह्मचारी
	(अंग्रेजी एवं गुजराती भाषा में भी उपलब्ध) प्राप्ति स्थान :- सेवायत, ठाकुरबाड़ी, पुरी	
2.	**अजपा साधन तत्व**	- स्वामी असीमानन्द सरस्वती
3.	**कुछेक दिनों के संस्मरण**	- स्वामी असीमानन्द सरस्वती
4.	**गुरु-शिष्य संवाद**	- जगद्बंधु मैत्र
	प्राप्ति स्थान : श्री श्रीविजयकृष्ण आश्रम, रामचन्द्रपुर, जिला पुरुलिया पिन : **723144**	
5.	**साधना पथ**	- स्वामी अमलानन्द सरस्वती
6.	**श्री श्रीविजयकृष्ण कथामृत**	- स्वामी अमलानन्द सरस्वती
7.	**सद्गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग**	- स्वामी अमलानन्द सरस्वती
8.	**श्री श्रीविजयकृष्ण परिजन** (दो खंडो में)	
	प्राप्ति स्थान :- श्री श्रीविजयकृष्ण भक्त संघ, स्टेशन रोड़, रघुनाथपुर, (पुरुलिया) - **723133**, मो. : **09932607101, 09332409501**	
9.	**श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी** (संक्षिप्त जीवनी एवं उपदेश)	- डॉ. रत्ना मुखोपाध्याय
10.	**श्री श्रीकिरणचन्द्र दरवेश जी** (संक्षिप्त जीवनी एवं उपदेश)	- डॉ. रत्ना मुखोपाध्याय
11.	**स्वामी श्रीअसीमानन्द सरस्वती** (संक्षिप्त जीवनी एवं उपदेश)	- डॉ. रत्ना मुखोपाध्याय
	प्राप्ति स्थान :- श्री ए.के. मुखर्जी, **3/747**, शान्ति नगर, रायपुर (छ.ग.) पिन : **492-001**	
12.	**माँ-मणि** (जीवन दर्शन एवं दिव्य लीला-अनुभूतियाँ) (दो खंडों में)	
13.	**श्रीश्री विजयकृष्ण वचनामृत**	
	प्राप्ति स्थान : श्री रामअवतार शर्मा, ए-**22**, भान नगर, क्वींस रोड़, जयपुर-**302021** मोबाइल : **09314522108, 0141-2353971**	
14.	**श्री श्रीअद्वैताचार्य प्रभु**	- श्री ब्रजेश्वरानंद
	प्राप्ति स्थान : पार्थ पाठक **42**, लेक ईस्ट **6** रोड़, कोलकाता - **700075**	